रोजा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग|कलकत्ता रिसर्च ग्रुप

भारत में लोकलुभावनवादी राजनीति का सन्दर्भ

संपादन

अंजू शरण उपाध्याय

अनुवादक

प्रशांत कुमार

ROSA LUXEMBURG STIFTUNG SOUTH ASIA

December 2019

Published by:
Mahanirban Calcutta Research Group
GC-45, Sector-III, First Floor
Salt Lake City
Kolkata-700106
India
Web: http://www.mcrg.ac.in

Printed by:
Graphic Image
New Market, New Complex, West Block
2nd Floor, Room No. 115, Kolkata-87

Gefördert durch die Rosa-Luxemburg-Stiftung e.V. aus Mitteln des Bundesministerium für wirtschaftliche Zusammenarbeit und Entwicklung der Bundesrepublik Deutschland.
Sponsored by the Rosa Luxemburg Foundation eV with funds of the Federal Ministry for Economic Cooperation and Development of the Federal Republic of Germany.

The Rosa Luxemburg Stiftung (RLS) is a Germany based foundation working in South Asia and other parts of the world on the subjects of critical social analysis and civic education. It promotes a sovereign, socialist, secular, and democratic social order, and aims at present members of society and decision-makers with alternative approaches to such an order. Research organizations, groups working for self-emancipation, and social activists are supported in their initiatives to develop models that have the potential to deliver social and economic justice. The work of Rosa Luxemburg Stiftung, South Asia can be accessed at www.rosalux.in.

विषय अनुक्रमणिका

प्राक्कथन I-III

उदारवादी आख्यानों में एक संकट के रूप में लोकलुभावनवादः भारत में राजनीति और नीति निर्माण पर कुछ विचार
अमित प्रकाश 1-23

गोरखाओं की अस्मितापरक राजनीति और दक्षिणपंथ का हस्तक्षेप
कपिल तमांग 24-37

पश्चिम बंगाल में राज्य प्रायोजित लोकलुभावनवाद और चुनावी जनतंत्र
मैदुल इस्लाम 38-64

राजनीतिक व्यवहार के रूप में लोकलुभावनवादः हिंदी प्रदेशों में जाति और सामाजिक न्याय
मनीष कुमार झा 65-90

प्रतिस्पर्धात्मक जनतंत्र और लोकलुभावनवादी राजनीति एवं व्यवहारः विशेष संदर्भ छत्तीसगढ़
रजत रॉय 91-117

पश्चिम बंगाल में कन्याश्री योजना : लोकलुभावनवाद एवं शासकीय स्त्रीवाद
रिया डे 118-130

मुसलमान 'इतर' : डेक्कन में लोकलुभावनवादी राजनीति और मुसलमान
शेफाली झा 131-141

स्मकालीन भारत में लोकलुभावन नीतियाँ और राजनीतिक दल : आम आदमी पार्टी के उभार पर कुछ चिंतन
सुमोना दासगुप्ता 142-162

प्राक्कथन

एरिक हॉब्सबॉम के शब्दों में बीसवीं सदी सचमूच ही 'अतियों की सदी' थी जिसका प्रभाव अभी भी 21वीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों तक बना हुआ है। हम एक बेहद जटिल एवं 'उत्तर–सत्य' (Post-Truth) वाले समय में रह रहे हैं जहाँ यथार्थ आभासी हो चला है। हमारी सामूहिक स्मृतियों के लोप होने के इस समय में वैश्वीकरण का बुलबुला फूट चुका है। उग्र राष्ट्रवाद की पुर्नवापसी हो रही है। दुनिया पहले से ज्यादा अस्मितापरक विमर्शों की गिरफ्त में है। 21वीं सदी के दूसरे दशक की दहलीज पर खड़े होकर लोकलुभावनवाद एवं युवाओं के इस वैश्विक उबाल को हम किस प्रकार व्याख्यायित एवंविश्लेषित कर सकते हैं; प्रस्तुत अध्यायों में हमारे समय के कुछ उर्वर मस्तिष्कों ने इस पर एक विचारोत्तेजक बहसचलाई है।

भारत ने वैश्विक राजनीति के कई सारे विमर्शों का अपना खास देशज संस्करण तैयार किया है। यह कई मामले में वैश्विक जनतांत्रिक बहसों की दशा–दिशा तय करने वाला अलहदा सा मामला है जिसके पास जनतांत्रिक तापों एवं आतंरिक ऊर्जा के 'थर्मामीटर' बनने की क्षमता है। अकारण नहीं है कि दुनिया भर के विशेषज्ञों एवं एक्टिविस्ट लोगों के बीच लोकलुभावनवाद के भारतीय प्रारूपों एवं उसकी बहुस्वरी अभिव्यक्तियों को लेकर एक बौद्धिक आकर्षण मौजूद है। इस दिशा में हमारे समय के कई सारे राजनीतिक एवं सामाजिक विचारकों ने एमसीआरजी के तत्वााधान में एक साझा विचार तंत्र विकसित किया है। इस बौद्धिक अभियान की एक आवाज एवंउसके भारतीय भाषाओं में प्रचार–प्रसार की उत्प्रेरक बनकर हमें काफी खुशी हो रही है।

लोकलुभावनवाद का उदय ऐतिहासिक आकस्मिताओं के उदय की अनिर्वायता से जुड़ा हुआ मसला तो है ही,साथ ही इसमें वैचारिक शुद्धतावादी आग्रहों का भी विलोपन हो गया है। भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के स्तर पर भी, यह महान वचनों एवं वादों के भंग हो जाने की उदास कहानी कहती है, जिसे जनतंत्र, विकास, उदारवाद, वैश्वीकरण, समावेशन, जन सशक्तिकरण एवं मानव सुरक्षा और अधिकार सरीखे बड़ी बड़ी सारगर्भित अवधारणाओं से हमारे सामने कई दशकों से प्रस्तुत किया जाता रहा है। ऐसा नहीं है कि जनतांत्रिक चेतना एवं विकास की समावेशिता के मामले में शानदार प्रगतियों का गवाह हमारे पिछले सत्तर वर्ष

नहीं रहे हैं। लोकलुभावनवाद के उभार को इसी पृष्ठभूमि में समझे जाने की जरूरत है, जहाँ इसके आंतरिक तथ्यों एवं 'कंटेंट' को लेकर अकादमिक समुदाय में बहस जारी है। एमसीआरजी के इस बौद्धिक प्रयास को इसी कड़ी में एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदू की तरह देखा जाना चाहिए।

आज जब हिंदी और अन्य बेहद महत्वपूर्ण भारतीय भाषाओं में इस पूरी बौद्धिक कवायद का संचित सार अकादमिक पाठकों के हाथों में मौजूद है तो हम इस महत्वपूर्ण अवसर पर अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहते हैं। मुझे बेहद खुशी है कि इस सृजनशील एवं ज्ञान विमर्शी संस्था के एक महोत्तर सदस्य के रूप में मेरे इस सुझाव को अंगीकृत किया कि एमसीआरजी के ज्ञान एवं अकादमिक हस्तक्षेपों का लाभ उन विशाल पाठकों/शोधकर्त्ताओं तक भी जाए जो भारतीय भाषा परिवार में फैले हुए हैं। इसके पीछे मेरा यह भी उद्देश्य था कि युवा शोधकर्त्ताओं तक अद्यतन अकादमिक विमर्शों की गुणवत्तापूर्ण सामग्रियोंकी पहुँच बनाई जाये ताकि वे भी अपने समय और समाज का अर्थवत्तापूर्ण संधान कर सकें। मुझे बेहद खुशी है कि इनके प्रबंध न्यासियों, प्रशासनिक नेतृत्व एवं हितग्राही समूहों ने इस सुझाव को ना केवल माना बल्कि इसे जमीनी तौर पर क्रियान्वित भी कर डाला।

इस कड़ी में मैं अपनी संपूर्ण कृतज्ञता के साथ अपने उन मूल्यवान अकादमिक साथियों का आभार करना चाहती हूँ जिनके शोधपरक आनुभाविक एवं अकादमिक विमर्शों से समृद्ध शोध आलेखों को इस संकलन में स्थान दिया गया है। इन स्वतंत्र पर एक दूसरे से गहरे संपृक्त शोध प्रपत्रों में लोकलुभावनवाद के विभिन्न प्रारूपों, जमीनी तथ्यों एवं बौद्धिक–सैद्धांतिक बहसों पर अपनी विचारसमृद्ध कलम (अब ये भी कर्सर और कम्पयूटर के इस दौर में मुहावरा भर ही रह गया है) चलाई है। मेरे पास इन महत्वपूर्ण अकादमिक योगदान को रेखांकित करने के लिए शब्द नहीं है। इस आठ आलेखों की विशाल प्रस्तुति का फलक देश–काल–परिस्थितियों के परे जाकर समकालीन भारतीय राजनीतिक यथार्थ की कई गुत्थियाँ खोलता है जिसके साथ हमारा अतीत और वर्तमान मिलकर एक संक्रमणशील यथार्थ का सृजन कर रहा है। अमित प्रकाश, रजत रॉय, मनीष झा, सुमोना दासगुप्ता, मैदुल इस्लाम, शेफाली झा, कपिल तमांग एवं सुश्री रिया के इस आठ गुणवत्तापूर्ण शोध आलेखों से लोकलुभावनवाद की भारतीय

अभिव्यक्तियों एवं वैश्विक प्रारूपों की एक बढ़िया समझ हमारे सामने बनती है। इस कार्य को अकादमिक समुदाय को आगे भी सैद्धांतिक रूप से विश्लेषित करना शेष है। इस कार्य के लिए एमसीआरजी के श्री रजत रॉय और सुश्री रिया का विशेष तौर पर आभार है जिनके सामयिक हस्तक्षेप से यह सम्पन्न हुआ है।

मैं अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अपने विद्यार्थी एवं मालवीय शांति अनुसंधान केन्द्र के सहयोगी सहायक आचार्य डॉ. प्रशांत कुमार का धन्यवाद करना चाहती हूँ जिन्होंने तमाम अकादमिक दायित्वों के कार्यभार के बावजूद अल्प समय में अनुवाद का महत्ती कार्य कर के इस शोध को हिन्दी भाषियों तक पहुचाँने में योगदान दिया है। इसी कड़ी में मेरे महत्वपूर्ण शोध छात्रों स्नेहा, राजकुमार, अजय, शैलेन, आनंद एवं नेहा का भी अकादमिक सहयोग मिला है। मैं मालवीय शांति अनुसंधान केन्द्र की प्रशासनिक अधिकारी रूबी श्रीवास्तवा का भी आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। इन सभी के सक्रिय सहयोग के बिना यह अकादमिक कार्य सम्भव नहीं हो पाता।

इन सभी को स्नेहासिक्त आभार।

मुझे विश्वास है कि आने वाले दिनों मे यह कार्य वृहत्तर शोध समुदाय एवं अकादमिक जगत में अपार स्वीकार्यता एवं प्रतिष्ठा ग्रहण करेगा।

अंजू शरण उपाध्याय
वाराणसी
11 दिसम्बर 2019

उदारवादी आख्यानों में एक संकट के रूप में लोकलुभावनवादः भारत में राजनीति और नीति निर्माण पर कुछ विचार

अमित प्रकाश

समकालीन राजनीति को विश्लेषित करने के लिए वैश्विक स्तर पर लोकलुभावनवाद का प्रयोग हो रहा है चाहे वह अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप का चुनाव हो या तुर्की में एक सुधारवादी से सर्वसत्तावादी के रुप में अर्दुआन का रुपांतरण।[2] यह परिघटना रुस में पूतीन के राज्य व्यवस्था के उपर अपनी लौह पकड़ में भी देखी जा सकती है। यहाँ पर यह ध्यान में रखने योग्य तथ्य है कि अतीत में इसके उदाहरण मौजूद रहे हैं जिसमें अर्जेटीना में पेरोन का शासन, भारत में इंदिरा गाँधी का गरीबी हटाओ का नारा और उसके अनुरुप राजनतिक व्यवहार और फ्रांस की जैकोबियन राजनीतिक इसके बेहतर उदाहरण हैं। इस विषय के अध्येताओं के बीच इसके अनिवार्य एवं आधारभूत विशेषताओं को लेकर बहस अभी भी जारी है और इसे कई तरह के राजनीतिक व्यवहारों जिसमें लोक प्राधिकार द्वारा आर्थिक संसाधनों की बेलगाम खैरात बांटने से लेकर अंगीकृत करने की राजनीति, भूमिपुत्र के सिद्धांत से लेकर विशिष्ट राष्ट्रीयताओं की दावेदारी तक के सारे तत्व शामिल हो जाते हैं। यहाँ तक की जन प्रतिरोधी आंदोलनों एवं सरकारी संस्थानों पर कब्जा जमाने की आंदोलनधर्मिता भी इसी सैद्धांतिकी के अंतर्गत आती है।[3] आम आदमी पार्टी का दिल्ली के राजनीतिक फलक पर उदय एवं भारतीय जनता पार्टी का एक दशक से चले आ रहे राजनीतिक पहलकदमियों एवं चुनावी सफलताओं को भी इसी संदर्भ में प्रदर्शित किया जा सकता है।

इस संप्रत्यय की नमनीयता एवं लचीलेपन को ध्यान में बिना रखे हुए हम यह मान सकते हैं कि यह उदारवादियों की उस चिंता को मुखर करता है जिसमें अनुदारवादी जन सामान्य द्वारा नृजातीय राष्ट्रवाद या नस्लीय स्थानीयतावाद के नाम पर भावनात्मक उद्देलन प्रदर्शित किया जाता है। इसमें सरकारी प्रक्रियाओं के ऊपर तकनीकीदक्ष प्रशासन का सर्वग्राही नियंत्रण स्थापित करने पर चिंता जताई जाती है और जनातांत्रिक नियंत्रण के बिना आर्थिक संसाधनों के उपर खुली बंदरबाँट करने की छूट मिल जाती है।[4]

इस संदर्भ में यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि लोकलुभावनवाद का सिर्फ राजनीतिक व्यवहार और दृष्टिगोचर होने वाले राजनीतिक घटनाओं से ही संपूर्ण अर्थवत्ता या अंतिम परिणामों का विश्लेषण नहीं किया जा सकता। उसी कड़ी में यह भी जोड़ना समीचीन होगा कि उदारवाद के विपरीतार्थक शब्द के रुप में लोकलुभावनवाद का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। लेकिन यह भी सच है कि उदारवाद के समकालीन अभिव्यक्तियों से लोकलुभावनवाद की सैद्धांतिकी एवं व्यवहार का गहरा संबंध है। सैद्धांतिकी निर्माण के लिए आवश्यक आनुभविक पड़तालों एवं विश्लेषण के द्वारा लोकलुभावनवाद की परिघटना का समग्र विश्लेषण एवं व्यवहार नहीं समझा जा सकता है। तथ्यों से परे जाकर एक नवअन्वेषी दृष्टि से ही इस परिघटना को सबसे बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

इस शोधपत्र को इसी संदर्भ में तीन हिस्सों में विभिाजित किया गया है। पहले भाग में उदारवादी सैद्धांतिकी के संकटों को विश्लेषित किया गया है। जिसके द्वारा लोकलुभावनवाद को एक ठोस आकार मिलता है और इसको व्यवस्थित करने के सूत्र उपलब्ध होते हैं नवउदारवाद के साथ इसके संबंधों को भी इसी हिस्से में व्यवस्थित किया गया है। दूसरे हिस्से में प्रथम भाग के ही धारणाओं को और समग्रता में विश्लेषित किया गया है। वही तीसरे हिस्से में उदारवादी सिद्धांतों के कुछ श्याम पक्षों का निरुपण किया गया है जिसकें सामाजिक विविधता के साथ इसके जटिल अंर्तसंबंधों तक पहुंचते हुए निष्कर्ष तक शोधपत्र की यात्रा होती है।

प्रथम भाग

उदारवाद को उन राजनीतिक प्रक्रियाओं की रुपरेखा की तरह देखा जाता है जिसमें व्यक्तिगत अधिकारों, स्वतंत्रता और नागरिकों की समानता को प्राथमिकता मिल जाती है। इसी के समानान्तर, उदारवाद को किसी जटिल समाज में उन सामाजिक संविदाओं की जटिल अंतक्रियाओं के वचनपत्र की भी तरह देखा जाता है। इसके भौगोलिक एवं लौकिक विस्तार में ही इसका आकर्षण अंर्तनिहित है। समकालीन वित्तीय पूंजीवाद के दौर में उदारवाद को उन टूटे हुए वादों और उम्मीदों की भी तरह देखा जाता है जिसमें जनतांत्रिक भावनाओं को नीचा दिखाया गया है और वैध आकांक्षाओं यथा बढ़ी हुई भागीदारी बेहतर संवाद और समानुपातिकसमानता एवं

बराबरी के सिद्धांतों को नकार दिया गया है। लोकलुभावनवाद इन टूटे–भग्न उम्मीदों को संबोधित करता है और एक समरुपी एवं चुनौती नहीं दिए जा सकने वाले लोकप्रिय इच्छाओं का सृजन करके इन टूटे वादों को पूरा करने का प्रयत्न करता है।

लोकलुभावनवाद एवं उदारवाद का संकट

लोकलुभानवादी राजनीति अनिवार्य रुप से आधुनिक उदारवादी जनतंत्र के साथ संबंद्ध है लेकिन यह बात स्पष्ट नहीं है कि इसमें आधुनिक क्या है? यह सिर्फ इस परिप्रेक्ष्य में आधुनिक कही जा सकती है कि इसमें प्रत्यक्ष जनतंत्र की व्यवहार्यता को दूर करके उदारवादी प्रतिनिधिमूलक जनतांत्रिक संस्थाओं एवं लोकाचारों का विकास किया जाता है। इन दोनों परिघटनाओं को और गहराई में विश्लेषित करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि जनतंत्र जहाँ एक तरफ शासन की एक पद्धति है वहीं दूसरी तरफ यह एक प्रतीकवादी ढांचा है जिसके अंतर्गत जनता की संप्रभु एवं जनतांत्रिक भावनाएं कार्यरुप होती हैं। इस जनतांत्रिक व्यवस्था को 'आधुनिक' बनाने वाला तत्व यह उदात्त भावना है कि शक्ति एवं सत्ता का निष्पादन जनता के द्वारा एक प्रतीकवादी ढांचे के अंतर्गत उदारवादी विमर्शों से परिपूरित सैद्धांतिकी के अंतर्गत किया जाना चाहिए। इस भावना की परिपूर्णता व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं मानवाधिकारों की उपलब्धि के बिना संभव नहीं है। यह आधुनिक उदारवादी वैश्विक दृष्टि का अनिवार्य प्रस्थान बिंदु है। तथापि इनको उन जनतांत्रिक परंपराओं का हिस्सा नहीं माना जाना चाहिए जहाँ लोकप्रिय संप्रभुता एवं समानता के दो बनुयादी तत्व अलग–अलग हों। धर्मसत्ता और राज्य, वैयक्तिक एवं सार्वजनिक एवं जर्मन वैचारिकी 'रेक्टस्टैट' का पूरा विचार ही उदारवाद की पूरी राजनीतिक में अंतर करने योग्य है। इस पूरी राजनीतिक व्यवस्था का उदय जनतांत्रिक विमर्शों से नहीं हुआ है अपितु इसकी जड़ें कहीं अन्यत्र है। उदारवादी परंपरा को विधि के शासन से गठित किया गया है जिसमें मानवाधिकारों की सुरक्षा और व्यक्तिक स्वतंत्रता के सम्मान का भाव सन्निहित है। उन जनतांत्रिक परंपराओं में समानता, शासन और शासितों के बीच अस्मितापरक तादात्म्य एवं लोकप्रिय संप्रभुता के तत्व मौजूद रहते है और ये एक खास ऐतिहासिक आकस्मिकताओं में आकार ग्रहण करते है। इसी

तरीके से उदारवादी परंपरा का जनतांत्रिकीकरण किया गया और जनतंत्र को उदारवादी स्वरुप दिया गया। आज भले ही हम जनतंत्र एवं उदारवाद के संबंधों को सामान्य तरीके से ग्रहण करें लेकिन इस संक्रमणशील अवस्था को प्राप्त करने में कठिन संघर्ष हुए हैं। यह एक आसान प्रक्रिया नहीं रही है।[5]

उदारवादी आख्यानों के द्वारा इन तनावों को समाहित करनेकी अक्षमता (शायद जानबूझ कर की गई प्रतिक्रिया हो) ने बहुस्तरीय प्रभाव उत्पन्न किए। इसमें सबसे ज्यादा व्यवहत संप्रत्यय 'जनतांत्रिक स्फिति' का रहा है जहाँ समानता और लोकप्रिय संप्रभुता के तत्वों को जनतांत्रिक गति की एवं तकनीकीकरण के लिए निष्प्रयोज्य मान लिया जाता है। यह विधि के शासन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए निष्प्रभावी बना दिया जाता है। यह एक संजोग नहीं है कि इन दोनों संप्रत्ययों को नवउदारवादी व्यवस्थाओं में भी लोकप्रिय स्थान प्राप्त है।

इसी के संबद्ध एकदूसरी प्रक्रिया में सामाजिक समुदायों के दावों को समाहित करने के तनाव को भी आधुनिक उदारवादी जनतंत्र के साथ स्थान नहीं दिया जाता है। सामाजिक विशिष्ठताओं को अपने साथ जोड़ पाने की अक्षमता के मामले में भी उदारवादी जनतंत्र का प्रदर्शन नाकाफी रहा है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर और नृजातीय–सांस्कृतिक तटस्थता का मिथक आधुनिक उदारवादी जनतंत्र को उन लोकप्रिय वैचारिक आधारों का स्वाभाविक प्रवक्ता बनने से रोकता है जिसकी जड़े सामुहिकता के गतिकी में छिपी हुई हैं। इन दोनों धाराओं के बीच एक आकस्मिक ऐतिहासिक संबंध जिसे राष्ट्रवाद का नाम दिया जाता है और यह सांगठनिक ढांचे के अंतर अभिव्यक्ति पाता है। उसे राष्ट्र राज्य के रुप में सीमित स्थान प्राप्त होता है और यह कई तरह के संदर्भों से भौगोलिक रुप से कटा हुआ रहता है। यह परिघटना दक्षिणी वैश्विक गोलार्द्धों में ज्यादा पाई जाती है।

द्वितीय विश्वयुद्धोपरांत कुछ दशकों के लिए यद्यपि (1940 के दशक से 1970 के तेल संकट तक), इन दोनों धाराओं के बीच संवाद एवं सहमति बनाने के प्रयत्नों को (व्यक्तिगत स्वतंत्रता, विधिक शासन, समानता के अधिकार और लोकप्रिय संप्रभुता के समुचित प्रतिनिधित्व के बीच) 'केन्शवादी' उदारवादी कल्याणकारी राष्ट्र राज्य के द्वारा संभव बनाने का प्रयत्न किया गया। इसी समय इन संभावनाओं के कुछ

महत्वपूर्ण तत्वों को प्राप्त करने में सफलता भी प्राप्त हुई। सामाजिक–आर्थिक समानता के लिए जननीतियों की सफलता बहुत सारे राष्ट्र–राज्यों में प्राप्त की गई हालांकि प्रदर्शन के पैमाने पर यह मिली जुली सफलता का ही मामला था। कई सारे महत्वांकांक्षी योजनाओं को आकार दिया गया और इनकी सफलता की दर भी अच्छी कही जा सकती है। इसमें प्रमुख रुप से स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार जैसे मुद्दे शामिल थे। सामाजिक–आर्थिक समता के लक्ष्यों को प्राप्त करने के तमाम प्रयत्नों को हम सिरे से खारिज नहीं कर सकते हैं लेकिन इससे ज्यादा महत्व का मामला यह था कि उदारवादी आख्यानों के वचन पत्रों को जकड़न में डाल दिया गया। इस समानता, जनतंत्र एवं लोकप्रिय संप्रभुता के वचन पत्रों को जनतंत्रीय व्यवस्था में राजनीति एवं नीतिनिर्माण की वैचारिक यात्रा का प्रस्थान बिंदु माना गया जिसने विधि के शासन एवं स्वतंत्रता की भावना को मजबूती प्रदान की। भारत जैसे राष्ट्र राज्यों में अभिशासन एवं राजनीतिक के आधारभूत लक्षणों में इस उदारवादी आख्यान को समाहित किया गया।

इन आख्यानों के प्रतिक्रांतियों ने भी भारतीय राष्ट्र राज्य के शासन में बहुत दूर तक उपस्थिति दर्ज की है। इन वचन पत्रों का लगातार अन्वेषण एवं प्रश्नांकन होता रहा और यह प्रक्रिया 1960 के दशक तक आते–आते प्रारंभ हो गई। पहले यह उन प्रतिमानों के व्यवहारिक एवं समीचीन होने को लेकर प्रारंभ की गई और 1970 तक आते–आते इन प्रतिमानों पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया गया। केन्शवादी राज्य के पतन के बाद नवउदारवादी व्यवस्था आकार ग्रहण करती है जिसमें 'राजनीति' एवं 'नीतिनिर्माण' का संतुलन एवं उसके उदारवादी विमर्शों के साथ संबंध में युगांतकारी परिवर्तन आए। तार्किक एवं तकनीकी व्यक्तिवाद ने प्राथमिकता के आधार पर राजनीति एवं नीति निर्माण के आधारों में परिवर्तन तो लाए ही साथ ही साथ इन दोनों बिंदुओं के बीच तनाव के नए क्षेत्रों का भी सृजन किया। इन नाजुक संतुलन को तोड़कर व्यक्तिवादी तार्किक स्वंयसिद्धि को एकमात्र लक्ष्य मान लिया गया जिसने विधि के शासन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर दूरगामी प्रभाव डाले। बाजार केंद्रीत सक्षमता एवं कुशलता पर आधारित इस नवव्यवस्था में समानता एवं लोकप्रिय संप्रभुता के विचार को बलिवेदी पर रख दिया गया। सामाजिक–आर्थिक समानता के

साथ ही साथ राजनीतिक समुदाय की वैध आकांक्षाओंको उसके आंतरिक आधारभूमि पर ही पूरी तरह उलट दिया गया और यह एक मृगमरिचिका बनकर रह गया। यह अकारण नहीं है कि पहचान के राजनीतिक दावों और स्वीकृति जिसे न्याय का नाम दिया गया, के सार्वत्रिक आधारों में इन सामाजिक समुदायों के अंतर्गत अपार मांग पैदा हुई।

इसी राजनीतिक अर्थशास्त्र के उदारवादी व्याकरण के संदर्भ में लोकलुभावनवादी राजनीति का संदर्भ बनता है जिसे ऐतिहासिक रुप से वाममार्गी या दक्षिणमार्गी लोकलुभावनवाद से थोड़ी भिन्न स्थितियों में समझा जा सकता है। इसकी समकालीन कार्यकलापों एवं प्रवृत्तियों में वैचारिक रुप से लोकप्रिय आंदोलनों के साथ थोड़ी भिन्नता दिखाई पड़ती है जिसे अलग अलग स्थानिक एवं भौगोलिक परिक्षेत्रों के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है।

लोकलुभावनवाद की आधारभूत विशिष्टताएं

इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि – ''1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में, लोकलुभावनवाद को विउपनिवेशीकरण के संदर्भ में व्याख्यायित किया जाता था जिसमें 'किसानीयत' के भविष्य को लेकर अनुमान किए जाते थे। 21वीं सदी के प्रारंभ में सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि इसकी उत्पत्ति को सामान्यतया साम्यवाद और विशिष्ट अर्थों में माओवाद के विकास के संदर्भ में देखा गया''।[6] यद्यपि अपने समकालीन अर्थों में लोकलुभावनवाद की कोई अनवरत बौद्धिक विरासत नहीं है। इसका अर्थ अलग अलग राजनीतिक परिक्षेत्रों में भिन्न हो जाता है। युरोपीय अर्थों में अनुदारवाद के विकास के साथ नृजातीय राष्ट्रवाद या स्थानीयवाद के साथ राजनीतिक प्रतिक्रियाओं में इसका अर्थ ग्रहण किया जाता है। जनतंत्र के सिद्धांतकार नवउदारवादी तकनीकतंत्र के उभार से जहाँ चिंतित हैं वहीं जनभावनाओं के साथ इस विशिष्ट तकनीक प्रधान समूहों का भावनात्मक अलगाव खतरनाक तरीके से बढ़ गया है। उदारवाद के लोकप्रिय संप्रभुता के सिद्धांत और जमीनी राजनीतिक सच्चाईयों के बीच ना पाटने वाली दूरी बनती जा रही है।[7] इस अर्थों में लोकलुभावनवाद को एक प्रकार का प्रजातांत्रिक सुधारवादी प्रतिमान समझा जाता है जिसमें लोकप्रिय संप्रभुता की आकांक्षाओं को पुर्नस्थापित करने की क्षमता

मौजूद है। विभिन्न लोकप्रिय जनांदोलनों के वैश्विक प्रसार ने (ऑक्युपाय वाल स्ट्रीट और जनलोकपाल आंदोलन का क्रमशः अमेरिका एवं भारत में उभार) भी इस लोकलुभावनवाद को गति दी है और एक वैकल्पिक राजनीति की पृष्ठभूमि तैयार हुई है। इस तरह की राजनीतिक प्रक्रियाओं को जनता के मोहभंग की अवस्था की तरह देखा जाता है जिसमें राजनीतिकनेतृत्व के प्रति अनास्था प्रकट होती है। यह पुरानी राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक रुप से विशिष्ठ एवं प्रभु वर्गों की जनतांत्रिक आंकाक्षाओं के प्रति दुराग्रह को दर्शाता है। यह किसी खास वैचारिक सत्ता प्रतिष्ठान तक ही महदूद नहीं है।

लोकलुभावनवादी राजनीतिक के समर्थकों और दावों को उदारवादी आख्यानों में व्याप्त असंतुलन को फिर से संतुलित करके उनकी प्राथमिकताओं का पुर्ननिर्धारण करना होगा। अनुदारवादी तकनीक प्रधान व्यवस्था में लगातार विस्तार हो रहा है जिसे उदारवादी शासन तंत्र एवं लोकलुभावनवाद नियंत्रण में रखने की कोशिश कर रहा है। लोकप्रिय संप्रभुता का समानता के कमजोर प्रतिरुपों के साथ एक नए प्रकार का गठजोड़ बनता हुआ दिखाई पड़ता है और इसने प्रकारांतर में उदारवादी आख्यान के एक और महत्वपूर्ण घटक व्यक्तिगत स्वतंत्रता को भी मजबूत किया है। समानता और विधि के शासन के साथ भी यही परिघटना सामने आती है। लोकलुभावनवादी परिकल्पनाओं में व्यक्ति को सामुहिक हितों के ऊपर प्राथमिकता नहीं दी जाती है इसमें आंदोलनधर्मिता के पहलकदमियों के लिए दोनों तरह के प्रस्थान बिंदुओं का सहारा लिया जाता है चाहे वह उदारवादी आख्यानों की सफलता का संदर्भ हो या उनकी कमजोरियों का। उदारवादी आख्यानों की कमजोरी या अनुदारवादी जनतंत्र के लोकलुभावनवाद द्वारा उसके उपर अधिकार दोनों के ही मूल में संरचनात्मक कारण हैं।

उदारवादी आख्यान एवंइसके मोहभंग की स्थिति

समाज विज्ञान में आम तौर पर आनुभविक सूचनाओं एवं तथ्यों के आधार पर राजनीतिक प्रक्रियाओं के प्रभावों एवं नीतिओं का मूल्यांकन किया जाता है। उदाहरण स्वरुप पूर्ण साक्षरता के दावों का अध्ययन करने के लिए इसका संबंधित सूचकांकों यथा समग्र सूचना, संपूर्ण साक्षरता प्रतिशत, बच्चोंका विद्या केन्द्रों में

नामांकन की दर एवं सीखने की क्षमता का मापन किया जाता है। लेकिन इसी पद्धति से जब हम उदारवादी आख्यानों एवं उसके वादों का मापन करते हैं तो हम एक मानसिक विभ्रम में पड़ जाते हैं। करीब–करीब सारे प्रदर्शक सूचकांक यह बताते हैं कि समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु अपार प्रयत्न किये गए और नागरिकों के लिए आर्थिक अवसरों की संख्या में गुणातमक वृद्धि हुई। शिक्षा, स्वास्थ्य, अर्थिक अवसर, रोजगार जैसे नागरिक जीवन के संकेतकों में जननीति को समानता के लक्ष्य के लिए समर्पित किया गया। यद्यपि इस मूलभूत तर्क को कि समानता और जनतंत्र को उदारवादी आख्यानों में अनिवार्य रुप से अंर्तःनिहित किया गया है यह एक प्रकार की अच्छी भावाना बनकर रह जाती हे। यह एक उद्घोषणात्मक कार्यवाही बनकर रह जाती है जिसका काम उदारवादी राज्य को वैधता प्रदान करने तक सीमित रह जाता है। उदारवादी राज्यों का जमीनी प्रदर्शन इन वादों को लेकर अलग ही कहानी कहता है।

आर्थिक समानता के झूठे वादे

भारत में उदारवादी नीतियों एवं व्यवस्था के प्रारंभिक दशक सायास तरीके से समानता के लक्ष्य के प्रति समर्पित था जिसमें अवसर एवं सम्मान के लिए लक्ष्य आधारित प्रयत्न करने की भावना अभिव्यक्त की गई थी। संविधान के प्रस्तावना में उद्घोषित इस लक्ष्य को, ऐतिहासिक रुप से, प्राप्त करने के लिए प्रयास भी किए गए और सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार व्यवस्था को लागू किया गया। यह युगांतकारी परिवर्तन उस समय की वैश्विक सहमतियों के ही अनुरुप थी।

1949 में संविधान सभा के द्वारा सार्वजनिक वयस्कमताधिकार व्यवस्था अंगीकार करने के उपरांत जनतांत्रिक समानता के प्रश्न से दृष्टि सामाजिक–आर्थिक समानता के प्रश्न पर गई जिसके लिए आर्थिक संसाधनों का सृजन और उसका न्यायपूर्ण वितरण अनिवार्य था। यह उस समय की सबसे महत्वपूर्ण सहमतियों में से एक आधुनिकता के प्रतिमानों एवं आर्थिक नीतियों के नवउदारवादी रुझानों के अनुरुप था।[8] अंतः सामुदायिक समानता के साथ जनतांत्रिक उभारों की अभीप्सा को जोड़ा गया और इसे देशव्यापी स्तर पर क्षैतीज एवं उदग्र विस्तार दिया गया। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

आर्थिक समानता के प्रश्न पर, कई सारे अध्येताओं का यह मानना था कि नवउदारवादी व्यवस्थाओं की तरफ झुकाव नकारात्मक अर्थ लिए हुआ था जिसमें समानता के प्रश्न को दरकिनार कर दिया गया।

भारतीय नीति निर्माताओं ने निर्धनता निवारण और असमानता के प्रति गंभीर रवैया अपनाया और आजादी के बाद करीब 40 वर्षों तक केंद्रीय योजनाओं के द्वारा ऐसा करने की कोशिश की गई। बाजार पर पूरी तरह इसलिए भरोसा नहीं किया गया क्योंकि यह आशंका जताई गई कि ऊपरी वर्ग एवं मध्यवर्ग द्वारा अत्यधिक उपभोग के कारण विकास के लिए जरुरी अन्य क्षेत्रों तक अपेक्षित निवेश नहीं हो पाएगा। मुद्रास्फीती के कारण हुए अर्थव्यवस्था के समष्ठिगत क्षेत्रों में विकास दर को कुप्रभावित रहने के कारण पुर्नवितरण व्यवस्था पर फिर से विचार करने की आवश्यकता महसूस हुई। इस प्रक्रिया में सबसे बुरे तरीके से किसान, मजदूर, असंगठित क्षेत्र के कामगार ही प्रभावित हुए। 1980 के मध्य से, भारतीय सरकारों ने बाजार केंद्रीत सुधार कार्यक्रम व्यापक रुप से प्रारंभ किए जिसके प्रारंभिक चरण में विस्तारवादी मौद्रिक नीति अपनाई गई और वितरण पर जोर दिया गया। ग्रामीण इलाकों और अर्द्धशहरी भारत पर ज्यादा आवंटन कर के उदारवाद की नई पूंजी केंद्रीत असमान विकास को पुर्नसंतुलित किया गया। 1990 के दशक के प्रारंभ से, नव उदारवादी आर्थिक कार्यक्रमों को ज्यादा निर्मम एवं स्पष्ट तरीके से लागू किया गया जिसकी जड़ों में वैश्वीकरण, निजीकरण एवं उदारीकरण की नीति मौजूद थीं। राज्य के प्रगतिशील हस्तक्षेप से ध्यान हटाकर अब इस त्रिमूर्ति पर ध्यान दिया गया।[9]

इस तरह की नीतियों का दूरगामी एवं आर्थिक जीवन के समस्त उपादानों पर गहरा असर पड़ा जिसमें रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि क्षेत्र शामिल थे। इस संदर्भ में एक विस्तृत विश्लेषण ना करके सिर्फ इसके (साहित्य के विश्लेषण में यह किया गया है। कुछ संकेताकों एवं दिक्दर्शकों का यहाँ पर उदाहरण स्वरुप विश्लेषण किया गया है।

गिनी सूचकांक के आधार पर भारत में आकार लेते भयानक असमानता को हम विश्लेषित कर सके हैं। यहाँ पर दिए गए ऑकड़ों के अध्ययन से स्पष्ट है कि 1984

के बाद शहरी और ग्रामीण दोनों जनता में असमानता अविश्वसनीय तरीके से बढ़ रही है। अर्थव्यवस्था के जानकारों द्वारा गहराई से किए विश्लेषण द्वारा यह पता चलता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी जबरदस्त असमानता देखी गई (0.595 का गीनी सूचकांक)।

हरेक ग्राम के लिए आय की असमानता का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि असमानता का उच्च स्तर सर्वत्र व्याप्त है। हरेक ग्राम में प्रति व्यक्ति आय का वितरण सूचकांक 0.595 था। उच्च आय वर्ग के ही पास आय का ज्यादातर हिस्सा संकेद्रीत हो जाता है। सर्वेक्षण में पाया गया कि काफी कम संख्या में ही सही लेकिन इसके पास आय वितरण का अधिकतम हिस्सा चला जाता है।[10]

विभिन्न सामाजिक समूहों तक आय एवं आर्थिक संसाधनों की विषमता की प्रवृत्तियाँ एक समान स्तर पर देखी गयीं।

'असमानता के इन प्रवृत्तियों और आयामों को देखते हुए यह कह सकते हैं कि भारत ना केवल एक उच्च आय असमानता का देश है बल्कि इन असमान स्तरों में पिछले दो दशकों में जबरदस्त वृद्धि हुई है। क्षैतीज असमानता में अनवरत वृद्धि के कारण वंचित एवं हाशियें के समूहों का बांकी अन्य समूहों के साथ लगातार आय असमानता का स्तर बढ़ता चला गया है। यह प्राकृतिक ना होकर पीढ़ीगत एवं अवसरों की असमान उपलब्धता का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। आर्थिक संसाधनों पर जिन मुट्ठी भर लोगों का कब्जा है वही राजनीतिक निर्णयों, जनतांत्रिक प्रक्रियाओं एवं सामाजिक ताकतों पर नियंत्रण स्थापित करके सामाजिक प्रगति के मार्ग में बाधक बन जाते हैं।[11]

इस असमानता के सर्वग्रासी उभार को रोकने में सार्वजनिक नीति–निर्माण, व्यवस्था असफल रही है। कृषि क्षेत्र में तो यह गंभीर स्तर के संकटों का सामना कर रहा है जिसके कारण किसानों की आत्महत्या, पट्टेदारी की खेती (प्रो. धनाग्रे इसे भी एक तरह का कर्जजाल ही मानते हैं) कर्ज की न्यूनतम उपलब्धता, शहरी क्षेत्रों की तरफ पलायन, किसानों की घटती संख्या और कृषि के लिए नीतिगत समर्थन की कमी जैसे मुद्दे हमारे सामने यक्षप्रश्न की तरह खड़े हैं।

भारत में कृषि के इस घनघोर संकट के पीछे नवउदारवादी नीतियाँ जिम्मेदार है जिसमें कॉर्पोरेटी औद्योगिक पूंजीवाद का स्वंय सिद्ध करने में अपनी ऊर्जा लगाई है। भारतीय राज्य के पास इस दीर्घकालीन संकट को सुलझाने के लिए ना तो अपेक्षित इच्छाशक्ति है और ना ही योग्यता।[12]

गैर कृषि कार्यों में भी रोजगार की स्थिति भयावह है। अस्थायी एवं अनुबंध आधारित सेवा के कारण कामगारों की आजीविका संकट में वृद्धि हुई है। संगठित क्षेत्रों में भी असुरक्षित रोजगारों के बदलते चलन ने राज्य की भूमिका को नए तरीके से पारिभाषित किया है। राज्य की भूमिका के लगातार घटते चले जाने के कारणों की पड़ताल यहाँ पर रेखांकित करने योग्य है।[13]

रोजगार की गुणवत्ता लगातार घट रही है जिसे 1980 के दशक से प्रारंभ किए गए श्रम सुधारों के कारण और नुकसान पहुंचा है। आर्थिक असुरक्षा के कारण लोग निवेश करने में आनाकानी कर रहे है। अंकटाड की वैश्विक रिर्पोट यह बताती है कि आर्थिक उत्पादन के वैश्विक स्तर पर कामगारों एवं पूंजी के समानुपातिक अनुपात में 65 प्रतिशत से लेकर 54 प्रतिशत तक की कमी आई है। यह 1980 से लेकर 2011 तक में यह सर्वेक्षण द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है। इस बढ़ती प्रवृत्तियों के कारण अल्पकालीन स्थायी रोजगार एवं अस्मिता निर्माण के लिए उचित संस्थानिक व्यवस्था तो कमजोर सिद्ध हुई है। इस कारण विश्वसनीय सामाजिक पूंजी, भविष्य की दशा दिशा और संरक्षण करने वालों मानवधिकारों एवं नियामकोंकी उपलब्धता सबसे जरुरी प्रश्नों में से एक बन जाती है।[14]

आर्थिक असमानता के इन विमर्शों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि सामाजिक विकास के संकेतकों यथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर भी वहाँ भग्नहृदय कहानी ही कही गई है। शिक्षा एवं रोजगार के अवसरों में समानता के सवाल पर उदारीकरण के बाद के नीतिगत परिवर्तन एवं ढांचे को हम नकारात्मक अर्थों मे ही लेने के बाध्य हैं। इस जटिल व्यवस्था केअंतर्गत ही भारत में शिक्षा की उपलब्धता एवं अवसरों की समानता के प्रश्न पर विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों में अलग अलग कहानी है। केरल जहाँ शैक्षणिक अवसरों के मामले में न्यूनतम असमानता का राज्य है। सामान्यतया दक्षिण के राज्यों में यह असमानता अपेक्षाकृत न्यूनतम है।

ग्रामीण गरीबी के मामलें में बिहार, ओड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल जैसे राज्य शीर्ष पर है। बिहार में जहाँ स्थिति खराब ही रही है वहीं बांकि के दो राज्यों में अपेक्षाकृत प्रदर्शन का स्तर संतोषजनक हे। नीतिगत चरों के बीच गरीबी निवारण, जीडीपी में वृद्धि, निर्धनता के प्रतिशत इत्यादि प्रश्नोंका समाधान करने हेतु महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक संगठन मौजूद हैं और इन्होंने आकार उम्मीद की एक नई किरण भी जगाई है। अब समय आ गया है कि परिस्थितियों पर आधारित कारकों पर ध्यान दिया जाए जिसमें पीढ़ीगत गरीबी, बचपन की अशक्तता एवं अवसरों की कमी का खामियांजा विभिन्न सामाजिक समूहों को ना भुगतना पड़े।

इस प्रकार हम पाते हैं कि शैक्षणिक अवसरों की समानता का मामला आर्थिक असमानता के साथ प्रत्यक्ष जुड़ा हुआ है। रोजगार की गुणवत्ता का भी इसी तरह प्रत्यक्ष संबंध स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच से प्रत्यक्ष जुड़ा हुआ हैं।

स्वास्थ्य क्षेत्र सुधारों की अनिवार्यता ज्यादातर मामले में वित्तीय मदद से वंचित सार्वजनिक क्षेत्रों में प्रर्दशित होती है जिसकी हालत खस्ता है और यह लगातार आक्रामक तरीके से बढ़ रहे निजी क्षेत्र के साथ अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य क्षेत्र को भी बाजार के सिद्धांतों के अनुरुप बनाया जा रहा है जिसमें प्रयोग शुल्क, निजी–सार्वजनिक भागीदारी और स्वास्थ्य सेवाओं के विकेंद्रीकरण एवं व्यवसायीकरण को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष असर स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता, उपलब्धता, वहनीयता, स्वीकार्यता एवं गुणवत्ता पर पड़ा है। सभी लोगों की स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच नहीं बन पाई है। इसने गरीबी के स्तर में और बढ़ोत्तरी की है और बेलगाम स्वास्थ्य सेवा दरों ने आम आदमी का जीवन दूभर कर दिया है। यहा पहुँच की असम्पन्नता का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस व्यवस्था ने महंगी स्वास्थ्य सेवाओं तक निर्धन जनता की पहुंच करीब–करीब असंभव बना दी है।[15]

पिछले 70–80 सालों में हुए आर्थिक विकास की गौरवगाथाओं तक ज्यादातर समाज वैज्ञानिक विश्लेषण के उपरांत पहुंचकर उसकी चकाचौंध एवं सफलता की कहानियों से आकर्षित हो जाते हैं। आर्थिक अवसर तो निःसंदेह बढ़े ही और इन्हें गलत भी नहीं ठहराया जा सकता है। इसने मानवीय उपभोग एवं आर्थिक संसाधनों तक

लोगों की पहुंच को यकीनन बढ़ाया है लेकिन इसके समानान्तर यह भी तय है कि पूरे इतिहास में कभी भी इस तरह की असमानता नहीं देखाी गई।

उदारवादी सैद्धांतिकी एवं विविधताः समानता की जगह?

उदारवादी सिद्धांत के द्वारा प्रस्तुत वयस्क मताधिकार एवं वैयक्तिक अधिकारों एवं राजनीतिक संगठन के मूलभूत आधार के रुप व्यवहार के बीच में लंबी खाई है। विविधिकृत सामाजिक समूहों द्वारा सामुहिक दावेदारी के द्वारा विभिन्नताओं की स्वीकृती और उसको मनवाने की जिद् ने उदारवादी राज्य को सार्वजनिक आधार उपलब्ध कराया है। व्यक्तिगत अधिकारों पर आधारित राजनीतिक प्रक्रियाओं का विभिन्न समूहों के पहचान पर आधारित दावेदारी के बीच असुविधाजनक संबंध बहुत सारे सामाजिक परिघटनाओं के विस्तृत संकेतकों को भी खारिज कर देता है। इन सारे तनाव के बिंदुओं का तीन स्तरों पर सामुहिक असर परिलक्षित होता है– प्रथम, सामाजिक अंतर की वैध दावेदारी या तो आर्थिक नजरिये से नकार दी जाती है या उसे एक साथ जोड़ लिया जाता है। द्वितीय, उदारवादी आख्यानों में सन्निहित समानता के वादों को झूठा ठहरा दिया जाता है और तृतीय, राजनीतिक जगह की निर्मिति में लोकलुभावनवादी राजनीतिक पहलकदमियों को जमीन प्रदान की जाती है। तथापि–

बहुत सारे उदारवादी यह मानते हैं कि 'मानवाधिकारों' पर जोर देकर अल्पसंख्यकों के संघर्ष को सुलझाया जा सकता हैं सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को अप्रत्यक्ष तरीके से सुरक्षा दी जा सकती है जिसमें समूह की सदस्यता के बिना बुनियादी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार सभी लोगों तक मुहैंया कराया जा सकता है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों तक बिना कोई विशिष्ठ अधिकार पहुंचाए यह काम किया जा सकता है। अल्पसंख्यक अधिकारों की जगह मानवाधिकार के सिद्धांतों को प्रदान करके इस बात को सुनिश्चित किया जा सकता है कि अलपसंख्यक समूहों के सदस्यों को समान अवसर एवं व्यवहार का अधिकार देकर उनके किसी विशिष्ट सांस्कृतिक एवं नृजातीय विशेषताओं पर आधारित दावेदारी को वैधता प्रदान नहीं किया जा सकता है। इस दर्शन से प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र ने अपने वैश्विक मानवाधिकार घोषणा

पत्र में अल्पसंख्यकों से संबंधित विशिष्ट प्रावधानों को खत्म कर दिया। इस बदलती प्रवृत्ति को कई सारे उदारवादी सही ठहराते हुए इसे स्वीकार करते हैं।[16]

जनतंत्र एवं समानता के इन वादों की तलाश में, 1940 से ही सामाजिक सिद्धांतों ने सामाजिक न्याय की भावना को पल्लवित पुष्पित किया। अध्येताओं ने विभिन्न प्रतिमानों, व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं के द्वारा अवसर की समानता के सिद्धांत का विस्तार किया और उन वंचित तबकों तक वितरणात्मक न्याय की पहुंच बनाने की हिमायत की जिसे केन्शवादी कल्याणकारी राज्य में स्वीकार किया गया था (जैसा कि पहले भी तर्क किया जा चुका है कि यह वादे अंततः झूठे निकले)।

कालांतर में सामाजिक न्याय और समानता के आर्थिक सिद्धांत के बीच की खाई ने (जो सामाजिक सैद्धांतिकी का मुख्य लक्ष्य था) अंततोगत्वा सामाजिक–सांस्कृतिक समानता के विचार को भी खंडित कर दिया। इसने उदारवादी सैद्धांतिकी के एक बड़े हिस्से को एक प्रकार के खोखले वाक्जाल में परिणत कर दिया। उदारवाद के वचन पत्रों जिसमें समानता एवं जनतांत्रिक भागीदारी का स्वप्न शामिल था, अब इस नयी व्यवस्था में बेमानी हो गए। इसने एक विकल्प को उत्पन्न किया (संभवतः मौलिक) जिसमें नए प्रकार के राजनीतिक साझेदारी एवं सहकार की संभावना तलाशी गई जिसमें सामाजिक न्याय एवं समानता की खोज नए तौर तरीकों से की जानी थी।

'सामाजिक न्याय का विमर्श प्रारंभ में वितरण पर आधारित था जिसे अब पुर्नवितरण की दावेदारी से समझा जाने लगा। यह पहचान की स्वीकृति का मसला था जिसे ज्यादा प्रमुख भूमिका में लाया गया। हाल के विकास क्रम में इसने न्यायपूर्ण पुर्नवितरण को पूरी तरह से खत्म तो नहीं किया लेकिन इसे केंद्रीय भूमिका से उतारकर परिधि पर ला खड़ा किया। व्यवहारिक एवं बौद्धिक तरीके से देखने पर दोनों प्रकार के न्याय की दावेदारी एक दूसरे से अलग हो गई जिसने न्याय के पुर्नवितरण के लिए एक प्रकार की सक्रियतावादी राजनीति को जन्म दिया।[17]

समकालीन राजनीति में विधिताओं के प्रबंधन और पहचान के ही केंद्रीय तत्व के आसपास राजनीतिक एकजुटता बन रही है। इसमें अध्येताओं का ध्यान पुर्नवितरण एवं राजनीति के इस अंर्तःसंबंधों पर है।[18] जैसाकि नैंसी फ्रेजर तर्क देती है कि यह

बंटवारा एक मिथकीय प्रदिदर्श है। न्याय अब पहचान एवं पुर्नवितरण दोनों की मांग रखता है। दोनों में कोई एक अपने आप में स्वयं सक्षम नहीं है इन दोनों संभावनाओं के साथ एक मुक्तिकामी आदर्श के लिए हमें एक समग्र ढांचे की जरुरत होती है जिसमें न्याय को दोहरे आयामों में देखा जाता है जिसमें सामाजिक एकता की दावेदारी और विभिन्नताओं के पहचान की स्वीकृति दोनों ही मौजूद रहे।[19]

इसके अलावा न्याय की कोई भी मांग प्रतिनिधित्व के समावेशन को अनुदारवादी तरीके से नकार नहीं सकती। इस तरह पुर्नवितरण की किसी भी मांग में पहचान और प्रतिनिधित्व की भावना अनिवार्य तरीके से मौजूद रहती है। यह एक तरीके से बिना प्रतिनिधित्व के पहचान या पुर्नवितरण के भी मौजूद नहीं रहने का मामला है।[20]

सामाजिक न्याय के इस राजनीतिक एवं सैद्धांतिक पक्ष का, जिसमें समानता की तलाश का लक्ष्य हो, के साथ साथ पहचान आधारित एवं पुर्नवितरण पर आधारित व्यवस्था का सम्मिलन उदारवादी सैद्धांतिकी पर एक तरह का जटिलतम बोझ भी डालता है। यह विभिन्नताओं के प्रतिनिधित्व का मामला है जिसमें –

जो सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बहस के केंद्र में है वह सही प्रणाली और तंत्र विकसित करने कर है जिससे समूची वैश्विक उदारवादी राजनीतिक व्यवस्था जूझ रही है। पहचान के स्वीकृति की मांग ने सामाजिक सैद्धांतिकी को अन्याय के तीनों आयामों तक पहुंचने में कभी कभार ही मदद की है। इस तरह की मांगों को हमेशा नृजातीय या धार्मिक कहकर खारिज किया जाता है। उत्तरी आयरलैंड में प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक का मामला, लेबनान में ईसाई और मुसलमान का मामला, दक्षिण अफ्रिका में काले और गोरे का मामला और दक्षिण अमेरिका, पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया से लगायत दक्षिण एशिया में श्रीलंका में तमिल एवं सिंहलियों के मामले में यह उदाहरण हम देख सकते हैं। इस तरह की पहचान आधारित विभिन्नताओं की स्वीकृति के संकट में कई तरह की कार्यप्रणालियाँ कार्य करती है। जिसमें – सांस्कृतिक, भाषायी एवं क्षेत्रीय अस्मिता, गति, नृजातीयता एवं धर्म के अलावे ऐतिहासिक समानताओं का भी मसला हो सकता है। तथापि राजनीतिक जमीन को प्राप्त करने के लिए विभिन्नताओं के पहचान की राजनीति को लेकर ज्यादा संघर्ष

नहीं है।[22] भारत में ही उदाहरण स्वरुप, विभिन्नताओं के पहचान एवं स्वीकृति के विविध आयाम हैं जिसमें भाषायी से लेकर क्षेत्रीय अस्मिताओं का समर्थन शामिल है। 1950 से लेकर 1970 तक चले भाषायी आंदोलन, उत्तरपूर्व के नृजातीय अस्मिताओं के आंदोलन उत्तर भारत में दलित उभार विकास के अल्पता पर आधारित क्षेत्रीय आंदोलनों (जिसमें तेलंगाना, लद्दाख, उत्तराखंड, गोरखा, दक्षिण गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड इत्यादि) ने विभिन्न तरीकों की स्वायत्तता एवं साझा प्रशासन की जरूरत को रेखांकित किया था। यहाँ पर सांप्रदायिक एवं दलित पहचान की राजनीति इसका अपवाद थी।

इतने सघन एवं विविधिकृत दावेदारी के प्रकाश में, कम से कम हम चार प्रकार के विमर्शकारी कारकों की पहचान कर सकते हैं। इस चार प्रकार के मोटे–मोटे विभाजनों से इस पहचान अधारित राजनीति को हम समझ सकते हैं।

आदिवासी पहचान की सामाजिक–आर्थिक राजनीति

पहचान आधारित अस्मितापरक राजनीति का पुर्नवितरण एवं विकास के साथ संबंध, आदिवासी समुदायों के लिए प्रमुख मुद्दा है। उत्तर पूर्वी भारत से लेकर झारखंड, छत्तीसगढ़ एवं ओडिसा तक के मध्य भारत में अलग अलग प्रकार के आदिवासी अस्मितापरक अभिव्यक्तियाँ रहीं हैं। गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु तक फैले इस बहुस्वरी अस्मिताओं का संसाधनों एवं आजीविका को लेकर राज्य से संघर्ष रहा है। अस्मिताओं एवं विभिन्नता के संघर्ष को लेकर उनकी मांगों में संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण की धारणा बलवती रही है। यह राज्य के साथ एक संवादी अन्योन्यक्रिया विकसित कर के एक नई भाषा अर्जित करता है जिसे राजनीतिक रुप से उदारवादी व्यवस्थाओं में अभी भी पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया गया है। यह साझे शासन एवं समान वितरण की प्रतिध्यितमक व्यवस्था निर्मित करनके की मांग से जुड़ी है।

क्षेत्रीय पहचान की राजनीति

क्षेत्रीय पहचान एवं प्रतिनिधित्व की व्यवस्था देशव्यापी स्तर पर अलग अलग ढंग से प्रकट हुई है। आदिवासी, सामाजिक–नृजातीय अस्मिताओं के द्वारा अभिव्यक्त होकर इस अस्मितापरक राजनीति को राज्य द्वारा कईबार ज्यादा धर्म निरपेक्ष एवं

न्यायपरक माना गया है। क्षेत्रीय अस्मिताओं की ज्यादातर राजनीति (उत्तराखंड, ओडिसा, गुजरात, हिमाचल प्रदेश) सामान्यतया विकास राजनीति की भाषा में अभिव्यक्त होती है और राज्य नियंत्रित संसाधनों एवं लाभांशों के जनकल्याणकारी तरीके से पुर्नवितरित करने की मांग पर आधारित है। आर्थिक समता के वादों के टूट जाने के इस राजनीतिक घटनाक्रम में 'सापेक्षिक पिछड़ेपन' को ज्यादा ध्यान देकर केंद्रीय प्रश्न की तरह प्रर्दर्शित किया जाता है।

बहिष्करण के द्वारा पहचान की राजनीति

सामाजिक–धार्मिक पहचानों पर आधारित इस अस्मिताओं को राष्ट्र–निर्माण के अभियान में सबसे बड़ी बाधा के तौर पर देखा जाता है। इस राजनीति ने राष्ट्रीय राजनीतिक प्रक्रियाओं को सबसे गहराई से प्रभावित किया है और 'हिन्दुत्व' की पूरी राजनीति इसी राजनीतिक–सामाजिक समुदाय की निर्मिती का परिणाम है। इसने कई सारे सामाजिक समूहों की अपवर्जन की तरफ धकेल दिया है और इस समुदायों को विकास अल्पता के आधार पर यह सामाजिक अवस्थिति के पैमाने पर नीचे के पायदान पर आ गए हैं। अस्मितापरक एवं विकासपरक राजनीति के बीच के इस पहचानगत संघर्ष में एक वैकल्पिक समरुपी समुदाय की परिकल्पना को जन्म दिया है। इन समपति लेकिन असंबद्ध समूहों को लोकलुभावनवादी राजनीति प्रक्रियाओं द्वारा गतिशील बनाया जाता है।

प्रतिनिधित्व एवं समावेशन के द्वारा पहचान की राजनीति

विकासपरक राजनीतिक विमर्शों के द्वारा राज्य के साथ संवादी अंतःक्रिया की इस परिघटना को हम उत्तरप्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान जैसे राज्यों में दलित उभार के संदर्भ में समझ सकते हैं। दलितों की जातिगत पहचान के आधार पर उदारवादी जततंत्र की एक नई वैचारिकी विकसित होती है। जिसमें न्याय एवं समता की मांग प्रमुख है। सामुदायिक समानता पर आधारित इस उभार में पहचानगत अस्मिताओं को इस तरह व्याख्यायित किया जाता है किवह विशिष्ठ वर्गों के वर्चस्व को तोड़कर एक नया विकल्प रच सके जिसमें अस्मिता एवं प्रतिनिधित्व का न्यायपूर्ण समावेशन हो।

उपरोक्त सभी अस्मितापरक विमर्शों में विभिन्नता की स्वीकार्यता एवं प्रतिनिधित्व की समुचित व्यवस्था की मांग समान है और इस मामले में भारतीय राज्य का प्रदर्शन मिश्रित रहा है। भारतीय राज्य ने इन मांगों को सहभागिता एवं समान प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के आधार पर स्वीकार तो किया है लेकिन आर्थिक समानता की मांग अभी भी दूरगामी लक्ष्य की तरह है।[24] इस आर्थिक समानता के प्रदर्शनात्मक लक्ष्य पर भी भारतीय राज्य का प्रदर्शन निराशाजनक रहा है।

इन प्रक्रियाओं का असर सतही ना होकर कहीं ज्यादा गहरा है और कई दशकों तक इन मांगों के अनसुने और अनिर्णित रहने के कारण उदारवादी राजनीति ने अपने विरुद्ध आघातों की पूर्णपीठीका खुद ही तैयार की है। जितना ज्यादा यह पहचानपरक राजनीतिक अभियान अनुसुना रहेगा उसी अनुपात में एक वैकल्पिक समरुपी सामुदायिक राजनीति की स्वायत्तता बढ़ती चली जाएगी। समुदायों के विघटन की परिकल्पना और उदारवादी राज्य के वचन भंग की स्थिति के पीछे यही भावना काम कर रही है।

राजनीतिक रुप से, एक समरुपी समुदाय के निर्माण की सामाजिक गतिको में इन स्वायत्तताओं एवं विकल्पों को भले ही एक छोटे कदम की संज्ञा दी जाए परंतु कालांतर में एक अनुदारवादी राजनीतिक प्रक्रिया में इसके परिवर्त्तित होजाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। यह संयोगमात्र नहीं है कि लोकलुभावनवादी राजनीति के व्याकरण और पहचान की राजनीति के बीच बहुतायत समान जगह है।

भारतीय राष्ट्रीयता को अगर उसके क्षेत्रीय–सामाजिक–सांस्कृतिक हिस्सों के साथ देखा जाए तो राष्ट्रीय समुदाय के निर्माण की अवधारणा में समरुपी राजनीतिक समुदाय की परिकल्पना विस्तार पाती चली जा रही है।[25] यह लोकलुभावनवादी परिकल्पनाओं के जड़ में है। पहचान की राजनीति पर उद्देलित देश का एक बड़ा हिस्सा आज के समय में लोकलुभावनवादी राजनीति की सेवा में निमग्न है।

जब उदारवादी राजनीति के आख्यानों के साथ राजनीतिक प्रक्रिया अंतःक्रिया नहीं करती है तब इसका भावार्थ नहीं लगाना चाहिए कि लोगों की उदारवादी राजनीति की जनआंकांक्षाएं भी इस वर्चस्वी विचार के आगे समर्पण कर चुकी है। इसके उलट

कई बार उन जनतांत्रिक प्रारुपों में कई बार जबरदस्त राजनीतिक उत्तरजीवीता पाई जाती है। जिसमें उदारवादी समानता के लक्ष्य को अब लोकलुभावनवादी राजनीति के द्वारा ही प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

निष्कर्ष की जगह पर अनुदारवादी जनतंत्र से उदारवादी राजनीति तक मोहभंग की स्थिति

पिछले पृष्ठों में फैले तमाम विश्लेषणों से यह स्पष्ट है कि उदारवादी आख्यानों के मूल्यों और समकालीन लोकलुभावनवाद के समकालीन उभार के बीच के संबंधों पर कई सारे आनुभविक शोध की अपार संभावनाएं हैं। अनुदारवादी राजनीति के वैश्विक उभार से भारत भी अछूता नहीं है।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि जरुरी नहीं कि लोकलुभावनवादी राजनीति के उभार का तात्पर्य उदारवादी राजनीति के पूरी तरह से खारिज कर दिए जाने से ही निकाला जाए। यह बात ज्यादा सही होगी अगर हम कहें कि उदारवादी राजनीति के स्वप्नभंग एवं वचनभंग के ही आधारों पर लोकलुभावनवादी राजनीति अपना उभार पा रही है जिसमें उदारवाद के मूलभूत भावनाओं सामाजिक न्याय एवंसमानता के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रक्रियात्मक एवं संस्थात्मक संकल्प शामिल है। यह मूलभूत तरीके से सारभूत विमर्शों पर जोर देकर लोकलुभावनवादी राजनीति का एक न्यूनतम पाठ तैयार करता है।

इस लोकप्रिय राजनीति का मौलिक आधार संविधानगत भावना के अनुरुप सभी सामाजिक समूहों की नागरिक समानता पर आधारित है जिसके कारण लोकलुभावनवादी राजनीति की भाषाई अभिव्यक्ति भी सर्वसमानता पर आधारित है। यह बात दीगर है कि यथार्थ में यह सारभूत रुप में उपलब्ध हो या ना हो।

समानता पर आधारित इस परिघटना के एक इसके प्रारुप में लोकलुभावन राजनीति सामाजिक विविधताओं का समरुपीकरण करने का प्रयत्न करती है जिसमें एक चिंतन पर आधारित राजनीतिक प्रारुप भी निर्मित करने का यत्न किया जाता है। सामाजिक विविधताओं एवं सामाजिक न्याय को प्रक्रियात्मक एवं संस्थानात्मक

व्यवस्थाओं में समायोजित करने के मामले में उदारवादी राजनीति के खराब प्रदर्शन के कारण, इन सामाजिक विविधताओं से भरे समूहों को लोकलुभावनवादी राजनीति की भावनात्मक अपील आकर्षित करती है। उदारवादी राजनीति जहाँ समानता के सभी प्रारुपों को आर्थिक समानता तक ही संकुचित कर देती है वहीं लोकलुभावन राजनीति इसके विभिन्न प्रारुपों को समर्थित कर के उनकी समाजिक विशिष्टताओं को भोथरा बनाने का काम करती है।

उदारवादी जनतंत्र के इस नवउदारवादी प्रारुप में उन वचन–भंगों की व्यर्थता को रेखांकित किया है जिसमें सारभूत समानता को लगातार अनसुना करके नकार दिया गया। इसने वैकल्पिक रास्तों की तलाश को जन्म दिया और लोकप्रिय राजनीति ने इस खाली पड़े जगह को भरने की कोशिश की जिसे उदारवादी राजनीति ने एक तरह से त्याग दिया था।

यहाँ पर रेखांकित करने योग्य बात यह भी है कि लोकप्रियतावाद ने उसी संस्थागत प्रारुपों का उपयोग किया है जिसे उदारवादी राजनीति ने सृजित एवं विस्तार दिया है। जन लोकतंत्र के वैश्विक परिघटना ने सृजित एवं विस्तार दिया है। जन लोकतंत्र के वैश्विक परिघटना में चुनावी राजनीति की संरचना को गहरे तक प्रभावित किया परन्तु उसके अभाव में कई बार लोकलुभावनवादी राजनीति अपना कोई सामाजिक आधार भी नहीं बना सकती एवं राजनीतिक अभिव्यक्तियों के लिए भी उसी चुनावी राजनीति के जनसमर्थन पर अपना सारा दारोमदार टिका के रखना पड़ता है।

अंततः इस बात पर कम बहस की गुंजाइश है कि भारत एक प्रतिस्पर्धात्मक जनतंत्र है जिसमें उदारवादी आख्यानों की एक बड़ी सफलता का ज्वलंत इतिहास परिलक्षित होता है। तथापि यह जोड़ना यहाँ पर समीचीन होगा कि उदारवाद के वचनों एवं वादों का लोकलुभावनवादी राजनीति द्वारा पूरी तरह से कब्जा कर लेने की कोई भी कोशिश जनतंत्र के साभूत प्रारुपों को खोखला करनेका काम करेगी। अंतिम परिणति में भारत जनतंत्र तो रहेगा परंतु एक अनुदारवादी जनतंत्र बनकर रह जाएगा।

संदर्भ सूची

1. बेथन मैक्कर्नन.'फ्राम रिर्फामर टू न्यु सुल्तानः अर्दवान्स पॉप्युलिस्ट इवोल्युशन' इन द गार्जियन www.the guardian.com/world/2019/March11 accessed on 01 August 2019
2. एमिल हस्टेड. 'फ्राम क्रिएशन टु एम्पिलिफिकेशनः आक्युपाइ वालस्ट्रीट ट्रांजीसन इनटु एन आनलाइन पापुलिस्ट मुवमेंट' इन जुली उल्डेम एण्ड एन. ए वेस्तरगार्ड (एडिटेड) सिविक इंगेजमेंट एण्ड सोशल मीडियाः पालिटिकल पार्टिसिपेशन बीआंड प्रोटेस्ट, पेलग्रेव मैकमिलन, हेम्पशायर
3. जॉन वर्नर मुलर. 'व्हाट इज पापुलिजम?' युनिर्वसिटि ऑफ पेन्सीलवेनिया प्रेस, फिलाडैलफिया 2016, चैप्टर 01
4. चैन्टाल मुफे. 'द डेमोक्रेटिक पैराडाक्स'. लन्दन :वर्सो 2000, पीपी 2–3
5. जॉन वर्नर मुलर. 'व्हाट इज पापुलिजम?' युनिर्वसिटि ऑफ पेन्सीलवेनिया प्रेस, फिलाडैलफिया 2016, चैप्टर 01
6. उपरोक्त
7. उपरोक्त व्यवस्था के बारे में विस्तृत विवरण इस अध्याय के पहुँच से बाहर है।
8. पार्थप्रतिम पाल एवं जयती घोष. ' इनइक्विलीटी इन इण्डियाः ए सर्वे आफ रिसेन्ट ट्रेंड' डेसा वर्किंग पेपर नम्बर 45, न्यूयार्क, यूएन डिर्पाटमेंट आफ इकानामिक एण्ड सोशल अफेयर्स, 2007 पृष्ठ 01
9. मधुरा स्वामीनाथन एवं विकास रावल. 'इज इण्डिया रियली ए कन्ट्री आफ लो इनकम इनइक्विलीटि? आबर्जवेशन फ्राम 08 वीलेजेज.' इन रिव्यु आफ एग्रेरियन स्टडीज, वोल्युम 01 नम्बर 01, 2011 पीपी 19–21
10. एम मियाज असदुल्ला एवं गैसटन यालोनेत्सिकी. ' इनइक्विलीटि आफ एजुकेशनल अपारचुनिटि इन इण्डियाः चेन्जेस ओवर टाइम एण्ड एक्राश स्टेट, डिस्कसन पेपर नं. 5146, बॉन, इन्सटिच्युट फार द स्टडी आफ लेवर 2010, पीपी 25–26
11. डी एन. धनाग्रे, 'डिक्लाइनिंग क्रेडिविलिटि आफ द न्यु लिवरल स्टेट एण्ड एग्रेरियन क्राइसिस इन इण्डियाः सम आबर्जवेशनस, इन बी.बी. महन्ती (एडिटेड), क्रिटिकल परस्पेक्टिव आन एग्रेरियन ट्रांजिसन, इण्डिया इन द ग्लोबल डिवेट, एविग्ंडन, राउटलेज, 2016 पृष्ठ 161
12. बापू पी रमेश. 'इनफार्मल वर्क इन द फार्मल सेक्टरः कन्सेप्चुएलाइजिंग द चेजिंग रोल आफ स्टेट इन इण्डिया' इन अर्नेस्टो नरहोना एवं प्रेमिला डिक्रुज (एडिटेड), क्रिटिकल प्रस्पेक्टिव आन वर्क एण्ड एम्प्लायमेंट इन ग्लोबलाइजिंग इण्डिया, सिंगापुरः स्प्रिंगर पृष्ठ 84

13. रोनाल्ड लेबोन्टे एवं डेविड स्टकलर, 'द राईज आफ नियो लिवरलिजमः हाउ बैड इकानामिक्स इम्पेरिल्स हेल्थ एण्ड व्हाट टु डु अबाउट दिस' इन जर्नल आफ एपिडियोमोलाजी एण्ड कम्युनिटि हेल्थ, वोल्युम 70, नं. 03 मार्च 2016, पृष्ठ संख्या 312–318
14. राना वी बारू एण्ड मालु मोहन. 'ग्लोबलाइजेसन एण्ड नियोलिबेरिलिजम एज स्ट्रकचरल ड्राइवर्स आफ हेल्थ इनइक्विटिज इन हेल्थ रिसर्च पालिसी एण्ड सिस्टम, वोल्युम 16 नं 01 पृष्ठ 91
15. विल किमलिका, 'मल्टीकल्चरल सीटिजिनशीपः अ लिबरल थियोरी आफ माइनारिटि राइटस, आक्सफोर्ड : क्लैरैण्डन प्रेस 1995 पृष्ठ 2–3
16. नेन्सी फ्रेजर, ' सोशल जस्टिस इन द एज आफ आइडेण्टिटी पालिटिक्सः रिडिस्ट्रिब्युशन, रिकागनिशन एण्ड पार्टिसिपेशन, लन्दनः वर्सो, 2003 पृष्ठ 7–8
17. फॉर इन्सटेन्स, चार्ल्स टेलर, *मल्टिकल्चरलिज्म एण्ड द पॉलिटिक्स ऑफ रिक्निजन*, प्रिन्सटन, एन.जेः प्रिन्सटन युनिवर्सिटी प्रेस, 1992, चार्ल्स टेलर, *मल्टिकल्चरलिज्मः एक्जामिनिंग द पॉलिकटक्स ऑफ रिक्गनिशन* : प्रिन्सटन युनिवर्सिटी प्रेस, 1994 भिखू पारिख, *रिथिंकिग मल्टिक्ल्चरलिज्मः कल्चरल डाइवर्सिटी एण्ड पालिटिकल थ्योरी*, बेसिंगस्टोक, हैम्पशायर एण्ड लंदनः मैक्मिलन, 2000, एमंग्स्ट अदर्स।
18. नैन्सी फ्रैजर, 'सोशल जस्टिस इन द ऐज ऑफ आइडेन्टीटी पॉलिटिक्स : रीडिस्ट्रिब्यूशन रिक्गिनिशन एण्ड पार्टिसीपेशन इन नैन्सी फ्रैजर एण्ड उक्सेल हॉनेथ रीडिस्ट्रिब्यूशन? ए पॉलिटिकल फिलॉसफीकल एक्सचेंज (ट्रांसलेटेड बॉय जोयल गल्ब, जेम्स इन्ग्राम एण्ड किल्म) लंदन :वर्सो, 2003, पृ. 9
19. नैन्सी फ्रैजर, स्केल्स ऑफ जस्टिस : रिथिंकिंग पॉलिटिकल स्पेस इन ए ग्लोबलाईजिंग वर्ल्ड न्यूयॉर्कः कोल्मबिया यूनिवर्सिटि प्रेस, 2009, पृ 21
20. नैन्सी फ्रैजर, स्केल्स ऑफ जस्टिस : रिथिंकिंग पॉलिटिकल स्पेस इन ए ग्लोबलाईजिंग वर्ल्ड न्यूयॉर्कः कोल्मबिया यूनिवर्सिटि प्रेस, 2009, पृ 26
21. दक्षिण एशिया के कई वामपंथी आंदोलन इस वैचारिकी के अंर्तगत नही गिने जाते है।
22. अमित प्रकाश. द डेमोकगेटिक स्टोरी ऑफ ट्वीन चैलेंजेंस टू ग्वर्नेन्सः आइडेन्टिओ नीडस एण्ड डेवलपमेन्टल नीडस इन रणबीर सम्द्दर एण्ड सुहित के. सेन, संपादित *न्यू सब्जेक्टस एण्ड न्यू ग्वर्नेन्स इन इण्डिया, नई दिल्लीः राउदलेज, 2012, पृसं 13–68*
23. अमित प्रकाश. झारखंडः पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपमेन्ट एण्ड आइडेन्टिटी, नई दिल्लीः ओरियेन्ट लॉन्गमैन, 2001; एण्ड अमित प्रकाश, 'पॉलिटिक्स, डेवलेपमेनट एण्ड आइडेन्टीटी झारखंडः 1991–2009 इन डेन्यिल जे.

राइक्रॉफ्ट एण्ड संगीता दासगुपता, संपादित, *द पॉलिटिक्स ऑफ बिलॉन्गिंग इन इण्डियाः बिकमिंग आदिवासी, लंदनः राउदलेज,* 2011, पृ. सं. 175–89.

24. पार्था चटर्जी, द नेशन एण्ड इटस फ्रेगमेंटसः कॉलोनियल एण्ड पोस्टकॉलोनियल हिस्टरीस, प्रिन्सटन एन.जेः प्रिन्सटन युनिवर्सिटि प्रेस, 1993. अमित प्रकाश, 'कॉन्टेस्टेड डिस्कोर्सेसः पॉलिटिक्स ऑफ एथनिक आइडेन्टिओ एण्ड ऑटोनोमी इन द झारखण्ड रीजन इन इण्डिया इन ऑल्टरनेटिवसः ग्लोबल, लोकल, पॉलिटिकल, वाल्यूम 24 न.4 1999, पृसं. 461–96 फॉर एपलिकेशन ऑफ द आर्ग्यूमेंट टू रीजनल, रिकग्नीटिव पालिटिक्स

गोरखाओं की अस्मितापरक राजनीति और दक्षिणपंथ का हस्तक्षेप

कपिल तमांग

सार संक्षेप

राष्ट्रीयतापरक/अस्मितापरक राजनीति के पास दक्षिणपंथी राजनीतिक परिघटना के साथ जुड़ जाने की प्रबल संभावना होती है क्योंकि बाहरी/भीतरी का प्रश्न एक बहुत ही पतले आवरण के साथ इससे संलग्न रहता है। अल्पसंख्यको के ऊपर बहुमत के वर्चस्व एवं अत्याचार और 'गैर' की तरह उनको देखे जाने की प्रक्रिया को दक्षिणपंथी राजनीतिका अनिवार्य प्रस्थान बिंदू माना जाता है। गोरखा अस्मिता का प्रश्न हमेशा से ही जुड़ाव और एक आदर्शपरक 'युटोपिया' के साथ लंबे कालक्रम में दमन एवं प्रतिरोध की संस्कृति से जुड़ी है। गोरखाओं का यह संघर्ष शताब्दि पुराना है, परंतु 1980 के बाद इसमें युगांतकारी बदलाव आये और नृजातीय राष्ट्रवाद के तत्व इसमें प्रतिस्थापित होते चले गए। दक्षिणपंथ की तरफ बढ़ते झुकाव को हम हाल के वर्षो में राष्ट्रीय राजनीति के स्पष्ट दक्षिणपंथी उभार से समझ सकते हैं जिसने स्थानीय गोरखा राजनीति में कई सारे दीर्घकालीन प्रभाव उत्पन्न किये है। यह शोध प्रपत्र उन ऐतिहासिक परिवर्तनो की जाँच पड़ताल करेगा जिसने गोरखा आंदोलन को अस्मितापरक राजनीतिक चरित्र दिया और साथ ही इस बात की भी तथ्यपरक खोज की जायेगी कि किस पड़ाव पर आकर इसमें दक्षिणपंथी झुकाव और आंतरिक परिर्वतन परिलक्षित होने लगे। यह इस नव–परिघटना के पीछे के कारणों को जानने का प्रयास है जिसके प्रभाव एवं विभिन्न प्रक्रियाओं को समझते हुए दक्षिणपंथी हस्तक्षेप को समझने का प्रयत्न किया जायेगा।

मुख्य संप्रत्यय : अस्मिता, दक्षिणपंथ, राष्ट्रियता, गोरखा, आंदोलन

पूर्व पीठिका–भारत जैसे राष्ट्र राज्य में राष्ट्रीयता का प्रश्न बार–बार अवतरित होता रहा है क्योंकि इस उपमहाद्वीप की अपार विविधताऐं है। इतिहास के विभिन्न कालक्रम में राष्ट्रीयताओं के प्रबल उभार के कई प्रतिरोधी आंदोलन भारत में खड़े हुए हैं चाहे वह असम और नागालैंड का उत्तर–पूर्वी भारत में आंदोलन हो या दक्षिण में द्रविड़ या तेलांगाना आंदोलन,चाहे वह आजाद कश्मीर की राष्ट्रीयता का मुद्दा हो या पंजाब का खालिस्तान आंदोलन। इसके

अलावा भी कई तरह के स्थानीय प्रतिरोधों को या तो दमन कर के शांत कर दिया गया या उसकी ऊर्जा को भारतीय राष्ट्र तंत्र ने निष्प्रभावी बनाने का कार्य किया है। राष्ट्रीयताओं के उभार का प्रश्न एक वैश्विक चुनौति है जिसे सैद्धांतिक अमली जामा पहनाए और इसके वृहत्तर समाजिक–आर्थिक परिदृश्य को समझे बिना इसकी जटिलताओं के नही जाना जा सकता है।

राष्ट्रीयता का प्रश्न अनिवार्य रूप से पूंजीवाद के प्रचार–प्रसार से जुड़ा है और राष्ट्र राज्य की संकल्पना के साथ आकार ग्रहण करता रहा है। राजनीतिक वैधता प्राप्त करने के लिए राष्ट्रवाद को एक महत्वपूर्ण कारक समझा गया। राष्ट्र राज्य को अधिकतम समावेशी होने एवं संस्थाकृत रूप से स्वतंत्र होकर अपने संपूर्ण राष्ट्रीयताओं के सहकार एवं सहयोग से ही शासन करने की अपेक्षा की गयी थी। विभिनन साम्राज्यों एवं राज्यों को झकझोर कर देनी की क्षमता राष्ट्रीयतापरक आंदोलन में रही है (ओ लेरी, 1997)

राष्ट्रीयता कोई 'नृजातीय' या मूलनिवासी' से जुड़ी परिघटना नहीं है अपितु इसके पाँच तत्त्व सर्वप्रमुख है– प्रथम, इसमें एक स्थिर एवं अनवरत सामुदायिकता का भाव हो, द्वितीय, एक समग्र भाषा हो, तृतीय, एक विशिष्ट भौगोलिक परिक्षेत्र हो, चतुर्थ, एक सामूहिक चरित्र हो। निश्चित ऐतिहासिक परिस्थितियों के अंतर्गत एक विशिष्ट राजनीतिक आकार एवं चरित्र इस राष्ट्रीयता का बनता हो जो सकारात्मक होता है और एक विशिष्ट युग की वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक परिघटना होती है। पूंजीवाद के प्रचार के साथ सामंतवाद के समर्थक शक्तियों के सामने राष्ट्रीयताओं का उभार देता है जिसे नव बुर्जुआ वर्ग अंजाम देता है। (स्टालिन, 1913)

विगत में सामाजिक अस्मिताओं की पहचानगत धारणा व्यक्तियों के ऊपर ज्यादा प्रभावी ढंग से कार्यरत थी। साझे सांस्कृतिक संवाद एवं भाषायी समानता को अतीत में राष्ट्रीयताओं के नजरिये से ज्यादा महत्व नहीं दिया गया लेकिन आधुनिकता के उभार ने सामाजिक भूमिकाओं को ज्यादा मुक्त एवं उदार बना दिया। इसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक संवाद एवं भाषायी जीवन की प्रमुखता को राष्ट्रीयताओं ने भी रेखांकित करना शुरू कर दिया और इसकी केन्द्रियता को स्थापित किया गया। व्यक्तियों का संस्कृति के आधार पर वर्गीकरण ही

राष्ट्रीयता है (ओ लेरी : 1997)। सांस्कृतिक पहचान एवं अस्मिता की जड़ हमारे अतीत में होती हैऔर अस्मिताओं के नामाकरण के साथ ही हम अतीत के उन व्याख्यानों के साथ अपने आप को साझीदार बना लेते है। वे हमारे सामुहिक स्मृति का हिस्सा बन जाती है। प्रभाव और पहुँच की विशिष्ट राजनीति के मध्य हमेशा से एक पहचानपरक राजनीति एवं शक्ति संबंधो की राजनीति खड़ी होती है जिसमें अंतर्विरोध तो होते ही है साथ ही साथ इसमें स्वायत्तता का प्रश्न भी महतवपूर्ण होता है। यहाँस्वायत्तता का तात्पर्य उस प्रतिरोधी स्वतंत्रता से है जो वर्चस्वी वैचारिकी एवं बहुमत के शासन के दमन के फलस्वरूप सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में आकार लेता है और एकरूपीकरण करने वाले राज्य के विरूद्ध स्वायत्तता एवं समानता के मूल्यों पर आधारित है। अस्मिता की राजनीति अंततोगत्वा अपने अंतिम परिणति में विविधता एवं स्वायत्तता की राजनीति है (हॉल, 1997)।

'गैर' बनाने की राजनीति ही दक्षिण पंथ की राजनीति का आधार है। बाहरी–भीतरी की द्वैधता से ही इस राजनीति को त्वरा एवं वैधता प्राप्त होती है। इसका समाधान निकालना ही सारे समस्याओ की जड़ तक पहुँचना है। समुदायों के बीच सत्ता का सही समायोजन किये बिना लोकप्रिय राजनीति समान्यतया दक्षिणपंथी मोड़ ले ही लेती है। 20वीं सदी के प्रारंभ में इटली एवं जर्मनी में फासीवाद एवं नाजीवाद के उदाहरण से हम इसे समझ सकते है। 1925 में भारत में राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ (RSS) की स्थापना नागपुर में के0बी0 हेडगेवार ने की। सांस्कृतिक संगठन के बाह्य आवरण के बावजूद संघ ने भारतीय राजनीति को निर्णायक तरीके से प्रभावित किया। हिंदू राष्ट्र की स्थापना के घोषित लक्ष्य के पीछे एक नये किस्म की पदानुक्रम पर आधारित ब्राहम्णवादी व्यवस्था का वर्चस्व स्थापित करना इसका मुख्य ध्येय है। सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक संकटो से ही संघ ने अपनी ऊर्जा ग्रहण की है और सारे नागरिको को हिंदू जीवन पद्धति के अंतर्गत लाना उनका लक्ष्य है। 1992 के बाबरी मस्जिद ढहाए जाने के उपरांत की गयी साम्प्रदायिक हिंसा भारतीय इतिहास की क्रूरतम घटनाओं में से एक है। अतीत में कई बार अलग–अलग राजनीतिक कारणों से राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के ऊपर प्रतिबंध लगाया गया और यही वजह है कि 2014 आते आते उन्होंने अपने रणनीतियों में सादंर्भिक एवं समयानुकुल परिवर्तन लाया। हिंदू वैचारिकी और जीवन पद्धति को एकमात्र वैध

एवं सहिष्णु परंपरा मानते हुये उनकी राजनीतिक सांगठनिक चेहरे भाजपा ने 2014 में बहुमत से सरकार बना ली। यह जानना आश्चर्यजनक एवं अकादमिक रूप से समृद्धिपरक हो सकता है कि विभिन्न राष्ट्रीययताओं के भावनाओं को प्रतिबिबिंत करने वाले क्षेत्रिय राजनीतिक दलों को किस प्रकार दक्षिणपंथी राजनीति के नृेतत्वकारी भूमिका में आए सत्ताधारी बी0जे0पी0 ने प्रभावित एवं आत्मसात किया है। उतर पूर्वी भारत में इसके अधिक स्पष्ट प्रमाण मिलते है।

गोरखाओं का अलग राज्य निर्माण सौ वर्ष से भी पुराना आंदोलन है। गोरखाओं का विश्वास है कि अलग राज्य निर्माण और अधिकतम प्रशासनिक स्वायतत्ता के प्राप्त होने पर ही उनकी अस्मिताओ के संरक्षण का प्रश्न सर्वप्रमुख है वहीं कार्यशील निम्न तबके के लिए अलग गोरखा राज्य उनकी समृद्धि की महत्वकांक्षाओं को सुनिश्चित करने की आधारभूमि है। यह गोरखाओं के लिए की कल्पनाजीवी 'यूटोपिया' है जो उनके दैनंदिन जीवन और वर्तमान के सारे समस्याओ का समाधान निकालेगा। गोरखा आंदोलन के इतिहास में अहिंसक मांग एवं वैधानिकता के समावेश से लेकर हिंसक कार्रवाइयों की एक लंबी घटना श्रंखला रही है जिसमें राष्ट्रीय राजनीतिक दलो के साथ साझेदारी एवं दबाव बनाने की रणनीति भी विद्यमान रही है। इस लंबी अवधि में नृजातीय–राष्ट्रवाद के तत्व भी इस आंदोलन में आते चले गये और धीरे–धीरे इसने दक्षिणपंथ की तरफ झुकाव प्रदर्शित करना शुरू कर दिया। यह एक प्रकार से संघ परिवार के ही वैचारिक खेमे में शामिल होने की खुली घोषणा करने जैसा था।

गोरखा अस्मिता का संक्षिप्त आंदोलनकारी इतिहास

अपने दीर्घकालीन कालक्रम में फैलेगोरखा आंदोलन ने एक लंबा रास्ता तय किया है। ब्रिटिश राज के ही समय से ही किसी खास राज्य या उपराष्ट्रीय पहचान के साथ जीने का प्रश्न गोरखाओ के सामुहिक चेतन में रहा और आधुनिक भारत के स्वातंत्रोयत्तर परिदृश्य में यह और घनीभूत हुआ। गोरखा आंदोलन को समझने के लिए हमें इसके भू–सांस्कृतिक इतिहास को समझना होगा जिसमें आंदोलन और इसके नंतृत्व की ऐतिहासिक भूमिकाओ की भी पड़ताल की जायेगी।

दार्जिलिंग का संक्षिप्त इतिहास

पूर्व में सिक्किम की राजशाही का एक हिस्सा रहे दार्जिलिंग को 1790 के दशक में नेपाल के राजा पृथ्वी नारायण शाह द्वारा सिक्किम पर कब्जा कर लिए जाने के कारण तीस्ता नदी तक नेपाल का शासन हो गया था। सिक्किम की मदद से 1814 में अंग्रेजी हुकुमत ने नेपाल को पराजित किया जिसके कारण सुगौली की संधि संपन्न हुई (1815)और ब्रिटिश राज ने मेची नदी से लेकर तीस्ता तक का भूभाग नेपाल से वापस ले लिया। 1817 की तीतल्या संधि के उपरांत सिक्किम को एक बफर राज्य की तरह माना गया और ब्रिटिश हस्तक्षेप की स्वतंत्रता भी सिक्किम पर थोपी गयी ताकि किसी तनाव की स्थिति में राजतंत्र को सुरक्षा दी जा सके। तिब्बत, भूटान और नेपाल के साथ निर्बाध व्यापार के लिए सिक्किम का 'बफर राज्य' होना एक अनिवार्यता थी। एक दशकके बाद सिक्किम एवं नेपाल के बीच तनाव उभरने पर कैप्टन जी0ए0 लॉयड और जे0 डब्लू0 ग्रांट को संघर्ष निवारण की जिम्मेंदारी दी गयी। इन दोनों अंग्रेज अधिकारियों को यहां का वातावरण बहुत अनुकूल लगा और 1829 में इन्होंने एक यक्ष्मा निदान केंद्र बनाने के लिए सरकार के पास प्रस्ताव भेजा। 1849 तक आते आते अंग्रजो ने यहां पर पूर्ण आधिपत्य जमा लिया और कालिम्पोंग और डोआर्स के क्षेत्र को अंग्रेज–भूटान युद्ध 1865 के दौरान अपने नियंत्रण में ले लिया गया। 1860 के दशक तक दार्जिलिंग में क्रमशः विकास एवं आबादी की बसावट प्रारंभ हो गयी और कालांतर में इसे एक जनपद/जिलेका दर्जा दिया गया जिस पर बंगाल प्रेसीडेंसी के कानून अनुप्रयुक्त नहीं होते थे। चाय बागानो एवं सेना के नियोजन केंद्र इत्यादि के विकास के साथ बाहर से प्रवासन प्रारंभ हो गया। इसमें कुछ स्वैच्छिक अप्रवासन या और कुछ जबरदस्ती भी कराये गये थे ताकि ब्रिटिश सरकार का कार्य सुचारू रूप से चल सके। 1874में दार्जिलिंग को अनुसूचित जिले का दर्जा दिया गया। 1905 के बंगाल विभाजन के दौरान बिहार के भागलपुर जिले के साथ दार्जिलिंग को संलग्न कर दिया गया और कालांतर में 1919 में इसे पुनः बंगाल को दे दिया गया।

स्वतंत्रता पूर्व आंदोलन का इतिहास

बंगाल से इतर एक अलग प्रशासनिक व्यवस्था की गोरखा इलाकों में मांग सर्वप्रथम उच्च मध्यवर्गीय वर्ग से उठी जिसमे पुलिस, सेना, व्यापारी वर्ग एवं धनाढ्य भूटिया लोग शामिल थे। उन्होंने 'हिलमेन एशोसियेशन' के नाम से एक संगठन बनाया और 1907 में सर्वप्रथम अंग्रेजी

सरकार के समय अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। 1919 में जब बंगाल के साथ फिर से दार्जिलिंग को प्रशासनिक नियंत्रण में ले लिया गया तब डोआर्स और दार्जिलिंग को बंगाल से स्वायत्त कराने की मांग की गयी। एडविन मोन्टेस्क्यु के पास प्रतिवेदन देकर 'पिछड़े क्षेत्र' का नामाकरण हटाने की मांग की गई और एक 'विशिष्ट क्षेत्र' बनाने की मांग इन दोनों क्षेत्रो के लिए की गई। यूरोपिय समुदायों और स्थानीय चाय बगान मालिको के द्वारा भी इन मांगो को समर्थन दिया गया। हिलमेन एशोसिएशन के द्वारा 1941 तक स्वतंत्र राज्य के लिए लगातार प्रतिवेदन दिये गये जिसके उपरांत इसका विघटन हो गया। बंगाल से इतर अलग प्रशासनिक स्वायत्तता की इच्छा के बावजुद इस संगठन का राष्ट्रीय आंदोलन में कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं था। इसके अलावा मध्यवर्गीय नौकरीपेशा लोगो के द्वारा जिसमें नव शिक्षित वर्ग प्रमुख था, उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में प्रत्यक्ष भागीदारी की वकालत की। यह कलकत्ता में शिक्षित एक नया समूह था जिसकी चेतना राष्ट्रीय आंदोलन के अंतर्गत निर्मित हुई थी। गोरखा समुदाय के अंतर्गत देशप्रेम एवं अखंड राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार करने हेतु 'गोरखा साथी' नाम के पत्र की शुरूआत 1906 में की गई। इस पत्र को कालातंर में अंग्रेजी राज ने प्रतिबंधित कर दिया। डॉ0 पारसमणि प्रधान, धरणीधर शर्मन और कई सारे स्थापित नेपाली भाषी साहित्यकारों ने नेपाली साहित्य सम्मेलन के माध्यम से एक मानक नेपाली भाषा एवं साहित्य चेतना बनाने का प्रयत्न किया। ये सभी लोग बंगाल के इस इलाके पक्ष में नहीं थे क्योंकि इनका मानना था कि इससे गोरखा लोगो के अलगाव एवं पिछड़ेपन की प्रक्रिया और तेज होगी। 1920 में इस सम्मेलन मे बंगाल के अंतर्गत ही 'स्वशासन' की मांग उठाई। बंगाल के एक एक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी दल बहादुर गिरी ने असहयोग आंदोलन में भी चाय बगान मजदूरो की सहभागिता सुनिश्चित की। उनके प्रयासो को गहराई से रेखांकित करते हुये महात्मा गांधी ने 1924 के नागपुर अधिवेशन में श्री गिरी के निधन पर शोक प्रस्ताव पारित कराया। 1941 में ऑल इण्डिया गोरखा लीग (AIGL) की स्थापना हुई जिसका प्रमुख उददे्श्य गोरखाओं के लिए अल्पसंख्यक दर्जा दिलाने का था। इसके साथ–साथ प्रांतीय विधायिका में ज्यादा प्रतिनिधित्व एवं गोरखा कैदियों की ब्रिटिश सरकार से रिहाई की मांग भी प्रमुखता से उठाई गई। इसी संगठन ने पहली बार 'गोरखास्थान' जैसे शब्द को प्रचलित किया।

स्वातंत्रोत्तर भारत में गोरखा आंदोलन

1943 में बंगाल के कुख्यात अकाल और द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न सामाजिक–आर्थिक संकटों ने आम जनजीवन को दार्जिलिंग में भी प्रभावित किया। गोरखा लीग और पुराने राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस संदर्भ में कोई खास मदद नहीं पहुंचाई। वाहन परिचालक संघ के एक सक्रिय सदस्य रतन लाल ब्राम्हण ने (इसका नाम मैला बाजे भी था) वामपंथी दलो के सक्रिय सहयोग से मदद प्रारंभ की। गोदामों से लूटे गये अनाजों को अकाल पीड़ीत जनता में वितरित किया गया। दार्जिलिंग में कम्युनिस्ट पार्टी का जिला कार्यालय खोला गया जिसके सक्रिय सदस्य सुशील चटर्जी, रतन लाल ब्राम्हण, गणेश लाल सुब्बा, मटू बहादुर हमाल, चारू मजूमदार इत्यादि थे। 1947 में रतन लाल और गणेश सुब्बा ने संसद में कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ से अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें नेपाली भाषी लोगो के लिए 'गोरखास्थान' की मांग की गयी। इसमें दार्जिलिंग, नेपाल के भूभाग एवं सिक्किम शामिल थे। कालांतर में इस मांग को सिरे से खारिज कर दिया गया। पार्टी द्वारा यह कहा गया कि इस मांग को ना तो राष्ट्रीय और नाही जिला स्तर पर समर्थन दिया गया था। विभिन्न समयावधि में कई सारे संगठनो में अलग राज्य के लिए मांग एवं प्रतिवेदन प्रस्तुत किए लेकिन इसे तत्कालीन सरकारों ने खारिज कर दिया गया।

1961 में पश्चिम बंगाल भाषा विधेयक पारित कर के बांग्ला को सरकारी राज–काज की भाषा घोषित कर दिया गया। बी0बी0 हमाल, जिनकी संबंद्धता कम्युनिस्ट पार्टी से थी, उन्होंने पहाड़ के लिए नेपाली को राज–काज की भाषा घोषित करने की मांग की। लेकिन इसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम से नेपाली को हटा दिया जिसके परिणामस्वरूप अखिल भारतीय नेपाली मान्यता समिति का गठन किया गया और नेपाली को भी सरकारी भाषा का दर्जा दिये जाने की मांग की गई। एक दशक के संघर्ष के बाद 1973 में नेपाली को भी बांग्ला के अलावा सरकारी राज–काज की भाषा का दर्जा दिया गया।

1980 में सुभाष घिसिंग ने गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट की स्थापना की। संविधान की अनुसूची में नेपाली को जोड़े जाने के आंदोलन के समानांतर ही इस नये संगठन ने गोरखा स्वाभिमान और स्वायत्तता का प्रश्न जोर शोर से रेखांकित किया।

1986 तक आते आते इस आंदोलन ने हिंसक स्वरूप ग्रहण कर लिया और 1950 की भारत–नेपाल संधि को जलाये जाने के सार्वजनिक प्रदर्शन के दौरान सुरक्षा बलों की गोलीबारी में 13 लोगो की जान गयी। अलग राज्य के लिए हुये आंदोलन में करीब दो महीने तक अनवरत हिंसा और आगजनी हुई। 40 दिनो तक राष्ट्रीय राजमार्ग 31 ए को बंद रखा गया और इस दौरान हुये व्यापक जनहानि में 1200 नागरिकों एवं 44 सुरक्षा बलो की जान गई। यह एक सरकारी आंकड़ा है जबकि इसकी संख्या बढ़ी हुयी भी हो सकती है। 150 करोड़ से अधिक मूल्य की सरकारी संपति का नुकासान हुआ। इस आंदोलन का समापन एक अर्द्ध स्वायत्त गोरखा हिल परिषद के गठन से हुआ और नेपाली को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया।

2007 तक इस आंदोलन में अपेक्षाकृत शांति रहने के बाद दार्जिलिंग के राजनीतिक परिदृश्य पर बिमल गुरूंग का उदय हुआ, जो सुभाष घिसिंग के ही पूर्व सहयोगी रहे और अलग होकर गोरखा जनमुक्ति मोर्चा की स्थापना की। दार्जिलिंग को 6वीं अनुसूची में शामिल करने के विरोध से प्रारंभ कर यह आंदोलन अलग राज्य की मांग तक चला गया। इस बार यह आंदोलन कम हिंसक था परंतु 2011 में सुरक्षा बलों के द्वारा विरोध प्रदर्शनकारीयों पर किये गये गोलीबारी में 3 लोगो की जान गयी। बंगाल सरकार के साथ किए गये समझौते के तहत गोरखालैंड क्षेत्रिय प्रशासन की स्थापना हुई। 2013 में तेलांगना राज्य गठन के प्रभाव के कारण आंदोलन का पुनः प्रांरभ हुआ लेकिन इस बार आंदोलन को दबा दिया गया। 2017 में ममता बनर्जी द्वारा बांग्ला भाषा को विद्यालयों में अनिवार्य किये जाने की घोषणा के साथ ही पुनः हिंसक आंदोलन प्रारंभ हो गया। 105 दिनो तक चले हड़ताल एवं 20 लोगो की मृत्यु के बाद फिर एक समझौता किया गया। विनय तमांग को गोरखा स्वायत्त प्रशासन का नया नेता चुना गया और राज्य सरकार के साथ करीबी के कारण पश्चिम बंगाल की शर्तों पर ही ये समझौता संपन्न हुआ। 2018 के लोकसभा एवंविधानसभा के एक–एक सीट के लिए हुए

उपचुनाव के बाद राजनीतिक परिस्थितियों ने करवट ली और विनय तमांग को इन चुनावों में हार का सामना करना पड़ा और भाजपा ने दार्जिलिंग की गोरखा राजनीति में अपनी जगह बना ली।

इतिहास के कई कालखंडो में गोरखा आंदोलन ने अहिंसक आंदोलन से लेकर हिंसक रास्ते अख्तियार किये है जिसके फलस्वरूप कई बार यह आंदोलन राष्ट्रीय दलो के साथ दबाव एवं गठजोड़ की राजनीति भी करता रहा। दक्षिण पंथ की तरफ झुकाव में यह आंदोलन भी अछुता नहीं रहा। स्वायत्तता की मांग ने भले ही वर्गीय या जातीय चरित्र के कारण धरा पकड़ी हो लेकिन इसके पीछे प्रशासनिक, सांस्कृतिक दोहरे व्यवहार और पिछड़ेपन के कारक भी उतने ही महत्वपूर्ण रहे हैं। गोरखा अस्मिता के दो आयाम हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं– उच्च मध्यवर्ग जहां अस्मिता एवं पहचान के मुददे् को प्रमुखता देता है। जब–जब भी अपने क्षेत्र से बाहर जाने पर उसे सांस्कृतिक एवं पहचानगत भेदभाव का सामना करना पड़ा है तो अस्मिता का प्रश्न स्वाभाविक रूप से केन्द्र में रहा है। पड़ोसी देश के साथ ज्यादा सांस्कृतिक समानता होने के वजह से स्थानियता से परे जाकर जुड़ाव बनाना मुश्किल होता है। राज्य की प्रबल आंकाक्षा को इसी पृष्ठभूमि में रखकर समझा जा सकता है। निम्न मध्यवर्ग कार्यकारी समुहों में निर्धनता निवारण एवं रोजगार जैसे मुद्दो पर अलग राज्य की बैचैनी प्रदर्शित होती रही है और नया राज्य इसी आंकाक्षा को अभिव्यक्त करने की आधारभूमि बनने का स्वप्न जगाता है। कहना ना होगा कि आंदोलन का नेतृत्व हमेशा से ही उच्चवर्गीय–मध्यवर्गीय गोरखाओं के हाथ में रहा है।

समावेशी गोरखा अंदोलन के निर्माण प्रक्रिया में क्रमशः नये समूहों और जातीय चेतनाओं का प्रवेश होता चला गया और भाषा आंदोलन के उपरांत इसका चरित्र ज्यादा सांस्कृतिक एवं नृजातिय हुआ। गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा के नेता सुभाष घिसिंग ने इसे ज्यादा नृजातिय राष्ट्रवाद की तरफ मोड़ा और दक्षिणपंथ की राजनीति का प्रवेश इस आंदोलन में हो गया। इसकी विफलता के बाद बिमल गुरूंग के नेतृत्व में इस आंदोलन को साकार करने के ज्यादा राजनीतिक प्रयत्न प्रारंभ हुये। यह प्रयास तो असफल सिद्ध हुआ लेकिन इसने भाजपा को

दार्जिलिंग की स्थानीय राजनीति में पैर जमाने का मौका दे दिया जिसका प्रभाव क्षेत्र पूरे बंगाल तक फैलता चला गया।

भारतीय संदर्भ में दक्षिणपंथी राजनीति

अतिवादी किस्म की दक्षिणपंथी विचारधाराएं नृजातियता या धर्म का सहारा लेकर भावनात्मक उद्वेलन पैदा करती है और सही मुद्दो और ज्यादा ठोस किस्म के सामूहिक प्रभावों को भटका कर काल्पनिक दुश्मनों एवं काल्पनिक 'गैर' का निर्माण करती है। वे अपने अतीत के तमाम विफलताओं एवं सकंट के कारणों में इसी मिथकीय दुश्मन की जिम्मेदारी तय करती है यह पूंजीवाद को एक अर्थो में मदद भी करता है और इसके बदले में इन अस्मितापरक संघर्षों को पूंजीवादी शक्तियां अर्थिक रूप से सहयोग भी देती है।संकट के समय में ही पूंजीवादी ताकतें दक्षिणपंथी को मजबूत करती हैं और उसकी जन स्वीकार्यता को उभार मिलता है।

भारत में भाजपा के उदय के साथ ही करीब करीब संस्थागत दक्षिणपंथ की शुरूआत होती है। एक विचारधारा एवं सांस्कृतिक विचार के रूप में भले ही यह कार्य पुराना हो। 1980 के दशक के पूर्व के आपातकाल के संकट एवं इंदिरा गांधी के नेतृत्व के कुप्रभावों ने भाजपा को राजनीतिक स्वीकार्यता दी। 1993 की बाबरी मस्जिद घटना और रथयात्रा ने भाजपा की राजनीतिक ताकत एवं विस्तार में जबरदस्त वृद्धि की। 2014 तक आते–आते भारतीय जनता पार्टी बहुमत शासन वाली पार्टी हो गई जिसके कारण यह भौगोलिक एवं आर्थिक रूप से विशालतम पार्टी बनी। कांग्रेस शासन की विफलता के कारण भाजपा का सत्ता में आना अन्य महत्वपूर्ण कारणों में एक कारण भर था जिसमें देश में व्याप्त संकट का वातावरण तथा 'अच्छे दिन' लाने के वादों की भी प्रमुख भूमिका थी। करिश्माई नेतृत्व एवं कार्पोरेट पूंजीवाद के गठजोड़ ने भाजपा को अजेय बढ़त दी जिसके पीछे कांग्रेस एवं वामपंथी दलो की विफलता भी महत्वपूर्ण कारक थे। वर्गीय एव जातीय चेतनाओं के भावनात्मक उद्देश्यों ने भाजपा के समर्थन में एक जबरदस्त उन्माद पैदा किया। हिंदू वैचारिकी एवं विचारधारा को प्रोत्साहित किये जाने का एक बड़ा प्रकल्प पूरे देश में प्रारंभ कर दिया गया जिसमें भय और घृणा के

तत्व सम्मिलित थे। धार्मिक अल्पसंख्यको को ज्यादा बड़ी चुनौतियां अभी हाल के दिनों में झेलनी पड़ी है।

उत्तर पूर्वी भारत में भाजपा को अप्रत्यासित सफलता यह बात रेखांकित करती है कि इन क्षेत्रों मे आदिवासी समाजों के बीच भी भाजपा अपना वैचारिकी विस्तार अनवरत कर रही है। क्षेत्रिय स्थानीय अस्मिताओं को समर्थन एवं गठजोड़ बनाकर भाजपा ने उन समूहों पर अपना प्रभाव जमाया है। इसका सबसे शानदार उदाहरण असम एवं त्रिपुरा है। नागरिक चार्टर एवं नागरिकता संशोधन प्रस्तावों के द्वारा असम में एक भावनात्मक ज्वार पैदा किया गया था जिसके फलस्वरूप कई दशकों से शासन कर रहे कांग्रेस पार्टी का यहां ध्वस्तीकरण हो गया। इसी तरह से त्रिपुरा में भी वामपंथी पार्टी का शासन स्थानीय आदिवासी बनाम बंगाली जनसंख्या के बीच परिव्याप्त अंतर्विरोध को सुलझाने में असफल रहा जिसके कारण भाजपा ने वहां अपनी राजनीतिक जगह बनाई और चुनवी जीत हासिल की। राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के समर्पित कार्यकर्ताओं के मेहनत से इन क्षेत्रों में एक उर्वर रजनीतिक जमीन भाजपा के लिए तैयार हुई है।

दार्जिलिंग एवं दक्षिण पंथी राजनीति

भारत में अन्य हिस्सों की ही तरह दार्जिलिंग में भी क्षेत्रिय राजनीतिक दलों के अंदर दक्षिणपंथ की घोर राष्ट्रवादी प्रवृत्तियां पायी जाती है। नेताओं की अकर्मण्यता एवं भ्रष्टाचार ने गोरखा राजनीति की घार कुंद कर दी है। छोटे–छोटे राजनीतिक लाभें और व्यक्तिगत हितों को प्राथमिकता देते हुए व्यवस्था पोषक राजनीति ही वर्तमान में दार्जिलिंग की स्थानीय राजनीति का गुणधर्म बन गया है। 2007 के अंदोलन के बाद भाजपा का स्थानीय पहाड़ी राजनीति में दखल बढ़ा। यह अपेक्षाकृत शांतिपूर्णएवं अलग तरह की राजनीति से संचालित था, जिसकी वजह से शिक्षित समूह भी दबाव एवं हितधारक समूह बनाने की राजनीति में संलग्न हुए। उन्होने राज्य निर्माण के वृहतर लक्ष्य को ध्यान में रखते हुये भाजपा का समर्थन इसलिए भी किया कि यह राष्ट्रीय राजनीति में गोरखा मुद्दों को प्रमुखता दिलायेगी। 2008 से लेकर 2014 और 2019 के भी चुनावों में भाजपा को इस उम्मीद में समर्थन दिया गया कि अलग गोरखा

राज्य की मांग फलीभूत होगी और इसका यथार्थ में प्रधानमंत्री मोदी ने एक चुनावी जनसभा में समर्थन भी किया था। यह स्वप्न अभी भी साकार होना शेष है।

भाजपा की स्थानीय राजनीति में दखल प्रारंभ में नहीं रही और कालांतर में गोरखा राज्य के स्थानीय परिदृश्य में भाजपा ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। वर्तमान में दार्जिलिंग के सासंद मणिपुरी मूल के एक गोरखा है जो राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ और भाजपा से गहराई से जुड़े हैं। राज्य के चुनावों में भी भाजपा ने प्रत्यक्ष रूप से अपने उम्मीदवार खड़े किये जिनको क्षेत्रिय दलों का पीछे से समर्थन मिला हुआ था। यह इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ कि क्षेत्रिय दल ही राजनीतिक पार्श्व में चले गये हों और उनको मुख्य धारा का हिस्सा नहीं माना जा रहा हो। तृणमूल कांग्रेस दल जो सत्ताधारी पार्टी है, इसके द्वारा यह प्रवृति प्रांरभ की गयी और बाद में इसे अन्य राष्ट्रीय दलों में भी अपनाया गया। तृणमूल कांग्रेस ने भी यहाँ के स्थानीय राजनीति में अपना विस्तार शुरू किया है। भावनात्मक उभार के आधार पर दक्षिण पंथ की वैचारिकी को फैलाया जा रहा है।

नृजातीय राष्ट्रीयतावाद एवं 'स्थानीय बनाम बाहरी' जैसे मुद्दे उभारकर गोरखा अस्मिता की राजनीति के साथ दक्षिण पंथ अपनी जड़ें जमाने की कोशिश में लगा हुआ है। इसने संकुचितस्थानीयतावाद और भावनात्मक उदेश्य की नयी वैचारिकी प्रारंभ की है जिसके द्वारा घृणा एवं अविश्वास का वातावारण बनाया जा रहा हैं

निष्कर्ष

दक्षिण पंथी राजनीति के कार्यप्रणाली को समझने के लिए यह देखना होगा कि वैश्विक इतिहास में राज्यसत्ता प्राप्त करते ही फासीवादी प्रवृतियों की संभावना इस तरह के शासन तंत्र में बढ़ जाती है। राष्ट्रीय–समाजवादी और क्रांतिकारी दक्षिणपंथ के गठजोड़ के द्वारा एक साझे दुश्मन से लड़ने एवं राष्ट्रीय एकात्मकतावादी शुद्धी अभियान में बराबर की संलिप्तता होने पर फासीवाद का उदय होता है। जनतंत्र के स्वतंत्र संस्थानो और विधिक व्यवस्था में परिवर्तनों के बावजूद फासीवाद दरअसल संबंधों के एक संजाल की तरह कार्य करता है जिसका कोई

निश्चित मूलचरित्र नहीं होता (टॉकविले, 2000)। इन अंर्तसंबंध संजाल को समझने के उपरांत ही हम फासीवाद की जन स्वीकार्यता एवं लोकप्रियता को समझ सकते है।

भारत के संदर्भ में, गिरती अर्थव्यवस्था, धर्म के नाम पर सामुदायिक संघर्ष, जाति एवं नृजातीयता जैसे प्रस्थान बिंदू फासीवादी शक्तियों की सहज कार्य प्रणाली रहे है। वैचारिकी के संदर्भ में हमें सत्ता संबंधों एवं शक्ति के जटिल वितरण को ध्यान में रखना होगा। संघ के नजरिये से हिंदू ब्राहम्णवादी व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है और यह निर्दोष तरीके से प्रभावी सिद्ध होती है।यह जनतंत्र के मूलभूत मूल्यों एवं गंत्तवयों के खिलाफ खड़ी होती है भले ही ऊपरी तौर पर यह सही मालूम पड़ती हो। पूंजीवाद के बड़े प्रारूपों के साथ उनके स्वाभाविक गठजोड़ के साथ ही हम यह पाते है कि इतिहास में किस प्रकार इस वैचारिकी ने अपार हानि पहुँचाई। राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग भले ही इसका लाभार्थी हो परंतु कालातंर में दोनो के बीच संघर्ष अनिवार्य रूप से होता है।

क्षेत्रिय मुद्दों एवं राजनीति के एक अभिरूचि एवं हस्तक्षेप की बेचैनी हमेशा से ही दक्षिणपंथी राजनीति की विशेषता रही है। गोरखा राजनीति भी इस प्रभाव से अछूती नहीं रही है। बाहरी लोगो द्वारा तथाकथित रूप से नौकरियों के अवसर, जमीन पर मालिकाना हक, संसाधनों पर अधिकार इत्यादि मामले में कब्जा जमा लिए जाने के भावनात्मक दुष्प्रचार ने जनभावनाओं को दक्षिणपंथी झुकाव दे दिया है। यह निर्णायक रूप से अब ज्यादा मजबूती से आकार ग्रहण कर रहा है और शिक्षित लोगो की यह जिम्मेदारी है कि इसके खोखलेपन और अंर्तविरोधों को उजागर किया जायें। यह मानवीय चयनात्मक प्रवृतियों से भी पोषित होता है जिसमें सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक रूझानों तथा उसकी प्रवृतियां को भी व्यक्तियों द्वारा एक ताकतवर मुद्दे में बदल दिया जाता है। परंतु हम बेहतर तरीके से इस वैचारिकी से लड़ सकते हैं यदि हम जाने की अतीत में हम कैसे सफल रहे।

संदर्भ सूची

चक्रवर्ती, समिक. द डिमांड फॉर गोरखालैंड एंड द नेशनलिटी क्वेश्चन, चिंतन पत्रिका से अंग्रेजी अनुवाद 2013

धर, आजेयी. डिमिस्टीफाईडः व्हाट इज द राइट विंग आइडियोलॉजी इन इंडिया डेली हैट, जनवरी 9, 2019, 10 अगस्त 2019 को वेबपेज खोजा गया

हिस्टी : प्री इंडिपेंडेस, पोस्ट इंडिपेंडेस एंड दार्जिलिंग टूडे', 9 अगस्त 2019 को http://darjeeling.gov.in/darj.his.htmlसे देखा गया।

मजूमदार, महेंदू. 'गोरखालैण्ड मूवमेंट ऐण्ड द नेशनल क्वेश्चन : लुकिंग बैक थ्रू सेन्चुरिज', क्रांतिकारी नौजवान सभा के द्वारा प्रकाशित, पश्चिम बंगाल राज्यपरिषद, अक्टूबर 2013, पृ. सं. 6–7

ओ लेरी, ब्रेंडन. ऑन नेचर ऑफ नेशनलिज्म : एन एफ्रेजल ऑफ अर्नेस्ट गेलनर राइटिंग ऑन नेशनलिज्म, ब्रिटिश जर्नल ऑफ पोलिटिकल सांइस, कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1997, 27 (2), पृ. सं. 191–222

पांडेय, अमिताभ. अंडरस्टेंडिंग राइट विंग रिसर्जेन्स इन द यू0एस0 एंड इण्डिया. द वायर, मई 5, 2019, 10 अगस्त 2019 को वेब पेज खोला गया।

पैक्सटन, राबर्ट. 2014. द एनाटॉमी ऑफ फासिज्म. न्यूयार्क, अस्फ्रेड एनॉफ, पृ.सं.206–218

सरकार, स्वतःसिद्ध. द लैंड क्वेश्चन एण्ड इथिनिसिटी इन दार्जिलिंग हिल्स, जर्नल ऑफ रूसल सोशल साइंसेज, 2010, 25 (2) पृ.सं. 81–121

स्टालिन, जे0वी0. मार्क्सजिम एंड द नेशनल क्वेश्चन, मास्को, प्रोवोशेनिये, 1913, 8 अगस्त 2019 को वेबपेज खोला गया।

टॉकविले, एलेक्सिस. डेमोक्रेसी इन अमेरिका, शिकागो, युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 2000, पृ.सं. 662

पश्चिम बंगाल में राज्य प्रायोजित लोकलुभावनवाद और चुनावी जनतंत्र

मैदुल इस्लाम

लोकलुभावनवाद से हम किसी आंदोलन के खास प्रकार का अर्थ ग्रहण नहीं करते हैं जिसका जुड़ाव किसी विशिष्ट सामाजिक आधार से हो या किसी खास प्रकार के वैचारिक निष्पत्तियों से बल्कि यह एक विशुद्ध राजनीतिक तर्क भर होता है। ——— अर्नेस्टो लैक्लाऊ[1]

उदारवादी जनतांत्रिक राजनीतिक विमर्शों में, लोकलुभावनवाद को बहुधा नकारात्मक अर्थों में ग्रहण किया जाता है। यद्यपि, इधर हाल के दिनों में, लोकलुभावनवाद को जनतंत्र के सिद्धांतकार राजनीतिक व्यवहार का प्रभावी सिद्धांत मानने लगे है। यह एक अनिवार्य राजनीतिक तर्क की तरह है जिसे राजनीतिक गतिशीलता के मजबूत रणनीति के रूप में प्रतिनिधिमूलक जनतंत्र में जगह दी गई है। राजनीतिक दल एवं आंदोलन अपने वैचारिक अभिविन्यासों को बिना ध्यान में रखते हुये लोकलुभावनवाद राजनीति के तौर तरीको को अंगीकार करते है और इस प्रकार के लोकप्रिय हथकडों का प्रयोग सर्वहारा एवं वंचित तबको का समर्थन प्राप्त करने के लिए करते है। यह एक विविधतापूर्ण समाज में सीमांतों के लोकप्रिय प्रतिरोध का परिचालक है। इस शोध प्रपत्र में मेरा प्रयास एक विश्लेष्णात्मक मजबूत संप्रत्यय के रूप में लोकलुभावनवाद को उसकी सैद्धांतिकी में समझने का रहेगा और साथ ही साथ चुनावी राजनीतिक एवंसरकारी पहल के परिप्रेक्ष्य में राज्य प्रायोजित लोकलुभावनवाद के ऊपर गहनता से विचार किया जायेगा। ममता बैनर्जी के नेतृत्व मे पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा संचालित लोकलुभावनवाद राजनीति के साथ विश्लेषणात्मक विमर्श केद्वारा उनकी कार्यप्रणालियों और राजनीतिक लोकाचारों पर एक खोजपरक शोध अध्ययन किया जायेगा। यह करिश्माई राजनीतिक नेतृत्व पर आधारित लोकलुभावनवाद राजनीति का एक बढ़िया उदाहरण प्रस्तुत करता है।

लैक्लाऊ ने जिस अर्थ में लोकलुभावनवाद का प्रयोग किया है वही अर्थ शोधकर्ता ने भी यहां प्रयोग किया है। लैक्लाऊ के अनुसार – यह वंचितों एवं हासिये पर पड़े लोगों का एक वर्चस्वी

1. अर्नेस्ट लैक्लाऊ, ऑन पाप्यूलिस्ट रीजन, (लंदन. वर्सो). 117

संगठन है जिसमें विभिन्न असंबद्ध मागों के आधार पर एक समानधर्मा संयोजन कर रचना की जाती है। इसमें वंचिततबको द्वारा वर्चस्वी एवं विरूद्ध सीमांतों के बरक्श एक नई सत्ता संरचना गढ़ने की मांग की जाती है। लैक्लाऊ का मानना है कि– लोकलुभावनवाद के मामले में, अपर्वजन के सीमांतों के द्वारा दो खेमे बनाए जाते हैं। इस अर्थ में 'जनता' अपने समुदाय के सामुहिक समग्रता के अनुपात में हमशा कमतर ही होती है। यह एक आधा–अधूरा हिस्सा होता है जिसे यह आतंरिक इच्छा होता है कि उसे 'एकमात्र वैध समग्र' के रूप मे देखा जा समझा जाये।[2]

इस संदर्भ में 'जनसामान्य' शब्द को इस शोध पत्र में लैक्लाऊ के ही अर्थो में प्रयोग किये जाने 'जनसंख्या' से अलग है। जैसा कि लैक्लाऊ अपनी तीक्ष्ण मेधा से यह इशारा करते हैं कि पारम्परिक अर्थो में जिस तरीके से जनता का अर्थ लिया जाता है उससे यह सर्वथा अलग है। जनसंख्या का अंग्रेजी अनुवाद पापुलेशन है जो 'पापुलस' से लिया गया है, जिस`नागरिको के समग्र निकायके रूप मेंदेखा जाता है और वहीं एक अन्यशब्द 'प्लेबस' है जिसका अर्थ 'वंचित तबको' से है।[3] लैक्लाऊ ने जनता और लोकप्रियतवाद के समान्य अर्थों में प्रयुक्त अर्थवत्ता से अलग परिप्रेक्ष्य में इन दो शब्दों का प्रयोग किया किया है। जहां वंचित तबके ही एकमात्र वैध नागरिक–निकाय की तरह प्रदर्शित होते हैं।[4] यह इसलिए भी है कि वंचित तबकों के ऊपर शोषण करने वाला समूह कभी भी उसी समुदाय का वैध हिस्सा नहीं हो सकता क्योंकि वह उनके शोषण के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होता है और दोनों के बीच प्रतिरोधक संबंध पाये जाते है और उनके बीच की खाई कभी भी नहीं पाटी जा सकती है।[5]

ब्रिटेन के समकालीन उदाहरणों से यह तर्क दे सकते है कि वामपंथी लोकलुभावनवाद ज्यादा समावेशी और सामाजिक–आर्थिक रूप से घनीभूत है। अपने दक्षिणपंथी सहयोगियों की तुलना में इनकी उद्देश्यपरकता ज्यादा संतुलित और समग्र रूप से अभिव्यक्त होती है।[6] इस बात से समहमति जताने के बावजूद हम यह तर्क देते सकते हैं कि वामपंथी प्रस्तुत करने का वादा

2. उपरोक्त 81
3. उपरोक्त 81
4. उपरोक्त 81
5. उपरोक्त 81
6. ल्यूक मार्च, लेफ्ट एण्ड राइट पॉपुलिज्म कम्पेयर्ड : द ब्रिटिश केस, ब्रिटिश जर्नल ऑफ पॉलिकटक्स एण्ड इंटरनेशनल रिलेशन, 1902 2017 282–303

करता है वहीं दक्षिणपंथी समुह किसी खास मौकों पर ही नवउददारवादी नीतियों का विरोध तो करता है परन्तु उनके पास नवउदारवादी पूंजीवाद से परे जाने की कोई अर्न्तदृष्टि नहीं है। इसके अतिरिक्त वामपंथी लोकलुभावनवाद द्वारा सामाजिक रूप से प्रगतिशील नीतियों की कम से कम उम्मीद जगायी जाती हैं जिसमें वैचारिक व्याकरण के स्तर पर संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण की इच्छा सम्मिलित होती है। इसके बरक्श दक्षिणपंथी समुहों में भय के आधार पर एक वातावरण निर्मित किया जाता है जहां अप्रवासियों को दुश्मन की तरह देखा जाता है और संकुचित राष्ट्रवादी दृष्टि से अप्रवासियों को राष्ट्रीय पहचान के लिये एक संकट माना जाता है। बहुसंस्कृतिवाद को दक्षिणपंथ में प्रभुवर्गों की तरफ से लोकप्रिय एवं सामान्य इच्छा के विरूद्ध एक जबरदस्ती का आरोपण मान लिया जाता है जिसके द्वारा राष्ट्रीय मूल्य की क्षति का खतरा बन जाता है।[7]

दोनों तरह के अकादमिक अध्ययन में[8] यह बात स्पष्ट है कि मुख्यधारा के शोध उपक्रमों में अनिवार्य रूप से लोकलुभावनवाद का जनतंत्र के लिए खतरे के तौर पर ही देखा गया हे। इसे म्यूलर (2016) एवं वेलेण्ड (2013) जैसे अध्येताओं के अध्ययन से समझा जा सकता है। वहीं दूसरी तरफ मैक्डोलन एवं अल्बर्टजाजी जैसे चिन्तको का मानना है कि लोकलुभावनवाद हमेशा दक्षिणपंथ की ओर झुका हो, यह जरूरी नहीं है।[9] वहीं दूसरी तरफ कई लोगों का मानना है कि यह परिघटना अनिवार्य रूप से वामपंथ की ओर झुकी होती है और सम्भवतः उग्र राष्ट्रवाद, नृजातीयवाद या फासीवादी आन्दोलनों की समझ बनाने में बहुत मददगार नहीं सिद्ध होती है।[10]

यद्यपि ज्यादातर अकादमिक अध्ययनों मेंराज्य प्रायोजित लोकलुभावनवाद को समग्रता में अध्ययन करने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती है। यह अभी तक के प्रचलित सैद्धांतिक अध्ययनों से थोड़ा अलग है। लैक्लाऊ के अध्ययन में एक विरोधी राजनीति की प्रस्तावना है जो वामपंथी

7. चेन्टाल मूफे, द एण्ड ऑफ पालिटिक्स एण्ड चैलेंज ऑफराइट विंग पापुलिज्म लन्दन वर्सो, 2005 69
8. विस्तृत चर्चा के लिये देखें– येल्स मेनी एण्ड सुरेल (2002) फ्रान्सिस्को पेनिस्जा 2005 एंव अन्य
9. डेनियल एलबर्टेजी एण्ड डन्केन मैक्डोनेल, 'इंट्रोडक्शनः द सेप्टर एण्ड द स्पेक्टर', इन डेनियल एलबर्टेजी एण्ड डन्केन मैक्डोनेल, (संपादित), टवेन्टी–फर्स्ट सेंचुरी पाप्युलिज्म : द स्पेक्टर ऑफ वेर्स्टन यूरोपियन डेमाक्रेसी (बेसिंगस्टोक : पैलग्रैव मैक्मिलन, 2008), पृष्ठ संख्या 16.
10. येनिस स्टेवराकेकिस एण्ड जिर्योगस केटसेमबेकिस, 'लेफ्ट–विंग पापुलिज्म इन द यूरोपियन परीफेरी : द केस ऑफ सिरिजा', जर्नल ऑफ पालिटिकल आईडियोलॉजीस, 19 2 (2014), पृष्ठ संख्या 197–200

लोकप्रियतावाद के मानक स्वरूप में अभिव्यक्त होता है।[11] लैक्लाऊ के स्वयं के अर्जेन्टीना में ग्रहण किये हुये अध्ययनों ने उनकी वैचारिक दशा–दिशा तय की है।[12] मूल प्रश्न यह है कि कैसे एक लोकप्रिय पार्टी अपने शासन को राज्य की शक्तियों का प्रयोग करते हुये समान दूरी के सिद्धांत के आधार पर विस्तृत करती है? वे कौन से तर्क है जो राज्य प्रयोजित इस परिघटना को आकार देने एवं पोषित करने में मदद करते हैं?

इसी सन्दर्भ में यह शोध पत्र पश्चिम बंगाल में राज्य प्रायोजित लोकलुभावनवाद को सन्दर्भ सहित व्याख्यायित करेगा। पं0 बंगाल भारत के पूर्वी हिस्से का राज्य है जहां तृणमूल कांग्रेस द्वारा शासित राज्य की निर्वाचित मुख्यमंत्री ममता बनर्जी हैं। इस तरह के शोध संरचना में यह शोध पत्र इस बात की भी सैद्धांतिकी निर्मित करने का प्रयत्न करेगा की किस प्रकार से राज्य प्रयोजित लोकलुभावनवाद जनतांत्रिक मांगों को अभिशासन के तर्को के साथ समाहित करता है और समान दूरी के सिद्धांत को व्यवहारिक धरातल पर प्रयोग में लाता है। यह लैक्लाऊ के विभेदीकरण केतर्क के समानान्तर विकसित होता है वहीं दूसरी तरफ इसमें असमानता भी पायी जाती है।

तृणमूल का सत्ता में उदय और परिवर्तन की अवधारणाः

2011 के विधानसभा चुनाव में तृणमूल कांग्रेस परिवर्तन का नारा देकर शानदार ढंग से जीतकर आयी। 2011 का तृणमूल कांगेस का चुनावी घोषणा पत्र यह घोषित करता है कि पिछले 35 वर्षों में राज्यसभी दिशाओं मेंगर्त में चला गया है। अब समय आ गया है कि परिवर्तन हो और उसका इंतजार न किया जाये। यह अभी नहीं तो कभी नहीं वाली बात है। हम इतिहास के दोराहे पर खड़े है और हमें बंगाल के स्वर्णिम युग की तरफ ध्याान देना चाहिए। इसके विकल्प के रूप में हमारे सामने दमनकारी एवं सर्वसत्ताधारी वाममोर्चा का शासन है। यह जनता के सक्रिय समर्थन के बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता है। हमएक जन केन्द्रित सरकार और लोककल्याणकारी सुधारवादी कार्ययोजना देने के प्रति प्रतिबद्ध है। हमारा

11. अर्नेस्ट लैक्लाऊ, टुवर्डस ए थ्योरी ऑफ पाप्यूलिज्म, (लंदन : वर्सो, 2005).
12. अर्नेस्ट लैक्लाऊ, न्यू रिफ्लेक्शनस ऑन द रेवाल्यूशन ऑफ अवर टाइम, (लंदन : वर्सो, 1990).पृष्ठ संख्या 197–200

यह ध्येय है कि बंगाल को पुर्नसृजित किया जाए जिसमें सकारत्मकता, सृजनात्मकता और समानुभूति के तत्व मौजूद हों और जिसका एक मानवीय चेहरा हो।''

2011 केविधानसभा चुनाव के पहले भी वाममोर्चा को कोई बार चुनावी नुकसान उठाना पड़ा था जिसमें 2008 के पंचायत चुनाव एवं 2009 के लोकसभा चुनाव ध्यान देने योग्य हैं। यह विजय,भूमि अधिग्रहण कानूनों के खिलाफ बने माहौल की पृष्ठभूमि में हुई थी।

वाममोर्चा द्वारा जमीन के अधिग्रहण को लेकर एक आक्रामक नीति बनायी गयी थी, जिसमें कार्पोरेट ताकतों को औद्योगिक विकास के नाम पर उपजाऊ जमीनें विशाल मात्रा में दी गयी। 2006 से 2011 तक का वामपंथ शासन इस मामलें में बहुत कुख्यात रहा, जिसमें 2006 केचुनाव में दिये गये नारे 'खेती हमारा आधार और उद्योग हमारा भविष्य'' के आधार पर एकतरह का नव–पूंजीवाद ग्रहित करने पर जोर दिया गया। इस तरह के चुनावी अभियानों को राजनीति के संयोजन की तरह देखागया जिसमें विराजनीतिकरण और राजनैतिक बेचैनी के तत्व अर्न्तनिहित थे। कारपोरेट पूंजीवाद पर आधारित उद्योगवाद ने वामपंथ की वर्गीय चुतना की धार को कुंद कर दिया। यह एक तरह से पार्टी के अन्दर ही विवादित प्रश्नों को लेकर एक गैर–राजनीतिक सहमति ही व्यवस्था बनाने जैसा था, जिसमें महत्वपूर्ण सवाल जैसे किसका और किसकी कीमत पर विकास जैसे यक्ष प्रश्न गौण कर दियेगये थे। इस तरह से राजनीतिक विचार विमर्श की प्रकिया में वैचारिक असहमतियों को एक जबरदस्ती के सहमति निर्माण आवरण से ढक दिया गया और ऐसा वातावरण निर्मित किया गया कि पश्चिम बंगाल में 'टीना फैक्टर' (कोई विकल्प न होने की स्थिति) कार्यरत है। इससंदर्भ में लोगों के सामने एक एतिहासिक विडम्बना की स्थिति बनी, जहा कभी उसी वामपंथ ने भूमि सुधार की क्रान्तिकारी पहल की थी, 'ऑपरेशन बर्गा' जैसी न्यायपूर्ण भूमि वितरण व्यवस्था निर्मित की थी वहीं वाममोर्चा आज उनकी जमीन,आजीविका और उम्मीदों के ऊपर एक निष्ठुर लुटेरे की तरह व्यवहार कर रही है। इसने एक तरह से जनसामान्य में वामपंथ की कार्यप्रणाली को लेकर असम्मान व अविश्वास का वातावारण निर्मित किया। सिंगूर और नन्दीग्राम की घटना के बाद वाममोर्चा की सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ एक प्रतिरोध का वातावरण निर्मित

हुआ। जहां लोगो को यह लगा कि उनकी भावनाओं को अपमानजनक तरीके से कुचल दिया गया है।

2008 से 2011 के बीच, यद्यपि, पश्चिम बंगाल की वाममोर्चा सरकार को कई चुनावों में जनता के गुस्से कासमना करना पड़ा, इसके कारणों की जाँच पड़ताल जरूरी है। यह भी एक तथ्य है कि उसी जनमानस ने 2006 के चुनावों में वाम मोर्चा को जबरदस्त बहुमत दिया था। यह एक आकस्मिक परिघटना नहीं थी जिसके कारणोंमें प्रमुखरूप से लोगों के अंदर एक संग्रहित गुस्सा था जो उनके सामाजिक–आर्थिक मुद्दों केप्रति वाममोर्चा की उपेक्षा रखने के कारण और एक प्रकार के प्रताड़ना मान के घनीभूत हो जाने और राजनीतिक सशक्तिकरण कार्यक्रमों की कमी एवं जाति एवं समुदाय केप्रश्नों पर वाम मोर्चा सरकार की नाकामी के समग्र प्रभाव के रूप में सामने आया। 2011 के जनगणना के अनुसार, पश्चिम बंगााल साफ पीने योग्य पानी, बिजली, बैंकिग सुविधाओं एव दूरदर्शन तक पहुंच जैसे माध्यमों के राष्ट्रिय औसत से नीचे था। 34 वर्षो के लंबे शासन के बाद भी पश्चिम बंगााल ने शिक्षा एवं स्वास्थ्य में औसत प्रदर्शन ही दिखाया था। इस तरह की पूरी ना की गई जनतांत्रिक मांगों की लगातार जमा होते रहने को सिंगूर और नंदीग्राम के मुद्दे पर जमीन अधिकरण के एकतरफा फैसले ने चिंगारी देने का काम किया है और वाममोर्चा की सरकार अपने आतंरिक ऊर्जा के नष्ट होते जाने से निष्प्रभावी होती चली गई। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुधार हेतु, यद्यपि, वाममोर्चा सरकार ने काफी प्रयत्न किये थे। कई तरह संरचनात्मक सुधारों के माध्यम से ग्रामीण बंगाल में प्राथमिक भौतिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने का कार्य इस सरकार ने किया था जिसमें प्रमुख लाभार्थी समूह किसान एवं मजदूर वर्ग थे। पंचायती राज और भूमि सुधार कार्यकमों के द्वारा सत्ता का विकेन्द्रिकरण किया गया जिसने संस्थानीकृत तरीके से वंचित समूहों के सशक्तिकरण का कार्य किया। इस तरह की जनहितैषी नीतियों ने वाममोर्चा सरकार को एक लंबा कार्यकाल सुनिश्चत किया। लेकिन कालांतर में 'दलीय समाज' की अवधारणा विकसित की गयी, जिसमें लाभ के हरेक पद पर पार्टी के कार्यकर्ताओं को ही सभी स्थान मिलते थे एवं विद्यालयी शिक्षकों के ऊपर संपूर्ण निर्भरता ने प्रथम वाममोर्चा के शासन में उत्पन्न ऊर्जा को धीरे–धीरे अपने अंकुश

में ले लिया।[13] कृषि सुधारों की न्यायपूर्ण वितरण व्यवस्था और स्थानीय प्रतिनिधित्व ने अब अपनी चमक खो दी थी।

2008 के बाद, अनुसूचित जातियों का पारंपरिक समर्थक समूह भी वाम मोर्चा से मोहभंग की स्थिति में आने लगा। यही स्थिति आदिवासियों, मुसलमानों और ग्रामीण जनता के साथ भी बनी। कमजोर तबको के सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक मुद्दों का समाधान निकालने की असमर्थता मूलरूप से वामपंथ के उस सृजनात्मक परिकल्पनाओं का संकट था जिसे 'जनसामान्य' की विभिन्न परिस्थितियों एवं गतिकी के बारे में सही जानकारी ही नहीं थी चूंकि 'जनता' की परिकल्पना हमेशा से वाममोर्चा के शासन में वर्ग के रूप में रही, उनकी यह विफलता थी की वह जनता की समग्र आंकाक्षाओं को सही तरीके से समझने में नाकामयाब रही। गरीब एवं दलित वंचित जातियों की जगह बंगाली भद्रलोक उच्च जातियों को राजनीतिक प्रशासन एवं उच्च पदों पर आसीन करने के कारण यह समूह उनसे कटता चला गया। सांस्कृतिक रूप से भी उच्चकूलीन बंगाली मटुलोक से आने वाले पार्टी के शीर्ष नेतृत्व का भी कामकाजी किसान मजदूर वर्ग की चेतना सेकोई खास संलग्नता रह नही गई थी। यह असंबद्धता एक तरह की भविष्यगत संकट के लिए आधारभूमि बन रही थी। 2006 से 2011 तक, एक संकट दृष्टवय था जिसे महसूस किया जा सकता था जिसमें कार्पोरेट पूंजीवाद के समर्थक वाममोर्चा सरकार ने सांस्कृतिक रूप से अपने आप को 'अम जनता' से पूरी तरह से अलग कर लिया था। यह एक हठपूर्ण, 'गुस्से से भरी हुई एव एकतरफा अहंकार की कार्यवाही थी।

2011 में तृणमूल का सत्ता में आना, इसी संदर्भ में 'परिर्वतन' की अवधाराणा को लेकर लैक्लाऊ के अर्थों में समानत्व एवं खोखले मानदंडों के उजागर हो जाने की अवधारणा पर टिकी थी। इन मानदंडों एवं खोखले प्रतिख्यानों को वाममोर्चा ने संपोषित किया हुआ था।[14] दलित, आदिवासी, मुसलमान, महिलाएं एवं निर्धन आबादी को तृणमूल सक्रिय प्रतिरोध एव चुनावी परिवर्तन के लिए अगर तैयार कर सकी तो इसकी एक बड़ी वजह यही थी की

13. द्वैपयान भट्टाचार्या, गर्वनमेंट एस प्रैक्टिस : डेमोक्रेटिक लेफ्ट इन ए ट्रान्सफॉरमिंग इण्डिया (नई दिल्ली : कैब्रिज यूनिर्वसिटी प्रेस, 2016),
14. लैक्लाऊ, ऑन पाप्युलिस्ट रीजन, 162; लैक्लाऊ, 'वाई डू एम्पटी सिग्नीफायर्स मैटर टूपॉलिटिक्स?, इन इमैनसिपेशन (लंदनः वर्सो, 1995), 36–46

वाममोर्चा सरकार भद्रलोक के समर्थकों की सरकार बन कर रह गई थी। बंगीय समाज के बौद्धिक समूहों ने भी 'परिवर्तन' के इस नारे का स्वागत किया। लैक्लाऊ के राजनीतिक सैद्धांतिकी के परिप्रेक्ष्यमें अगर हम व्यवस्था परिवर्तन का अध्ययन करें तो हम पाऐंगे कि 1977 से ही जनतंत्र एक खोखली मार्गदर्शन बन कर रह गई थी जिसमें दलीय व्यवस्था के अंतर्गत ही राजनीतिक गतिकी का निर्माण हो रहा था। वाममोर्चा सरकार के तत्कालीन मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने जनतंत्र की मजबूती एवं उसके विस्तार को अपने कार्यकाल की भूमि सुधार और पंचायती राज जैसी सफलतापूर्वक योजनाओं की तुलना में ज्यादा बड़ी उपलब्धि बताया। 2011 में इसी संदर्भ में परिवर्तन को तृणमूल कांग्रेस को किस प्रकार 2011 के चुनावी सफलताओं और समर्थन को सुनिश्चित करने में सहायता मिलती चली गई?

तृणमूल और 2011 के उपरांत चुनावी परिदृश्य

2014 के लोकसभा चुनावों में चार महत्वपूर्ण राजनीतिक संगठन वाममोर्चा, तृणमूल, कांग्रेस एवं भाजपा अलग–अलग चुनाव लड़े और क्रमशः 39.79 प्रतिशत, 29.95 प्रतिशत, 9.69 प्रतिशत एवं 17.02 प्रतिशत मत प्राप्त किए।[15] पंश्चिम बंगाल में ठीक ठाक मत पाकर भी वाममोर्चा को जबरदस्त हार का सामना करना पड़ा। चुनावी मत प्रतिशत के हिसाब से सबसे बड़ी जीत तृणमूल और भाजपा की रही। तृणमूल अपने क्षेत्रिय मुद्दों और बिना किसी गठबंधन के स्वतंत्र तरीके से लड़ने के कारण सफल रही।[16]

लोकनीति के 2014 लोकसभा चुनाव के आंकड़े बताते है कि तृणमूल कांग्रेस को सभी तरह के तबकों का समर्थन बंगाल में मिला। 42 प्रतिशत महिलाओं ने भी तृणमूल का समर्थन किया। समाज के वंचित तबको में वाममोर्चा कोलेकर समर्थन में भारी कमी देखी गई। इसमें दलित, आदिवासी एवं मुसलमानों ने बड़ी संख्या में तृणमूल का समर्थन किया जो पहले वाममोर्चा के समर्थक माने जाते थे। दक्षिण बंगाल में ममता बनर्जी द्वारा प्रधानमंत्री पद के दावेदार नरेन्द्र मोदी के सामने चलाया गया आक्रामक प्रचार अभियान मुसलमान मतदाताओं को अपनी तरफ

15. बिग नेशनल पार्टीज इन वेस्टबंगाल : एन एक्सेप्शनल आउटकास्ट?'' इन मुजीबर रहमान (संपादित), राइज ऑफ सैफ्रॉन पॉवर : रिफ्लेक्शन ऑन इण्डियन पॉलिटिक्स (लंदनः राउदलेज, 2018), 279–296
16. के0के0 कैलाश, 'रीजनल पार्टीस इन द 16वीं लोकसभा मलेक्शन्सः हू सर्ववाइव्ड एण्ड वाई? इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिल वीकली, 49(39), (2014), 64–71

मोड़ने में सफल रहा।[17] 2016 के विधानसभा चुनावों में भी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। सी.एस.डी.एस के आंकड़ो के मुताबिक गरीबों के समर्थन में तृणमूल ने अपने आधार समर्थन प्रतिशत में 2006 से 2016 के मध्य 21 से 52 का उछाल दर्ज किया है ।

2011 के जनगणना के अनुसार पश्चिम बंगाल में 27.1 प्रतिशत मुसलमान आबादी है। इनकी अल्पसंख्यक पहचान एवं अस्मिता से जुड़े तीन महत्वपूर्ण मुद्दे रहे है– जिसमें धर्म, संस्कृति, उत्सव, विश्वास एवं संरक्षण, दूसरा समानता का व्यवहार राज्य द्वारा आय रोजगार, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, सार्वजनिक सुविधाओं इत्यादि में किये जाने की मांग और तीसरा सुरक्षा आधारित चितांओं का निराकरण जिसमें जानमाल एवं आजीविका की सुरक्षा शामिल है। नवंबर 2006 में आये सच्चर आयोग की रिपोर्ट में मुसलमानों कर दयनीय आर्थिक सामाजिक दशा को फिर से रेखांकित किया था। पश्चिम बंगाल में शिक्षा और नौकरियों में मुसलमानों की भागीदारी न्यूनतम थी। यद्यपि सापेक्षिक रूप से सुरक्षा एवं अस्मिता के मुद्दों पर पश्चिम बंगाल के मुसलमानों की दशा अच्छी रही है लेकिन समानता के सिंद्धात को लेकर यह बेहद निराशाजनक तस्वीर पेश करता है। 2009 के बाद मुसलमानों का इसी वजह से वाममोर्चा सरकार से मोहभंग होता चला गया और वो बड़ी संख्या में तृणमूल की तरफ झुके। 2009 में, रंगनाथ मिश्र आयोग ने अपनी रिपोर्ट संसद में पेश की जिसमे मुसलमानों को 10 प्रतिशत आरक्षण और अल्पसंख्यक संस्थानों एवं सरकारी नौकरियों में देने की सिफारिश की गई थी। पश्चिम बंगाल की वाममोर्चा सरकार भारत में एकमात्र राज्य सरकार थी, जिसने इसे लागू किया।

पिछले कुछ वर्षो से तृणमूल सरकार ने हिंदूओं और मुसलमानों की कई सारी वंचित जातियों को अपने यहां पिछड़े वर्ग में शामिल किया है। इस तरह तृणमूल ने राज्य में पिछड़ी जातियों के दोनों सूचियों में ए और बी जिनका क्रमिक आरक्षण 10 प्रतिशत और 7 प्रतिशत, इसमें कई नए विस्तार किए। 2004–05 में जहां 9 मुसलमान समूह जिनकी तुलना कुल संख्या मुसलमानों का 2.4 प्रतिशत थी, पिछड़े वर्ग में स्थान पा सकें थे वहीं 2017 तक आते आते 115 मुसलमान

17. ज्योति प्रसाद चटर्जी एण्ड सप्रियों बसु, बाईपोलेरिटि टू मल्टीपोलेरिटी : इमरजिंग पॉलिटिकल जीयोमेट्री इन वेस्ट बंगाल', पंजाब यूनिवर्सिटि रिसर्च जर्नल : सोशल सांइसेज स्पेश्ल (लोकनीति, सी0एस0डी0एस,दिल्ली), 22,2 (2014), 211–223.

समूह जिनकी कुल आबादी 90 प्रतिशत थी मुसलमान जनसंख्या का और उनमें 174 जातियों को शामिल किया गया। इस तरह दोनों समूहों को मिलाकर मुसलमानों की वृहतर आबादी को राज्य पिछड़ा वर्ग सूची का अंग बना लिया गया जिसके परिणामस्वरूप नौकरी एवं शिक्षा के अवसरों में अपार वृद्धि हुई। मुसलमानों की सरकारी नौकरियों में भी संख्या तृणमुल शासनमें बढ़ी। पश्चिम बंगाल की 2006 की रिपोर्ट के मुतबिक मुसलमान कर्मचारियों की संख्या 3.4 प्रतिशत थी वहीं अब वो बढ़कर 5.73प्रतिशत हो गयी। करीब एक दशक में हुई यह वृद्धि अकल्पनीय है।

पिछड़े वर्गो के लिए आरक्षण के अलावे तृणमूल की सरकार ने और मुसलमानों के समूह से निर्मित कृषि, मजदूरों एवं कामगारों के लिए ये योजनायें काफी मददगार हुई। 2006 की तुलना में 2016 की तृणमूल सरकार में दलितों, आदिवासियों, मुसलमानों एवं महिलाओं को ज्यादा संख्या में मंत्री पद दिये गये। यही वजह है कि मूसलमानों में तृणमूल कांग्रेस को लेकर समर्थन प्रतिशत लगातार वृद्धि कर रहा है। 2006 में यह जहां 22 प्रतिशत था वहीं 2011 में 35प्रतिशत 2014 में 40प्रतिशत 2016 में 51प्रतिशत और 2019 के चुनाव मत आते आते यह 70 प्रतिशत हो गया।[18]

2011 के बाद तृणमूल सरकार द्वारा गरीब लोगों के लिए चार सफल योजनाएं चलाई गयी जिसमें ममता बनर्जी के प्रति लोकप्रिय समर्थन में अपार वृद्धि हुई। खाद्य साथी (जिसमें दो रूपये प्रति किलो गेहू और चावल दिये जाते थे)। सबूज साथी (जिसमें विद्यालय जाने वाले बच्चों को साईकिल देने का प्रावधान है) कन्याश्री (जिसमें लड़कियों के लिए शिक्षा प्राप्ति हेतु आर्थिक मदद देने का प्रावधान है) और युवाश्री (जिसमें बेरोजगार युवा को आर्थिक मदद देने का प्रावधान है)। ग्रामीण बंगाल में किसानों के कर्जे और कृषि संकट की पृष्ठिभूमि में इन चारों योजनाओं ने तृणमूल के लिए जबरदस्त आधार निर्मित किया। जिस राज्य में 82 प्रतिशत

18. श्रेयस सरदेसाई एण्ड सुप्रियो बासु, पुअर डमप लेफ्ट फार तृणमूल, मुस्लिम्स सॉलिडली बिहांइड 'दीदी', इण्डियन एक्सप्रेस, 22 मई 2016 : http://indianexpress.com/article/elections-2016/explained/west-bengal-muslims-mamata-banerjee-tmc-left-2812930/23 जुलाई 2019 को देखा गया।
19. ज्योति प्रसाद चटर्जी एण्ड सप्रियों बसु, बाईपोलेरिटि टू मल्टीपोलेरिटी : इमरजिंग पॉलिटिकल जीयोमेट्री इन वेस्ट बंगाल', पंजाब यूनिवर्सिटि रिसर्च जर्नल : सोशल सांइसेज स्पेश्ल (लोकनीति, सी0एस0डी0एस,दिल्ली), 22,2 (2014), 211–223.

परिवारों की मासिक आय 5 हजार रूपये प्रति माह से कम हो[19] वहां लोगों के लिए इस तरह की योजनाएं बड़ी राहत लेकर आयी। असंगठितकृत कामगार क्षेत्र बेरोजगार युवा और श्रमजीवी जमातों की एक बड़ी आबादी को तृणमूल ने गैर–कारपोरेट पूंजीवाद के आख्यान के साथ जोड़ा।

सी0एस0डी0एस0 के चुनाव उपरन्त किये गये विश्लेषण से पता चलता है कि तृणमूल सरकार का प्रदर्शन सड़को, बिजली आपूर्ति और पानी आपूर्ति के मामलें में वाम मोर्चा की सरकार से कहीं बेहतर रहा है।[20] अगर कुछ समूहों में तृणमूल सरकार की वाम मोर्चा सरकार की तुलना में ज्यादा भ्रष्ट होने की भावना बैठी भी है तो भी एक बड़ी संख्या में लोगों ने विकास के मुद्दे पर तृणमूल सरकार का समर्थन किया।[21] मतदाताओं के कई सारे महत्वपूर्ण तबकों तक ममता बनर्जी की अपार लोकप्रियता और स्वीकार्यता और महिला मतदाताओं का एक बड़ा वर्ग 2016 के विधानसभा चुनावों में (48 प्रतिशत मत) तृणमूल कांग्रेस की राजनीतिक सफलता के पीछे सबसे बड़ा कारण रहा है।[22] 2016 के विधानसभा चुनवा के दौरान तृणमूल द्वारा दिये गये इस नारे को अपार समर्थन एवं स्वीकार्यता मिली जिसमें यह कहा गया कि जिनके–जिनके पासभी शक्ति पहुँचनी है उन सभी के लिए ममता बनर्जी जरूरी है। 'जिनको चाहिए क्षमता उसे चाहिए ममता' यह नारा इस चुनाव में सफल रहा।

तृणमूल एक नेतृत्व केन्द्रित पार्टी है जिसने अपने को 1998 से 2006 के बीच एक दक्षिणपंथी मध्यमार्गी पार्टी से 2006 के उपरान्त वामपंथ की तरफ झुके हुए मध्यमार्गी पार्टी की तरफ रूपान्तरित किया। जमीन अधिग्रहण और सिंगूर, नन्दीग्राम जैसे मुद्दों की राजनीति ऊर्जा ने इस वैचारिक रूपान्तरण को संभव बनाया था। असंगठित क्षेत्रों के कामगारों के प्रति समर्थन के कारण तृणमूल कांग्रेस ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश विशेष आर्थिक जोन और नोटबंदी जैसे कदमों का जबरदस्त विरोध किया। साथ ही साथ इसकी केन्द्र विरोधी राजनीति यथा बैंक बचत

20. सामाजिक–आर्थिक जनगणना, 2011
21. सरदेसाई एण्ड बासु, 'पुअर डमप लेफ्ट फॉर तृणमूल मुस्लिम्स सालिडिटि बिहांइड दीदी'.
22. विभा आरती एण्ड सौरादीप बनर्जी, ' करप्शन एन इशू पद वेस्ट बंगाल, बट डेवलपमेन्ट नम्बर 1', इण्डियन एक्सप्रेस, 22 मई 2016 : http://indianexpress.com/article/elections-2016/explained/west-bengal-tmc-mamata-banerjee-corrupion-development-2812946 24 जुलाई 2019 को देखा गया।
23. ज्योति मिश्रा एण्ड अस्मिता असावरी, 'हिस्टोरिक स्वीप पॉवर्ड बाई ममता', इण्डियन एक्सप्रेस 22 मई 2016 http://indianexpress.com/article/elections-2016/explained/mamata-banerjee-tmc-west-bengal-historic-win-analysis-2812918/ 24 जुलाई 2019 को देखा गया।

योजनाओं में ब्याज कटौती की केन्द्र के निर्णय का विरोध, तेल की कीमतों में वृद्धि का विरोध, नरेगा में केन्द्र सरकार द्वारा कोष वितरण में देरी का विरोध और कई कल्याणकारी योजनाएं तथा बंगाली लोगों में संघवाद की मजबूती का आह्वाहन शामिल है। इसके अतिरिक्त, तृणमूल की रोहिंग्या संकट पर सहानुभूतिपूर्ण स्थिति, असम में एन0आर0सी0 प्रयोग का विरोध तथा नागरिक संशोधन बिल का विरोध मोदीके नेतृत्व वाली की दक्षिणपंथी लोकलुभावन राजनीति का स्पष्ट और मजबूत विरोध प्रतिक्रिया जो धार्मिक अल्पसंख्यको के विरूद्ध घृणापूर्ण लफ्फाजियों का सार्थक एवं मजबूत विरोध तृणमूल कांग्रेस की मुख्य रणनीति रही है। दक्षिणपंथी लोकप्रिय राजनीति के समानन्तर तृणमूल कांगेस ने एक मध्यमार्गी वामपंथी विमर्श निर्मित किया जो राजनीति की बहुलवादी धारा के नजदीक है और जनहितैषी कार्यक्रमों कोलेकर जनता को प्रत्यक्ष आर्थिक मदद पहुँचाने के ऊपर टिकी हुई है।

2014 और 2019 के लोकसभा चुनावों में तृणमूल कांग्रेस के विरूद्ध खड़े वाम मोर्चा के बहुत सारे आधारभूत मतदाताओं ने भाजपा के साथ अपना समर्थन दिखाया। 2009 के बाद तृणमूल कांग्रेस ने भी वाम मोर्चा के पारंपरिक मतदाता में अपना समर्थन बढ़ाया जिसके तीन प्रमुख कारण थे। प्रथम दृष्टतया एक क्षेत्रिय पार्टी होने के नाते तृणमूल कांग्रेस का ध्यान वाम मोर्चा की तुलना में पश्चिम बंगाल की स्थानीय राजनीति पर ज्यादा केन्द्रित रहा है। वाम मोर्चा को अपने और दो महत्वपूर्ण राज्यों केरल और त्रिपुरा के आधार पर राजनीतिक रणनीतियों में संतुलन बैठाने की कवायद करनी पड़ती है। दूसरे कारण में तृणमूल कांग्रेस की हाशिये के वंचित समाजों में ज्यादा दृश्यता है और वामपंथ की तुलना में ज्यादा जनहितैषी छवि का भी लाभ तृणमूल को मिलता है। वामपंथ के नेतृतव में ज्यादातर लोग उच्चवर्गीय बंगाली भद्रलोक का प्रतिनिधित्व करते है वहीं तृणमूल कांग्रेस के कई सारे शीर्ष नेतृत्व का संबंध समाज के निम्न मध्यवर्ग से है। इस प्रक्रिया ने गरीबों एवं वंचितो के मानस में तृणमूल कांग्रेस की ज्यादा आकर्षक छवि निर्मित की है पार्था चटर्जी के दिये संप्रतयय 'रजनीतिक समाज'[23] के साथ

24. पार्था चटर्जी, पॉलिटिक्स ऑफ द गर्वमेंटः रिफ्लेक्शन ऑन पापूलर पालिटिक्स इन मोस्ट ऑफ द वर्ल्ड (न्यू यार्कः कोलम्बिया यूनिवर्सिटि प्रेस, 2004); पार्था चटर्जी

तृणमूल की ज्यादा गहरी भावनात्मक संलग्नता रही है। वहीं दूसरी तरफ वाम मोर्चा का समर्थक समूह ट्रेड यूनियन की राजनीति करने वाला संगठित क्षेत्र का कामगार है।

तृणमल और राज्यप्रायोजित लोक लुभावनवाद कर राजनीति तर्क

हमने पहले पृष्ठों पर यह देखा कि तृणमूल की 2011 के बाद चुनावी सफलता विकास परक कल्याणकारी योजनाओं के द्वारा वंचित समूहों के जीवन में हस्तक्षेप करने से प्राप्त हुई है। इन योजनाओं को राज्य सरकार ने जनता के जीवन को कल्याणकारी तरीके से बदलने का माध्यम बताया है। चुनावी सफलता के लिए कई बार तृणमूल सरकार ने केन्द्र प्रायोजित योजनाओं से अपनी दूरी बरकरार रखी है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण आयुष्मान भारत योजना को प्रदेश में नहीं लागू करने का निर्णय रहा है। इसकी जगह पर राज्य सरकार ने अपनी एक विशिष्ट योजना 'स्वास्थ्य साथी' प्रारंभ की है जिसे जनता की अपनी कल्याणकारी योजना की अभिव्यक्ति की तरह प्रदर्शित किया गया है। माँ, माटी और मानुस की सरकार का नारा देकर इसे जनता की अपनी सरकार की तरह प्रक्षेपित किया गया है। वामपंथ की सरकार भी अपने शुरूआती वर्षो में एक लोकप्रिय नारा दिया करती थी जिसका मूलभावार्थ यह था कि वाम मोर्चा की सरकार जनता के हाथों में मुक्ति के संग्राम के हथियार की तरह है। यह सरकार जनता की अपनी सरकार हे। वाम फ्रंट सरकार, संग्रामे हथियार वामफ्रंट सरकार, जनोग्नेर सरकार, इस तरह की लोकप्रियतावादी योजनाओं एवं जनमाध्यमों के द्वारा प्राप्त समर्थन से चुनी हुई सरकारों को एक विशिष्ट वैधता एवं विपुल विश्वास की प्राप्ति होती है जो लोकलुभावनवादी राजनीति के मूल में है।

तृणमूल कांग्रेस ने अपनी स्वीकार्यता को कई तरह के राजनीतिक संकटों के बीच निर्मित किया जिसमें बड़े पैमाने पर किये गये राजनीतिक भ्रष्टाचार शारदा एवं रोजवैली चिटफंड घोटाला, नारद स्टिंग कांड और शिक्षक भर्ती घोटाले जैसे असंख्य आरोप राज्य सरकार के शीर्ष नेतृत्व पर लगाये गये। मंगर में भूमि अधिग्रहण कार्यवाहियों कोलेकर एक लोकप्रिय जनानदोलन खड़ा हुआ जिसमें किसानों ने जमीन के बदले बेहतर क्षतिपूर्ति पैकेज की मांग की और अभी हाल मे ही हुये 2019 के लोकसभा चुनाव के उपरान्त डॉक्टरों का प्रदेशव्यापी प्रदर्शन प्रमुख घटनायेंहै।

ममता बनर्जी की नेतृत्व वाली सरकार ने कतिपय कारणों से इन सारे राजनीतिक संकटों से अपना रास्ता निर्मित किया है। इन कारणों की चर्चा हम बाद में करेगें। पहले हम यह जानने कि कोशिश करते है कि लोकलुभावन राजनीति के किस प्रकार के राजनीतिक तर्क होते है। यह हमें राज्य प्रायोजित लोकलुभावनवाद के तौर तरीकों को चुनावी परिप्रेक्ष्य में समझने में मदद करेगा।

अपने सैद्धांतिक विश्लेषण में लैक्लाऊ ने समाजवादी लोकलुभावनवाद में उग्रपंथी प्रारूप और लोकप्रिय प्रारूपों के बीच अंतर किया है। पहले में जहां राज्य को ही दमन कर देने भावना रहती है वहीं दूसरे तरह की फासीवादी वैचारिकी में वर्ग शत्रुओं कोदमित करके जनता को राज्य के साथ एकाकार कर दिया जाता है। जैसा कि लैक्लाऊ अपनी प्रथम पुस्तक में तर्क देते है– ''लोकप्रिय प्रतिरोध जनता के विरूद्ध खड़े उन सब तरह की बाह्य शक्तियों के खिलाफ खड़ा होता है जो राज्य के मूलरूप से विभन्न प्रारूप है।[24] जनता की अंतरविरोधों को विपरीत किस्म के शक्तियों के बीच तभी स्थापित किया जा सकता है जब राज्य को ही पूरी तरह से जनसमान्य का विरोधी ठहरा कर दमित कर दिया जाये। जनता की शक्तियों को सशक्त एवं विकसित करने वाले उन सभी सामाजिक समूहों को सबसे उच्चतम एवं महत्वपूर्ण प्रकार के लोकलुभावनवाद की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें वर्गीय हितों की अंतिम तार्किक परिणति राज्य का ही दमन कर दिये जाने में होती है। इस अर्थों में समाजवाद उच्चमत स्तर की लोक लुभावनवाद प्रणाली है और यह एक स्तर पर सर्वोच्च एवं सबसे ज्यादा उग्र वर्गीय संघर्षों को समाप्त करने में भी मददगर होती है। लोग और वर्गीय चेतना के इस द्वैधता में इस तरह की लोकलुभावनवादी परिघटना एक संतुलन बनाने का कार्य करती है। जिसे इस तरह से देखा जाता है कि समाजवाद लोकलुभावनावाद के बिना संभवन नहीं है और लोक लुभावनवाद की सर्वोच्च अभिव्यक्ति समाजवादी तरीके से ही हो सकती है। इस तरह के विकसित अंतःज्ञान को हम माओ और अन्य राजनीतिक विचारकों में अभिव्यक्त होता हुआ पाते है। वर्गीय संकुचनवाद के बावजूद मार्क्सवाद के अन्दर अलग–अलग तरह के राजनीतिक

25. अर्नेस्ट लैक्लाऊ, पालिटिक्स एण्ड आईडियोलॉजी इन मार्क्सिस्ट थ्योरी (1977) (लंदन : वर्सो, 1979), पृष्ठ संख्या 196–197

संयोजन की जरूरत पड़ती है और वे इन परिघटनाओं के परे जाने का प्रयत्न करते है।[25] लैक्लाऊ ने इस तरह के समाजवादी लोक लुभावनवाद को नये प्रवृत्तियों के साथ भी जोड़ जो अपने मूल स्वरूप में थोड़ी कम क्रांतिकारी थी। उन्होंने कहा कि लोगों और वर्ग के बीच मौजूद इस द्वैधता को अलग तरीके से व्याख्यायित किया जाना चाहिए। इन सारे तरह के लोकप्रिय उग्रपंथी रूझानों में एक बात जो समान है वह यह है कि जनतांत्रिक जुड़ावों को वंचित और वर्चस्वी दोनों समूहों के साथ अनवरत जोड़े रखा जाये अपनी सीमाबद्धता के कारण ही पारंपरिक शक्ति के केन्द्रों को हटाकर एक वर्चस्वी समूह खड़ा होता है। हमको यह ज्ञात है कि किस प्रकार फासीवाद के अन्दर इस तरह की निरस्त्रीकरण की कार्यवाही को वैध बनाया जाता है। एक वैचारिकता के रूप में लोकलुभावनवाद में वैचारिक एकरूपता निर्मित करना अनिवार्य है और यह बिना दमन के नहीं हो सकता। सर्वसत्तावादी शासन प्रणालियों यथा फासीवाद, पेरोनवाद इत्यादि इस तरह की निष्क्रिय बनाने वाली कार्यवाहियों के तौर तरीके अलग होते है। यहां पर वर्चस्वी प्रभुवर्ग को प्रभावी बने रहने की अनुमति दी जाती है और इसके बदले वो उस खास वैचारिक अभियान के प्रति अपना समर्थन प्रदान करते है।[26]

बाद में अपने ज्यादा परिपक्व और सैद्धांतिक अध्ययन में लैक्लाऊ ने यह तर्क दिया कि राजनीति के लिए लोकप्रियतावाद एक अनिवार्य परिघटना है। जिसे समानधर्मा कड़ियों के द्वारा एक प्रतिरोधी सीमान्त के सामने कई तरह के जनतांत्रिक मांगों के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। यद्यपिइस तरह के लोकप्रिय अभियानों के उदय के लिए जनतांत्रिक मांगों से लोकप्रिय मांगों की तरफ संक्रमण जरूरी होता है। जैसा कि लैक्लाऊ तर्क देते है कि ''मांग प्रारम्भ में संभवतः एक निवेदन की तरह सामने आती है। अगर वह मांग मान ली गई तब तो सही है लेकिननहीं मानने की परिस्थति में कई और तरह के अनसुलझे मांगों की एक श्रंखला निर्मित कर ली जाती है। संस्थागत राजनीति के अंतर्गत विभेदकारी नीतियों के द्वारा कई बार उन मांगों को अलग–थलग करने का प्रयास किया जाता है और एक समानत्व का सिद्धांत निर्मित करने का प्रयत्न किया जाता है। बिना किसी बाहरी शक्ति के प्रभाव में यह परिघटना संस्थागत व्यवस्था और लोगों के बीच एक बड़ी सी खाई निर्मित करती है जिसे एक आंतरिक

26. उपरोक्त
27. उपरोक्त 197

सीमान्त की निर्मिति के द्वारा स्थानीय राजनीतिक अधिकरणों से अलग कर लिया जाता है। अनसुलझी मांगों के साथ कई तरह की द्वैध अवधारणायें जुड़ी रहती हैं जिसे लोकप्रिय आंदोलन समकक्षता का स्थान देकर रूपान्तरित करता रहता है। निवेदन अब दावों में बदल जाते है और वे जनतांत्रिक मांगों से सर्वथा अलग होते है इन मांगों की बहुलता एक वृहत्तर सामाजिक व्यक्तिनिष्ठता को जन्म देती है जिसे हम लोकप्रिय मांग कहतें है। एक बहुत छोटी सी मांग से शुरू होकर जन समर्पण के द्वारा एक ऐतिहासिक संभावना में बदल जाती है।

लैक्लाऊ आगे स्पष्ट करते है कि लोकतांत्रिक मांग एक विस्तृत एकाधिकारी निर्माण में समायोजित की जा सकती है जबकि लोकप्रिय मांग एकाधिकारी मांग के प्रति चुनौती प्रस्तुत करती है। लैक्लाऊ द्वारा किया गया लोकतांत्रिक मांग और लोकप्रिय मांग का अन्तर बुर्जुवा लोकतांत्रिक या उदार लोकतांत्रिक और समाजवादी मांगों के मार्क्सवादी अलगाव पर आधारित है। जैसा कि लैक्लाऊ तर्क देते है 'लोकतांत्रिक मांग स्वाभाविक रूप से बुर्जुवा है तथा आवश्यक रूप से उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई है। बुर्जुआ से अलग लोकतांत्रिक मांगे सामाजिक है, जो बढ़ते पूंजीवाद समाज में निहित है तथा ऐतिहासिक विकास के उच्च स्तर से जुड़ी है। अतः सामाजिक और लोकतांत्रिक मांगों में मुख्य अन्तर बुर्जुआ एकाधिकार और उदारवादी राज्य की स्थापना के बीच लोकतांत्रिक मांगो का उल्लेख को महत्व नहीं दिया गया। लैक्लाऊ द्वारा प्रयोग किया गया संप्रत्यय लोकतांत्रिक मांग का अर्थ है– 1) ये मांगे समाज के वंचित तबकों की तरफ से निर्मित की गई और इसमें समानता की भावना अर्न्तनिहित है। 2) उनका उदय अनिवार्य रूप से कुछ बहिष्करण या अपवर्जन की अपेक्षा रखता है जिसे लैक्लाऊ वंचित व्यक्ति कहते है।[27] इस तरह से लैक्लाऊ तर्क देते है कि वैसी मांगे जो मान ली जाती हैं वो अपना ध्याान केन्द्रित करते है जो सम्पूर्ण नकार और संतुलन की स्थिति के बीच लटकी रहती है। इस तरह की भौतिकता और असम्बद्धता पायी जाती हैं।[28]

28. उपरोक्त 125
29. उपरोक्त 127–128

इस तरीके से लोकप्रिय मांगों का गठन स्वतः ही मांगों की बहुलता को एक बहुलवादी चरित्र देता है। वहीं जनतांत्रिक मांगों के समक्ष प्रकिया के तहत अलगाव बना रहता है।[29] यद्यपि न जनतांत्रिक मांगों को कई बार अभीपूरित भी मान लिया जाता है और वे अलगाव की अवस्था में किसी संस्थानीकृत विभेदकारी सम्पूर्णता के साथ जुड़ी रहती है।[30] इस तरह से लैक्लाऊ के अनुसार सामाजिकता का गठन करने की दो प्रक्रियायें है– या तो विशिष्टता के मांगों के अभिकथन के संदर्भ में जिसमें विभिन्नतायें आंशिक या पूरी तरह से संलग्न होती है।[31] इसके दूसरे तरीके के रूप में सामाजिकता के गठन को लेकर एक प्रकार की विरोधाभाशी सीमान्त की निर्मिति की जाती है जिसे लैक्लाऊ 'समकक्षता की तार्किकता' कहते है। वहीं दूसरी तरफ पहले रास्ते में एक विरोधपूर्ण सीमान्त की जरूरत नहीं पड़ती है और उसे लैक्लाऊ विभेदीकरण की तार्किकता' कहते है। इस तरीके से लैक्लाऊ के लिए लोकलुभावनवाद के लिए एक पूर्व शर्त के रूप में समकक्षता के तर्क का विस्तार विभेदीकरण के तर्क के ऊपर वर्चस्व स्थापित होने में ही निहित है।[32] समकक्षता और विभेदीकरण के बीच अन्तविरोधी संबंध पाये जाते है। वो साझे रूप से सम्बद्ध आयामों के बीच एक तनाव की जगह निर्मित करते है। जिसे हम समकक्षता की कड़ी के रूप में देख सकते है। एक विशिष्ट प्रकार की मांग चूंकि पूरे नहीं होते तो इसके फलस्वरूपनही पूरे होने वाले मांगों के अस पास एक प्रकार की एकजुटता निर्मित होती है।[33] इस प्रकार समकक्षता का तर्क ही लोकलुभावनवाद का सारभूत तर्क है। तृणमल शासन के संदर्भ में हम इसी समकक्षता और विभेदीकरण के तर्को को कुछ ठोस उदाहरणों के द्वारा समझने का प्रयत्न करेंगे।

अप्रैल 2013 के मध्य में पश्चिम बंगाल में शारदा चिटफंड घोटालाउजागर हुआ जिसमें गरीब लोगों की मेहनत की गाढ़ी कमाई खत्म हो गई। बैंकिंग सेवाओं के पहुँच के राष्ट्रीय औसत की तुलना में पश्चित बंगाल में कम पहुँच रहने के कारण और नव उदारवादी सुधार कार्यक्रमों के कारण बैंक के ब्याज दर में कमी होने के कारण गरीब लोगों में जालसाजी भरे बचत योजनाओं में अपना पैसा लगाया इन जालसाजी भरी योजनाओं को बंद करने के विरोध में 19

30. उपरोक्त 77
31. उपरोक्त
32. उपरोक्त 77–78
33. लैक्लाऊ, ऑन पाप्युलिस्ट रिजन, 78
34. उपरोक्त 120

अप्रैल 2013 को 3000 अभिकर्ताओं ने ममता बनर्जी के आवास का घेराव किया।[34] एक वरिष्ठ तृणमूल नेता मुकुल रॉय के साथ बातचीत असफल हो जाने पर ऐसा किया गया। आलोक चौधरी नाम के एक अभिकर्ता ने जिसके पास 65 करोड़ रूपये जमा थे और जो मुख्य सूत्रधार सुदीप्ता सेन के साथ फरार हो गया था यह बताया कि– मुकुल रॉय के इस आश्वासन पर हमें भरोसा नहीं है किइस समूह में जमाकर्ता गरीब लोगों को मदद दी जायेंगी तब मजबूरी में हमें मुख्यमंत्री आवास को घेर कर उनसे न्याय की मांग करनी पड़ी।[35] 25 अप्रैल 2013 को सुबोध मलिक स्क्वायरपर 3000 से ज्यादा निवेशकों ने जमा होकर मुख्यमंत्री आवास की तरफ प्रदर्शन किया जिसे पुलिस द्वारा रोका गया। सरकार ने इसी महिने के अंतिम सप्ताह में न्यायमूर्ति श्यामल सेन का गठन किया और इसके द्वारा 17 लाख आवेदकों में सिर्फ 23 जिसकी संख्या 393982 थी, को उनके पैसे वापस लौटाये गये क्योंकि आयोग ने चेक के माध्यम से उन्हीं लोगों का पैसा लौटाया जिनकी जमाराशि 10,000 या उससे कम थी। यहां पर हम विभेदीकरण के तर्क को कार्यरत होते हुए देखते हैं जिसमें कुछ हद तक सबसे गरीब एवं जरूरतमंद समूहों के जनतांत्रिक आकांक्षाओं को समायोजित करने का प्रयत्न किया गया। यद्यपि सेन आयोग की जाँच अक्टूबर 2014 तक आते आते आधी अधूरी ही रही क्योंकि मुख्य साजिश कर्त्ताओं की पहचान और निवेशकों को पैसा लौटाने का कार्य अधूरा ही रहा।[36]

जैसाकि अखबारों व दूरदर्शन में दिखाया गया कि शारदा समूह के द्वारा प्राप्त स्वामित्व वाले कुछ अखबार एवं दूरदर्शन चैनल के कार्यक्रमों में मुख्यमंत्री शामिल हुई। कुछ खबरों में यह भी दावा किया गया कि भारतीय रेल और शारदा समूह के बीच तथाकथित रूप से किये गये करार के दस्तावेजी प्रमाण उपलब्ध हैं जिसके अन्तर्गत बिना किसी बैंक सुरक्षा के शारदा समूह को आई0आर0सी0टी0सी0 का एक अभिकर्त्ता बनाया गया। यह घटना 2010 की है जब ममता बनर्जी रेलमंत्री थी। इसी घटना के प्रकाश में आने के बाद कांग्रेस पार्टी ने ममता बनर्जी के

35. सैबाल सेन एण्ड कैसर मंडल, 'चिट–फंड स्कैमः शारदा ऐजेन्ट्स ले सीज टू ममता हाउस', द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 20 अप्रैल 2013 http://timesofindia.indiatimes.com/city/kolkata/Chit-fund-scam-Saradha-agents-lay-siege-to-Mamata-house/articleshow/19643453.cms25 जुलाई 2019 को देखा गया

36. उपरोक्त

37. न्यू रिपोर्टः 'श्यामल सेन कमिशन वूंड अप; जॉब अनफिन्शिड', हिन्दूस्तान टाइम्स, 22 अक्टूबर 2014: http://www.hindustantimes.com/india/shyamal-sen-commisson-wound-up-job-unfinished/story-07YLIk47hwg2s2WufOOQ6O.html15 अगस्त 2019 को देखा गया

इस्तीफे की मांग की।[37]इस बात पर भी सवाल उठाये गये कि एक घाटे में रहने वाली कम्पनी का बिना किसी बैंक सुरक्षा के कैसे यह करार दे दिया गया।

मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के विरूद्ध इन भ्रष्टाचार के आरोपों के बावजूद लोगों को यह भरोसी था की दीदी (ममता बनर्जी) गरीब लोगों के पैसे लौटाने में सक्षम होंगी। यह लोगों का मुख्यमंत्री के प्रति उपलब्ध अपार जनसमर्थन और विश्वास को भी प्रदर्शित करता हैं, ममता बनर्जी के लम्बे राजनीतिक जीवन में किये गये राजनैतिक संघर्षों और निम्न वर्गीय पृष्ठभूमि से उनके आने के कारण लोगों का यह भरोसा सर्वोच्च नेतृत्व के प्रति बना रहा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षित सी0बी0आई0 जांच में तृणमूल कांग्रेस के कई वरिष्ठ नेताओं की संलिप्तता उजागर होने और उनके जेल में जाने के बावजूद ममता बनर्जी की छवि निर्विवाद बनी हुई है। पश्चिम बंगाल में चिटफंड कंपनियों का घोटाला कोई नई परिघटना नहीं है। यह वाम मोर्चा सरकार के दौरान कई बार सामने आया है लेकिन उस दौरान मुख्यमंत्री या वितमंत्री के प्रति एकमात्र विश्वास न जता कर जनता ने पूरे सरकार को समग्रता में अपना विश्वास का केन्द्र बनाया था। यह एक तरह से ममता बनर्जी के करिश्माई आभामंडल केन्द्रित राजनीति का भी एक स्पष्ट उदाहरण है। जहां पिछले कुछ वर्षों में मुख्यमंत्री ने स्वंय ही पीड़ीत लोगों तक पहुँच कर उनके कल्याण हेतु अपने मंत्रालयों और नौकरशाही की मदद से योजनायें चलायी। राजनीतिक मंचों और सरकारी कार्यक्रमों में अभी भी ममता बनर्जी की एंव जनप्रिय एवं भीड़ को आकर्षित करने वाली छवि विद्यमान है।

एक व्यक्ति केन्द्रित राजनीति पर निर्भरता के कारण तृणमूल कांग्रेस 1998 से लेकर मई 2011 तक विपक्ष की राजनीति करते रहने के दौरान भी राजनीतिक गतिशीलता के लिए ममता बनर्जी पर केन्द्रित रहीं 2016 के विधानसभा चुनाव के दौरान पांच वर्ष तक सत्ता में रहने के

38. न्यूज रिपोर्टः 'शारदा–आई0आर0सी0टी0सी0 डील कांग वांटस ममता टू रीजाइन', द इण्डियन एक्सप्रेस, 5 सितम्बर 2014: http://indianexpress.com/article/cities/kolkata/saradha-irctc-deal-cong-wants-mamata-to-resign/25 जुलाई 2019 को देखा गया

बावजूद ममता बनर्जी ने अपने को सभी 294 विधनसभा क्षेत्रों के लिए अपने ही चेहरे को एकमात्र उम्मीदवार बताया।[38]

यह अपने मतदाताओं को साफ एवं स्पष्ट संदेश देना था कि ममता बनर्जी की विश्वसनीयता और जन समर्पण के प्रति ही मतदाता अपना जनमत दे उम्मीदवार उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। तमाम कार्यकर्त्ताओं एवं नेताओं के भ्रष्टाचार एवं गलत आचरण में फंसे होने के बावजुद दीदी की छवि बेदाग है इसलिए मतदाताओं को सिर्फ उनके नाम पर ही तृणमूल का समर्थन करना चाहिए। चुनाव परिणाम में मूल कांग्रेस को करीब 45 प्रतिशत मत के साथ 294 में 211 सीटें प्राप्त हुई और दीदी को 213 से ज्यादा विधायकों का समर्थन मिला। विपक्ष के तमाम घोटालों एवं सत्ता के दुरूपयोग करने के आरोपों को जनता ने नकार दिया। जनता के एक विशष्ट प्रकार के राजनीतिक अभियानों और नई चुनावी भाषा ने स्वतंत्रोंतर बंगाल में एक नये तरह की राजनीतिक आख्यान की निर्मिति की। सभी क्षेत्रों में चुनावी सभाओं में खुद को ही उस क्षेत्र का उम्मीदवार घोषित करने की रणनीति बंगाल से ममता बनर्जी का नाम एक खुले समकक्षता के तर्क का समानार्थी बन गया जिसमें समाज का अंग होने के बावजूद वह जनता के हितों की प्रमुख सूत्रधार बनकर उगे।

2017 के शुरूआत में साउथ 24 परगना जिले में मांगर क्षेत्र में किसानों ने पावर ग्रीड कॉरपोरेशन के एक परियोजना का विरोध किया। किसानों के इस विद्रोह में दक्षिणपंथी समूह, पर्यावरणवादी और वामपंथी समूह भी शामिल थे जिसकी राष्ट्रीय और स्थानीय मीडिया में खूब चर्चा हुई। प्रारंभ में राज्य प्रशासन ने दमनकारी तरीका अपनाते हुये हिंसक रास्ता अपनाया जिसमें गोलीबारी के दौरान 5 लोगों की मृत्यु हो गई और कई घायल हो गये। जटिल संवाद और वार्त्ताओं के बाद इस मुद्दे को सुलझाया गया और राज्य सरकार द्वारा प्रदर्शनकारियों की मुख्य मांग मान ली गई। यह तय किया गया कि पावर कॉरपोरेशन 16 उच्च तनाव टावर की जगह सिर्फ 4 टॉवर निर्मित करेगा। इसके अलावे एक खबर के अनुसार यह भी तय किया गया कि आकाश में लटके खुले तारों की जगह भूमिगत तार बिछायें जायेंगें। इसके अलावे

39.

भूमि क्षतिपूर्ति आर्थिक मदद को भी 19 करोड़ से बढ़ाकर 31 करोड़ किया गया।[39] इसी समाचार के अनुसार इस घटना को ममता बनर्जी के लिए एक बड़ी जीत की तरह देखा गया कयोंकि उन्होंने अपनी जन एवं किसान हितैषी छवि को अक्षुण्ण रखते हुये औद्योगिकीकरण की दिशा में सफलता प्राप्त की।[40] यह एक तरह की संस्थानिक राजनीति के द्वारा जनतांत्रिक मांगों को आत्मसात करने की राजनीति है जिसे ममता बनर्जी ने सफलतापूर्वक पूरा किया। यह विभेदीकरण की राजनीति कौशल का शानदार नमूना है। जादवपुर लोकसभा क्षेत्र जहां पर यह किसान आंदोलन हुआ था वहां 2019 के लोकसभा चुनाव में भी तृणमूल कांग्रेस में अपना चुनावी प्रदर्शन सुधारा ही है और पिछले चुनाव की तुलना में वे ज्यादा अंतर से ही चुनाव जीत कर आये है। इस तरह हम देखते हैं कि मांगर किसान आंदोलन को सिंगूर या नंदीग्राम की तरह जन आक्रोश की अभिव्यकित के राज्यव्यापी अभियान में नहीं बदलने दिया गया।

इसके उपरांत जब हम 2019 के लोकसभा चुनाव में तुरंत बाद हुए प्रदेशव्यापी चिकित्सको के प्रदर्शन को देखते हैं तो हम पाते हैं कि यहां पर भी ममता बनर्जी ने अपना राजनीतिक कौशल दिखाया। इस घटना में कनिष्ट चिकित्सकों ने नील रतन सरकार मेडिकल कॉलेज में 11 जून 2019 को हड़ताल प्रारंभ कर दी क्योंकि उनका कहना था कि किसी मृत मरीज के परिजनों द्वारा तथाकथित लापरवाही के चलते उन पर हिंसा की गई। धीरे–धीरे यह आंदोलन प्रदेश की सीमाओं से निकलकर पूरे देश में फैल गया जिसे आई0एम0ए0 और एम्स जैसी संस्थाओं ने भी अपना समर्थन दिया और पूरे देश में आकस्मिक सेवाओं को ठप कर दिया। ममता बनर्जी द्वारा कड़ी कार्यवाही करने की घोषणा और ई0एस0एम0ए0 कानून लागू करने की धमकी दिये जाने से हालात और बिगड़ गये और प्रदेश भर में चिकित्सको ने सामूहिक स्तीफा

40. रोमिता दत्ता, 'स्टेलमेट ओवर भांगर पॉवर ग्रिड प्रोजेक्ट एण्डस, वर्क टू बिगेन ऑन 14 अगस्त इण्डिया टूडे, 13 अगस्त 2018 http://www.indiatoday.in/india/story/stalemate-over-bhangar-power-grid-project-ends-work-to-begin-on-august-14-1313100-2018-08-13 15 अगस्त 2019 को देखा गया

41. उपरोक्त

दे दिया जिसके बाद केन्द्रिय मंत्रालय और तत्कालीन राज्यपाल केशरीनाथ त्रिपाठी को भी इस मामले में हस्तक्षेप करना पड़ा।[41]

इसी खबर के अनुसार घटनाकम कुछ इस प्रकार से हुआ–

'कालांतर में राज्य सरकार ने भी अपने रवैये में नरमी लाई और भरोसा दिय गया कि किसी तरह की पोलिस कार्यवाही नहीं होगी। अंततः प्रदर्शन करने वाले डाक्टर और मुख्यमंत्री के बीच बातचीत तय हुई जिसमें मीडिया की भी उपस्थिति रहेगी। 31 चिकित्सकों के प्रतिनिधिमंडल के, जिसमें सभी 14 मेडिकल कॉलेज के दो प्रतिनिधि शामिल थे, साथ मुख्यमंत्री सचिवालय में दो घंटे तक चली बैठक जिसमें मुख्यमंत्री ने पोलिस सुरक्षा शिकायत निवारण तंत्र बनाने और आम लोगों का अस्पताल परिसर में निर्बाध प्रवेश रोकने जैसे उपायो को लागू करने की घोषणा की। इस तरह से चिकित्सको की हड़ताल दवाबों से मुक्त होकर भयमुक्त वातावारण में अपना काम करने का ठोस आश्वासन प्राप्त करके डॉक्टर समुदाय ने अपनी जीत की घोषणा की।''[42]

गरीब व्यक्तियों को जाली चिटफंड कंपनियों द्वारा ठगे जाने के मामले मेंउनके पैसे लौटाने जैसे मांग या फिर मांगर में किसानों को जमीन के बदले ज्यादा क्षतिपूर्ति देने का मसला हो या फिर चिकित्सकों की सुरक्षा चितांओं जैसी जनतांत्रिक मांगों को विभिन्नीकरण के तर्क द्वारा संस्थागत तरीके से सुलझाने का प्रयत्न किया गया। ममता बनर्जी के नेतृत्व वाली तृणमूल सरकार ने पीड़ीत पक्षों के साथ समकक्षता के तर्क का प्रयोग करते हुये इन अंदोलनों को सुलझाने का कार्य किया। समकक्षता के तर्क को विभिन्न पीड़ीत पक्षों के सामुहिक अभिव्यक्ति नहीं बनने देने में ममता बनर्जी को सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार समाज के वंचित तबकों का प्रतिरोध उन वर्चस्वी सीमांतों के प्रति नहीं बन पाया जिसके द्वारा किसी समकक्षता की प्रतिपूर्ति के लिए आंदोलन किए जाते है। जैसा कि लैक्लाऊ कहते है– अलगाव में पड़े जनतांत्रिक मांगों की समकक्षता पर आधारित लोकप्रिय मांगों में परिवर्तित होने कि लिए सामाजिक मांगों

42. न्यूज रिपोर्ट 'डाक्टर्स इन वेस्ट बंगाल कॉल ऑफ स्टाइक', 17 जून 2019: http://www.thehindubuisnessline.com/news/national/doctors-strike-mamata-agrees-to-live-coverage-of-meeting/article27995010.ece15 अगस्त 2019 को देखा गया

43. उपरोक्त

को अनवरत अनसुना किया जाना आवश्यक है। सामाजिकता के सद्भावनापूर्ण निरंतरता में एक फांक और उसकी तीव्रता से प्राप्त आनुभाविकता को होना जरूरी है। उस समुदाय की संपूर्णता की भावना की अनुपस्थिति जरूरी है। उस अनुपस्थिति की भावना से ही जन सामान्य की निर्मिती होती है। सामाजिक व्यवस्था में ऐसी टूटन के बिना किसी सामाजिक प्रतिरोध या संघर्ष की संभावना नहीं बनती।

इस 'कमी' को हम वैसी मांगों की अनुपस्थिति की तरह समझ सकते हैं जिसे पूरा नहीं किया जा सका है। यह शक्ति के संतुलन एवं उसको लागू करने वाले व्यक्तियों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा मसला है। प्रारंभ से ही हमारे सामने अपूरणीय मांगों एवं सामाजिक अपेक्षाओं के बीच द्वैधता की स्थिति बनती है जिसे गैरप्रतिक्रियात्मक शक्ति संरचना व्यवहार में लागू करती है। 'जनसामान्य' अपने आप को सर्वहारा की तरह देखने लगता है और एक सामुहिक सहकार निर्मित करता है। समुदायों की सामुहिकता में एक काल्पनिक 'कमतर व्यक्ति' के परिकल्पनाओं से ठीक उलट भावना मौजूद रहती है। वैधता की दावेदारी करने वाले समूहों को इस समुदाय का हिस्सा कभी नहीं समझा जा सकता और दोनों के बीच एक गहरी खाई होती है। यह बहुलता से भरी व्यक्तिनिष्ठ मानकों से निर्मित एक प्रकार की संक्रमणकारी स्थिति होती है जिसें प्रारंभ में भले ही अलगाव हो लेकिन कालांतर में सामाजिक ताने बाने में एक लोकप्रिय व्यक्तिनिष्ठता की तरफ एक समकक्षता का संबंध इनमें स्थापित हो जाता है।[43]

इस तरह से जनतांत्रिक मांगो को समायोजित कर के तृणमूल शासन में जनतांत्रिक मांगों के बाधित करके लोकप्रिय मांगों में परिवर्तन होने से रोका। लैक्लाऊ के सिद्धांत के आधार पर ही स्पष्ट है कि लोकप्रिय तर्को को सत्ता के गठन के स्तर पर ले जाने के साथ ही यह नये पुराने व्यवस्था को प्रतिस्थापित कर के नए शक्ति संबंध बनाता है। यहा पर 'विभिन्नकरण की तार्किकता','समकक्षता की तार्किकता' पर हावी हो जाती है

जैसा कि लैक्लाऊ बताते है– वह समाज जो कलयाणकारी राजय को अपनी सर्वोच्च अभिव्यक्ति मानता है वह वही समाज है जहां विभिन्नीकरण की तार्किकता को समाजिकता के

44. लैक्लाऊ ऑन पापुलिस्ट रीजन, पृष्ठ संख्या 85–86

गठन का वैध तरीका माना जाता है। लगातार विस्तृत होते इस सामाजिक संरचना में किसी भी सामाजिक जरूरतों को विभेदीकृत तरीके से ही देखा जाना चाहिए और कोई आतंरिक सीमांत नहीं बनने देना चाहिए। समाज को संपूर्णता के मानक की तलाश नहीं करनी चाहिए जिसमें जनता ही सबसे ज्यादा नुकसानकारी भूमिका में हो। व्यक्तिगत स्वार्थ, लोग कार्पोरेट हितों का संरक्षण, निजी लोग की बेलगाम भावना पर आधारित समाज निर्माण प्रकिया की बाधाओं का दूर किए बिना सामाजिक विभेद को खत्म नहीं किया जा सकता। कल्याणकारी राज्य की सामुहिक वकालत और उसकी सुरक्षा किए बिना यह संभव नहीं है। यही बात नवउदारवादी राज्य के लिए भी कही जा सकती है जोयह दावा करता है कि उसके पास तनावविहीन समाज के लिए संपूर्ण समाधान उपलब्ध है लेकिन इसमें एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि नवउदारवादी राजनीति में यह तिकड़म बाजार द्वाराकिया जाता है ना कि राज्य द्वारा लेकिन दोनों के परिणाम एक ही होते है।[44]

यद्यपि तृणमूल कांग्रेस कोई एक विभिन्निकरण के तर्क पर ही शासन व्यवस्थ में बनी हुई हो ऐसा नहीं हैं है। अभिशासन के नए तर्को के आधार पर प्रत्यक्ष आर्थिक मदद देने के कारण भी जनसामान्य के बीच तृणमूल की स्वीकार्यता बरकरार है। यक्ष प्रश्न इससे जुड़ा हुआ है किइस परिघटना को लोकलुभावनवाद की तरह न देखकर सेवार्भीवादी संबंध की तरह क्यों ना देखा जाये। यहा पर लैक्लाऊ तर्क देते है कि सेवालाभी भावना के अंतर्गत भी संस्थागत प्रारूप हो सकता है जिसमें वंचित तबको तक एक भावनात्मक अपील बनाने की क्षमता भी हो और राजनीतिक संजालों से परे जाकर एक लोकप्रिय अवधारणा का वातावारण बिना किसी वैचारिकी संस्थान के बना सके।[45]

2019 में चुनावी अभियानों के तृणमूल का एक नया प्रतीक चिन्ह प्रचार के दौरान जारी किया गय जिसमें सिर्फ तृणमूल शब्द लिखा हुआ था। उन्होंने कांग्रेस शब्द का प्रचार के दौरान परित्याग कर दिया था जबकि उनका स्थापित नामाकरण अभी भी यही है।[46] तृणमूल अपने

45. उपरोक्त 78–79
46. उपरोक्त 123
47. संदीप फुकन, तृणमूल ड्राप्स द कांग्रेस फाम इट्स लोगो', द हिंदू 22 मार्च 2019: http://www.thehindu.com/elections/lok-sabha-2019/trinmool-drops-the-congress-from-its-logo/article26611880.ece 25 जुलाई 2019 को देखा गया।

मूल आधारों पर जोर देकर शाब्दिक अर्थों में वंचित, गरीब एवं बहिष्कृत तबकों तक अपना भावनात्मक अपील बनाए रखना चाहती है। तृणमूल के इसी अकादमिक विश्लेषण में हम इस तथ्य की अनदेखी नही करनी चाहिए कि नामाकरण का लोकप्रियतावादी संरचना में प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।[47] गरीब, वंचित लोगों की 'दीदी' मुख्यमंत्री ने भाजपा के नीतियों के विरूद्ध एक समकक्षता का सिद्धांत निर्मित करते हुए भाजपा और वाम मोर्चा दोनों कि केन्द्र और पूर्ववर्ती राज्य शासन के समानान्तर नया तर्क विकसित किया।

लैक्लाऊ के विभिन्नकरण के तर्क के आधार पर जनतांत्रिक मांगों को विभिन्न शक्ति समूहों द्वारा समायोजित कराने का प्रयास किया जाता है। यह खांचों में बटी आंशिकता से भरी मांगों को मुख्यधारा का हिस्सा बनाने की राजनीति है। लेकिन तृणमूल द्वारा चलाई गई कई सारी कल्याणकारी योजनाएं किसी राजनीतिक प्रदर्शन के उत्पाद की तरह नहीं है। ये सब योजनाएं शासन के स्तर पर ठोस विचार विमर्श एवं तकनीकि समझ से संभव होती है। जनता के बीच अपनी जगह बनात हुए यह योजनाकरी व्यवस्था सरकारी तर्क के आधार पर चलती है ना कि वह किसी विभिन्नीकरण के तर्को के आधार पर संचालित होती है। यह इसलिए भी है क्योंकि लैक्लाऊ का विभिन्नकरण का तर्क 'समायोजन' के तर्क पर संचालित होता है ना कि अनुप्रयुक्त प्रविधि की रणनीति के संदर्भ में। जैसा कि हम जानते है कि लैक्लाऊ लोगों के तर्क के साथ समकक्षता के तार्किकता से जोड़ते है वहीं विभिन्नीकरण के तर्क को शक्तिशाली गुटों के समूह से। इस संदर्भ में शक्तिशाली समूह को ना केवल जनतांत्रिक मांगों को समायोजितकरने की क्षमता होती है बल्कि बिना किसी पूर्व मांग के भी योजनाओं का जमीन पर रूपातंरित करने की भी क्षमता होती है। यह राज्य प्रायोजित लोकलुभवानवाद की सामान्य आधारभूमि है।

किसी नए वैचारिक आग्रहों के बाद अगर 'जनसामान्य' की कोई नई प्रकार की गतिकी निर्मित होती है, जिसमें धार्मिक सामुदायिक चेतना पर आधारित भाजपा का उदाहरण लिया जा सकता है, तो हम पाते है कि यह भविष्य में तृणमूल द्वारा प्रायोजित राज्य केंन्द्रित लोकलुभावनवाद को

48. लैक्लाऊ ऑन पापुलिस्ट रीजन, पृष्ठ संख्या 100–117

भी चुनौती देसकती है। भाजपा का 'जनसामान्य' का गठन एक दूसरे वैचारिक पर निर्मित है जिसमें मुसलमानों के तथाकथित तुष्टिकरण और हिंदुओं के प्रति उत्पीड़न एवं उपेक्षा की भावना का कथानक गढ़ा गया है जिसे आख्यानों की तथ्यात्मकता के ऊपर जीत की तरह देखा जा सकता है। अर्द्धसत्यों या काल्पनिक तथ्यों पर आधारित इन सत्यों के आधार पर सिर्फ झूठी खबर एवं दुष्प्रचार कार्यक्रम चलाए जा सकते है। नए किस्म के तुष्टिकरण प्रयासों यथा मुस्लिम धर्मगुरूओं को कुछ मासिक आर्थिक मदद देने का वादा, तीन तलाक पर तृणमूल दल क रवैया एवं राज्य द्वारा कुछ सांप्रदायिक झड़पों को आधार बनाकर यह आख्यान प्रमुखता से गढ़ा जाता है।

2019 के लोकसभा चुनाव के दौरान 'दीदी को बोलो'' अभियान प्रारंभ किया गया जिसमें कोई भी व्यक्ति मुख्यमंत्री के समूची चुनावी प्रबंधन समूह को एक हेलपलाईन दूरभाष द्वारा संपर्क कर सकता है। वह इंटरनेट के माध्यम से भी इस समूह तक अपनी बात पहुंचा सकता था। यह जनसंपर्क कार्यक्रम एक तरह से शिकायत निवारण प्रकोष्ठ की तरह कार्य कर रहा था जिसमें प्रतिदिन के आधार पर सघन जनसंपर्क केतत्व भी उपलब्ध थे। व्यवहार में इसने राज्य प्रशासन को जमीनी सच्चाइयों एवं योजनाओं की स्थानीय प्रजाति के बारें में प्रमाणिक जानकारी दी। त्वरित प्रतिक्रिया एवं योजनागत सफलता के साथ इस अभियान ने अभिशासन के तर्को को और ज्यादा मजबूत बनाया।

पश्चिम बंगाल में राज्य प्रयोजित लोकलुभावनवाद को हम बिहार एवं उड़ीसा जैसे राज्यों से तुलना कर सकता है या राष्ट्रिय स्तर पर 'मोदीत्व' का उभार या तमिलनाडू जैसे राज्य में इसका दूसरा रूप सामने आता है।[48] यह लैक्लाऊ के सैद्धांतिक विश्लेषण से थोड़ा परे जाकर एक नए प्रकार की अवधारणा है। भारत में राज्य प्रायोजित लोकलुभावनवाद का जो विशिष्ट प्रारूप दिखता है वह राज्य को इस्तेमाल कर के अपने यथार्थवाद या काल्पनिक दुश्मन कोचुनौती देता है। सत्ता विरोधी तर्क के आधार पर यह राजनीतिक पहल एक नए प्रकार की लोकप्रिय संरचना में बदल जाती है जिसे राज्य के शक्तियों का इस्तेमाल करने का हुनर आता

51. इण्डियन मुस्लिम्स आफ्टर लिबरलाईजेशन (न्यू दिल्लीः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, 2019) में मोदीत्व को मेरी स्वयं की पुस्तक में मैंने व्याख्या किया है।

है। राज्य प्रायोजित लोकलुभावनवादी राजनीति दक्षिणी गोलार्द्धो में मौजूद रही जिसमें लिबीया में गद्दाफी, अर्जेटिना में पेरोन, कुछ समय के लिए इंदिरा गांधी का शासन, बांग्लादेश में शेख हसीना का शासन और अमेरिकी देशों में लोकलुभावनवादी राजनीति का उदाहरण प्रमुख है। चुनावी बहुमत द्वारा राज्यवादी लोकलुभवनवादी बनाया जा रहा है जो भारत में विशिष्ट है क्योंकि एशिया, अफ्रिका या लैटिन अमेरिका में यह काम सेना की मदद से हो रहे हैं। ममता बनर्जी का शासन, अपने निष्कर्ष में, लैक्लाऊ के दोहरे तर्को से परे जाकर तीन आधारो पर कार्यरत है जिसमें समकक्षता, विभिन्नीकरण के अलावे अभिशासन के तत्व भी सम्मिलित है।

राजनीतिक व्यवहार के रूप में लोकलुभावनवादः हिंदी प्रदेशों में जाति और सामाजिक न्याय

मनीष कुमार झा

सामान्यतया लोकलुभावनवाद को आम जनता का प्रभुवर्ग के खिलाफ प्रतिरोध के रूप में परिभाषित किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि जनतंत्र में प्रतिनिध्यात्मक राजनीति के विरूद्ध प्रतिरोध एवं आम जनता के हितों के संरक्षक के रूप में लोकलुभावनवाद की परिघटना को और ज्यादा गहराई में विश्लेषण करने एवं उस पर पुर्नविचार की जरूरत है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की ऐतिहासिक विचार यात्रा और चुनाव राजनीति के प्रतिमानों का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि लोकलुभावनवाद हमारे राजनीतिक संस्कृति का कई दशको से अनिवार्य हिस्सा बना हुआ है। राष्ट्रिय स्तर पर पिछले 50 वर्षो में इंदिरा गाँधी से लेकर नरेन्द्र मोदी तक इसने कई आकार एवं चरित्रगत परिवर्तन परिलक्षित किये है। क्षेत्रीय दलों में भी लालू यादव, जयललिता से लेकर ममता बनर्जी तक अपने प्रभाव क्षेत्रों में लोकलुभावनवादी राजनीति के विशिष्ट एवं राजनीतिक चातुर्य से भरे लोकाचारों को हमने अभिव्यक्त होते देखा है। व्रीसे एवं अन्य (2018) विचारकों का मानना है कि लोकलुभावनवाद संभवतया प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देता है और अपवंचना से ग्रस्त लोगों के लिए राजनीतिक–सामाजिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर अभी तक मुख्यधारा के विमर्श से बाहर उनके मुद्दों को मुख्यधारा में बहस के केन्द्र में लाता है। जिस तरीके से लोकलुभावनवाद ने वैश्विक राजनीतिमें राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित किया है, इसका व्यापक फलक पर परीक्षण आवश्यक हो जाता है। यह विश्लेषण का विषय है कि क्या इस परिघटना नेजहाँ एक तरफ अल्पसंख्यक अधिकारों के संरक्षण पर खतरा उत्पन्न किया है और नागरिक विमर्शो पर अंकुश लगाने की कोशिश की है वहीं दूसरी तरफ इसमें जनतंत्रात्मक विस्तार एवं पहुंच बनाने के लिए हाशिये के लोगों के सशक्तिकरण का कार्य किया है। जाति और सामाजिक न्याय की राजनीति मुख्यतया अभीतक हाशिये पर पड़ी आबादी के जनतांत्रिक चेतना एवं आकांक्षाओं को विस्तृत करने का कार्य करती है। लोकलुभवानवाद का विमर्श 'लोकप्रिय इच्छा' को अभिव्यक्त करने का आधारभूत कार्य करती है और वैचारिक रूप से मुक्त

होकर बहुमत को आकर्षित करने वाली किसी भी विचारधारा के साथ अपना सहकार बनाती है।

लोकलुभावनवाद को एक सफल परिघटना के रूप में वैश्विक रूप से विस्तार पाने के पीछे के कारणों की कई व्याख्याएं की गई है। लेकिन यह देशकाल एवं राजनीतिक संस्कृति के बदलते प्रतिमानों के अनुरूप अलग अलग तरीके से सामने आयी है। इस शोध प्रपत्र में, शोधकर्ता ने राजनीतिक व्यवहार के रूप में लोकलुभावनवाद को विश्लेषित करने का प्रयास किया है जिसमें सामाजिक न्याय के प्रश्न को कई तरीकों, जिसमें जाति प्रमुख है, के द्वारा व्याख्यायित किया है। उत्तर औपनिवेशिक भारतीय राजनीति में भारतीय संविधान के आदर्शो एवं उदारवादी जनतंत्र की जरूरतों के आधार पर लोलुभावनवाद कई सारे विविधवर्णी एवं गतिशील प्रारूपों में अभिव्यक्त हुआ है। इसकी बारीकियों एवं जटिलताओं को हम अलग अलग तरीके से विश्लेषित, स्थापित एवं अभिव्यक्त होता हुआ देख सकते है। लोकलुभावनवाद के वैचारिक आधारों को हम अलग अलग राज्यों में अलहदा किस्म के मुहावरों, भाषाई अभिव्यक्तियों एवं संस्थानिकृत प्रारूपों एवं पहल करने की अभिनव रणनीतियों के माध्यम से अभिव्यक्त होता हुआ देख सकते है।

इस शोधपत्र में, शोधकर्त्ता ने, हिंदी प्रदेशों में लोकलुभावनवाद को समान्य तरीके से और बिहार एवं उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भों में विश्लेषित किया है। बिहार की राजनीतिक लोकलुभावनवाद विमर्श विश्लेषण में अतीत के उदाहरण से लेकर उत्तर प्रदेश के समकालीन लोकप्रियतावादी राजनीति के तौर तरीकों में इसमें विशलेषित किया गया है। लोकलुभावनवाद के स्थानीय संदर्भो में इसके पारिभाषिक अर्थ से लेकर राजनीतिक क्षेत्र तक में इसके व्यवाहारिक प्रारूपों को लेते हुए पहले सामाजिक न्याय का लोकप्रिय जमीनी रूपातंरणको विश्लेषित किया है। सामाजिक न्याय के विभिन्न प्रारूपों एवं इसके जाति के प्रश्न के साथ नाभिनाल संबंध को लोकलुभावनवादी राजनीति के माध्यम से समझने का प्रयत्न किया गया है। जातियों के अंकगणित में किस प्रकार समावेशन एवं सामाजिक अपवर्जन के मुद्दे इन प्रकियाओं को जटिल बना देते है और कैसे इसमें आम जनता के सामुहिक सहकार को एक

भावनात्मक पक्षधारता दी जाती है, यह प्रश्न भी इस शोधपत्र की मुख्य अनुसंधान विषयवस्तु है।

सामाजिक न्याय की गतिशलता एवं उसके विस्तार से जातियों में नये प्रकार की राजनीतिक सक्रियता आयी है जिसमें चुनावी राजनीति के पारपंरिक व्याकरण को बदल दिया गया है। इस तरह से दो तरह की जातीय चेतना विकसित हुई है जिसे 'सामाजिक जातियता' का नाम दिया गया है। सामाजिक न्याय के विमर्श की भाषा व्याकरण, मुहावरे, स्वर एवं नारों में रूपांतरकारी बदलाव आए हैं जिसे सामान्य तरीके से हम अस्मितापरक राजनीति के विमर्शो से भी 1960 के दशक के बाद के सामाजिक नेतृत्व के उभार के माध्यम से समझ सकते है। लोकलुभावनवादी राजनीति की हिंदी प्रदेशों में वैचारिक यात्रा एवं जड़ जमाने के कवायद बहुत उतार चढ़ाव से भरी हुई है। जातियों के प्रबधंन से हम किस प्रकार राजनीतिक व्यवहार में आये परिवर्तन का समझ सकते है। लोकलुभावनवादी राजनीतिके प्रतिमानों के आधाार पर कैसे अर्थवत्ता प्रदान की जा सकती है, यह भी एक निश्चित कालखंड के अंतर्गत विश्लेषित करने का प्रयास इस शोधपत्र में किया गया है। शोधकर्त्ता का यह प्रयास है कि अतीत से समकालीन वर्तमान की एक विचारभाषा का गहन एवं तथ्यपरक बारीक विश्लेषण उत्तर प्रदेश एवं बिहार के संदर्भ में किया गया जाए।

जातियों के गठबंधन एवं सहकार के उदाहरणों से हिंदी प्रदेश की राजनीतिक जमीन भरी पड़ी है जिसमें पहलकदमी एवं अंतःक्रियाओं की एक लंबी प्रक्रिया रही है। अतीत में, राजनीतिक व्यवस्थाओं ने जातियों के प्रबंधन एवंप्रशासन को इस तरीके से अभिव्यक्त किया कि वह राजनीतिक प्रभुवर्ग के वैधता एवं बहुमत के समर्थन को प्राप्त करने का एक वैध तरीका बन गया। कांग्रेसके प्रभुवर्गों का राजनीतिक प्रबंधन को 1960 के दशक के मध्य तक आते आते समाजवादी समूहों द्वारा चुनौती दी जाने लगी जिससे जनराजनीति के उभार की नई संभवानाएं खुली और लोकलुभावनवादी राजनीति के राजनीतिक परिदृश्य का नया आयाम उद्घाटित हुआ। जाति को सामाजिक–राजनीति–आर्थिक संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण के लिए वंचित एवं बहिष्कृत जातियों द्वारा केन्द्रीय प्रश्न के रूप में लाया गया। इस संदर्भ में यह प्रश्न उठना लाजिमी था कि क्या लोकलुभावनवाद किसी रोषकी भावना से संचालित अवधरणा

है जिसमें ईर्ष्या या अन्याय का पुट विद्यमान रहता है? सामाजिक प्रक्रियाओं के संगठितस्वरूप लेने और वर्चस्व स्थापित करने के संघर्ष में दलित और पिछड़ी जातियों ने 1960 के दशक तक आते आते अपनी सामुहिक खेमेबंदी कर ली थी लेकिन उसको चुनावी सफलता अभी उतनी नहीं मिल रही थी। लोहिया द्वारा बढ़ाये गये गैरकांग्रेसवाद के नारे ने कांग्रेस को एक उच्च–वर्गीय प्रभुवर्ग के रूप में प्रदर्शित कियाऔर समाजवादी विचारधारा को जनता की आकांक्षाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया। पिछड़े वर्ग के साथ कुछ दलित जातियों के कुछ तबकों के गठजोड़ ने पहले गैर कांग्रेसी गठबंधन को जगह दी जिसमें जनसंघ, समाजवादी और कांग्रेस से छिटका हुआ तबका एक साथ साझे रूप में सामने आए। अगले कुछ दशको मेंइस'अतियों के बठबंधन' के द्वारा सामाजिक न्याय का प्रश्न किस प्रकार उठाया गया यह विचारणीय प्रश्न है। समाजवादी राजनीति के आरक्षण के परे जाकर कुछ और नए कदमों को सोच नहीं पाने की अयोग्यता और कांग्रेस के उसी अनुपात में पतन होते चलने के कारण लोकलुभावनवाद की राजनीति ज्यादा दूर नहीं जा पाई थी।

इस प्रक्रिया ने सिर्फ दक्षिणपंथ को मुख्यधारा में स्वीकार्यता दिलाई और इसके प्रारूपों को राजनीति और अन्य सार्वजनिक मंचों से समर्थन मिलना प्रारंभ हो गया। समकालीन दशकों में राजनीतिक विकास के कारकों में दक्षिणपंथी उभार की और ज्यादा गहरे विश्लेषण की आवश्यकता हैं। जातीय राजनीति के वृहत आधारों को निर्मित करते हुए किस प्रकार दक्षिणपंथ ने अपने समर्थन आधार में वृद्धि की इसका विश्लेषण हम आगे करेंगे।

हिंदी प्रदेशों में राजनीतिक अंतःक्रियाओं को विश्लेषित करते हुए हम यहपता करेंगें कि मानवतावाद मूलरूप से विचारों का एक समूहभर ही है जिसे एक आदर्शात्मक उपागम द्वारा विश्लेषित किया गया है या इसके अलावा भी यह कुछ है जिसमें 'लोगों' को केन्द्रिय तत्व मानकर जिसके साथ नेतृत्व का बिना किसी मध्यस्थता के एक संबंध स्थापित होता है। कर्ट वेलैंड (2001:14) यह तर्क देते है कि 'लोलुभावनवाद को सबसे बेहतर तरीके से हम राजनीतिक रणनीति की तरह विश्लेषित कर सकते हैं जिसे एक व्यक्तिवादी नेतृत्व सरकारी शक्तियों का प्रयोग असंगठित जनता के प्रत्यक्ष बिना किसी मध्यस्थता एवं गैर संस्थानीकृत समर्थन के साथ करता है। इस तरह के नेतृत्व के प्रकृति व्यक्तित्व एवं राणनीतियों का

अध्ययन एवं उन राजनीतिक व्यवस्थाओं द्वारा जनता को श्रेणीबद्ध करने के प्रयत्नों को हम आगे विश्लेषित करेंगें। 1990 के बाद की राजनीति वास्तविक रूप से आग्रहों एवं समर्थन की राजनीति है जिसमें जातिगत फांको के द्वारा राजनीतिक ताकत को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। सामाजिक क्षेत्रों से जाति को निकालकर राजनीतिक आधार क्षेत्रों तक लया गया। राजनीति की जमीनी सच्चाईयों में हमें यह पता चलता है कि किस प्रकार लोकलुभावनवाद राजनीति में सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यवाहियों के लिए किस प्रकार इस विद्वेष एवं जातीय क्रोध का इस्तेमाल किया गया। लोकलुभावनवाद को जैसा कि 'जनता की समान्य इच्छा की तरह परिभाषित किया जाता है जिसमें न्याय और नैतिकता के तत्व विद्यमान रहे। (शिल्स 1956:98) और यह समकालीन विमर्शो में इसे रणनीतिक तरीके से प्रतिस्थापित किया जाता है। इसशोधपत्र में कर्पूरी ठाकुर और लालू यादव की राजनीतिक कार्यवाहियों को इसी न्याय और नैतिकता के दोहरे आधारों पर विश्लेषित किया जायेगा जिसमें बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय फलक में नरेन्द्र मोदी की भी राजनीति को विश्लेषित किया जाएगा। शोधकर्त्ता 'जनसामान्य' को भी लोकलुभावन राजनीति में व्यवस्थित करेगा। अगर गरीब जनता और हाशिये पर पड़े लोगों की पक्षधारता का प्रश्न सामने है तो लोकलुभावनवाद 'वामपंथ' की तरफ ज्यादा झुका हुआ पाया जाता है जिसमें आय के पुर्नवितरण एवं जनकल्याणकारी साधनों की प्रमुखता होती है। इसके ठीक उलट धार्मिक, नृजातीयएवं नस्ल संबंधी बहुमतवाद के द्वारा दक्षिणपंथी लोकलुभावनवाद का निर्माण होता है जिसमें 'जनसामान्य' का बहुमत के ईच्छा का प्रतिरूप मान लिया जाता है। इसे और ज्यादा गहराई और विस्तार में जाकर बारीक तरीके सेविश्लेषित करने की आवश्यकता है।

इस शोध पत्रका तार्किक, आनुभाविक एवं धारणात्मक स्तर पर यह लक्ष्य है कि हम यह विश्लेषित करे कि लोकलुभावनवाद ना केवल एक राजनीतिक व्यवहार है अपितु यह एक सामाजिक एवं असंबद्ध परिघटना भी है। हम यह पाते है कि किस प्रकार नेतृत्व जनता के बिना पर उनके इच्छाओं के प्रवक्ता के रूप में कार्य करने लगता है और उनकी राजनीति जनता के ही जनआकांक्षाओं को आकार देने अनवरत प्रदशनकारी अभियानों से जुड़ जाती है जिसके द्वारा सामाजिक गतिकह को बढ़ावा दिया जाता है। यह देखना दिलचस्प है कि किस

प्रकार जातियों का सूक्ष्म प्रबंधन कर के एक नई सामाजिक सरंचना गढ़ी जाती है जिसमें जाति/वर्ग/पहचान इत्यादि से परे जाकर एक नए आकांक्षी समूह की तरह जनता रूपातंरित की जाती है। हिंदी प्रदेशो ंमें किस प्रकार एक करिश्माई नेतृत्व के आभामंडल के पास ही राष्ट्र को जीवंत अभिव्यक्ति मिलती हुए बतायाजाता है और जिसकी वैधता को चुनौति देने के हरेक प्रयास को अवैध ठहरा दिया जाता है। इस करिश्माई नेतृत्व द्वारा जातियों की नयी पुर्नसरंचना की जाती है और सामाजिक न्याय की नई व्याख्या प्रस्तुत करके पहचान की राजनीति को सपाट बनाने का कार्य किया जाता है। इन सारे प्रश्नों के अलावे एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि जातियों की सत्ता के संतृप्ति के स्तर पर पहुँच जाने के बाद सामाजिक न्याय का लोकलुभावनवादी राजनीतिमें नया अवतार किस तरह से सामने आता है? लोकलुभावनवादी नेतृत्व द्वारा परंपराओं की सीमाबद्धता और नागरिकता को एक बोझ की तरह देखा जाता है,जिसमें उदारवादी बुर्जुआवाद की प्रतिध्वनि होती है और इसमें अयथार्थ की राजनीति में यथार्थ में बदल देने की संभावना होती है। दो राज्यों मेंअतीत से लेकर वर्तमान तक की राजनीति के आधार पर लोकलुभावन राजनीति को उसकी विभिन्न गतिकी में समझने का प्रयत्न इस शोधपत्र में किया गया है।

स्थानीय क्षेत्रीय प्रारूपों में लोकलुभावन राजनीति

सामाजिक न्याय की अभिव्यक्ति कई बार पुर्नवितरण के दावों के साथ होती है जिसमे संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण एवं 'पहचान की राजनीति' को न्यायपूर्ण तरीके से आवंटित किया जाता है। पहचान की राजनीति एवं जनतांत्रिक राजव्यवस्था को प्रभावित करने की क्षमता के द्वारा जातियतावादी समूहों के पुर्नगठन और गठजोड़ों द्वारा सही ठहराया जाता है। आजादी के दो दशको के उपरांत ही समाजवादी नेताओं द्वारा उत्तर औपनिवेशिक प्रभुवर्ग द्वारा सत्ता के सकेन्द्रण और उसके फलस्वरूप उत्पन्न जनआकांक्षओं के वैध जनतांत्रिक भावनाओं के समाप्तप्राय हो जाने को चुनौति दी जाने लगी। पिछड़ी एवं वंचित जातियों के गठजोड़ द्वारा कर्पूरी ठाकुर जैसे समाजवादी नेताओं ने राजनीतिक पहचान एवं अभिकथन की एकनई कोशिश शुरू की। ऊपरी वर्ग एवं सवर्णजातियों का 'इतर' बताकर एक वैकल्पिक राजनीतिक विमर्शगढ़ा गया जिसमें अभी तक हासियेपर पड़ी वंचित एवंपिछड़ी जातियों में बिहार में एक

नई राजनीतिक आख्यान रचने की बलवती इच्छा जाग्रत हुई। राजनीतिक रूप से सफल एवं सामयिक नारे जैसे 'संसोपा ने बांधी गांठ, पिछड़े पावें सौ में साठ' और 'सौ से कम ना हजार से ज्यादा,समाजवाद का यही तकाजा' इत्यादि ने पिछड़े वर्गो के राजनीतिक परिकल्पनाओं को बेहद खूबसूरती से अभिव्यक्त किया और प्रभुवर्ग को 'इतर' की तरह निरूपित किया गया। राजनीतिक प्रतिकारिता की एक नई भाषा गढ़ते हुये बिहार के समाजवादी नेता जगदेव प्रसाद ने यह नारा दिया कि 'अगले साल भादों में, गोरे हाथ कादो में' (सवर्ण जातियों की महिलाओं को खेतों में काम करने के लिएबाध्यकरने के संदर्भ में)। विधायिका के अलावा सड़को तक में चले राजनीतिक विमर्शो में भी एक देशज लोकलुभावनवादी राजनीति के व्याकरण की उत्पति हुई जिसे आजादी के तुरंत बाद के दशकों में हम आकार लेता हुआ देखते है।

तथापि लोकलुभावन भावनाओं का अभिशासन की राजनीति में बदलाव सामाजिकराजनीति के कर्ताधर्ता लागों के लिए अभी भी एक बड़ी चुनौति है। सामाजिक वर्गीय हितों के गठबंधन बनने में अभी भी कई प्रत्यक्ष बाधायें थी जिसमें दोस्त और दुश्मन की पहचान मुश्किल थी और सरकार गठन का कार्य रणनीतिक करार्यवाही ना बनकर जोड़ तोड़कर चलने वाली व्यवस्था बन कर रह गया। इसी परिस्थिति में जैसा कि कुमार (2017 :16) तर्क देते है कि कर्पुरी ठाकुर ने लोकलुभावनवादी राजनीति के तौर तरीकों को प्रशासन में लागू करना प्रारम्भ कर दिया। पिछड़ी जातियों के नौकरियों में आरक्षण दिये जाने के कर्पुरी सूत्रके अनुसार यह आरक्षण सामाजिक न्याय एवंअधिकारिता की लोकलुभावन जनकल्याणकारी राजनीति के एकदम निकट थी। इस तरह क स्तरीकरण पर आधारित आरक्षण व्यवस्था ने पिछड़ी जातियों के लिए अपार राजनीतिक सफलता अर्जित की।

समाजवादी राजनीति परंपरा और पिछड़ी जातियों के जनांदोलनों की पृष्टभूमि में लोहिया के वैचारिक आग्रहों जिसमें पिछड़ी जातियों के क्षैतिज राजनीतिक गतिकी एवं सशक्तिकरण से राजनीतिक सामाजिक न्याय की प्राप्ति एवं लोकाचारों में व्याप्त अपर्वजना को समाप्त करने की भावना प्रबल थी' को एक तार्किक निष्पिति प्राप्त हुई। (झा, 2019) आरक्षण व्यवस्था के पुर्नव्याख्यान एवं पंचायत चुनावों मे किएगए आरक्षण के प्रयोगो के द्वारा बड़ी संख्या में पिछड़ी जातियों के लोग पंचायतों में प्रमुख बनकार आये। यह एक तरह से स्थापित सवर्ण अगड़ी

जातियों का, कर्पुरी ठाकुर के शब्दो में, पिछड़ी जातियों द्वारा विस्थापन था जिसने बिहार की राजनीति को हमेशा के लिएबदल दिया।द्विज जातियों द्वारा पंचायत से लेकर विधानसभा तक वर्चस्व तक अतीत की चीज हो गई और इसके प्रतिक्रियास्वरूप भय और क्रोध काएक मिलाजुला प्रतिरूप देकर सवर्ण जातियों ने नई परिस्थितियों पर प्रतिक्रिया दी। (ब्लेयर, 1980)

1960 और 1970 के दशक में भाषा भी इसराजनीतिक सक्रियतावाद के एक प्रमुख औजारों में एक थी जिसे सरकारी प्रयासों द्वारा सजगतापूर्वक राजनीतिक सशक्तिकरण का एक हथियार बनायागया। कर्पूरी ठाकुर ने 'अंग्रेजी को प्रभुवर्ग की भाषा घोषित कर दिया और इसे सशक्त वर्गो के वर्चस्व का प्रत्यक्ष उदाहरण बताया। मंत्री पद प्राप्त करने के बाद उन्होंने यह बात बार बार रेखांकित की कि अंग्रेजी राजकाज की भाषा होने के करण आम जन जीवन को मुश्किल और अशक्त बना रही है। जनतांत्रिक समाज के तौर तरीको से कटा हुआ आम आदमी अपने को अलगाव में पाता है जिसके कारण सरकार और जनता के बीच एक खाई सी बन गई है। (आर्यवर्त, शक संवत 2970)। लोकप्रिय सरकारी नारा जो उस समय दिया गया वह– 'अंग्रेजी में अब काम ना होगा, फिर से देश गुलाम ना होगा' और दूसरा नारा यह दियागया कि – ''राष्ट्रपति का बेटा चपरासी की संतान भंगी या बाभन हो, सबकी शिक्षा एक समान'' इत्यादि नारे में लोकप्रिय राजनीति के प्रतिमानों को शानदार तरीके से अभिव्यक्त किया था। (झा, 2019)

कुमार (2017) का मानना है कि कर्पूरी ठाकुर के शिक्षा और नौकरियों[1] में किएगए राजनीतिक पहलकदमियों से एक नए प्रकार की राजनीतिक नागरिकता की निर्मिति हुयी जिसने सरकार को अपना समर्थन दिया। सरकार और विपक्ष की भूमिकाओं में कर्पूरी ठाकुर ने हमेशा जनसंख्या, राजनीतिक गणित और तार्किकता की भंगिमाओं के साथ, राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से वंचित समूहों तक जनकल्याणकारी उपायों एवंउनके देखभाल की हमेशा चिंता की (झा, 2019)। हाशिये के लोगों की लोकलुभावनवाद राजनीति ने भविष्य की शासन करने की मनोवृतियों को गहरे से प्रभावित किया जिन्होंने 1990 के दशक में राजनीतिक

1ण कर्पूरी ठाकुर द्वारा माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी होने बाद भी उन सभी विद्यार्थियों को सफल घोषित कर दिया गया। इसे कर्पूरी ठाकुर डिविजन कहकर मजाक उड़ाया गया।

सर्वोच्चता प्राप्त की। शासन एवंलोकलुभावन नीतियों की कर्पूरीवादी व्याख्या में सामाजिक न्याय के प्रश्न को ज्यादा मजबूत एवं प्रखर तरीके से पिछड़े वर्गो के संदर्भ में लालू यादव ने अभिव्यक्त किया। जाति प्रबंधन के तौर तरीको में निष्णात लालू यादव ने क्षेत्रिय एवं स्थानीय लोकलुभावन तकनीक का देशज तरीके से विकास किया। राजनीति एवंप्रशासन में दो अल्पकालिक अपवादों (1969–71 एवं 1977–79) को छोड़कर सवर्ण जातियों का वर्चस्व बना हुआ था जिसे 'प्रभुवर्ग के नियंत्रण की संज्ञा दी गई और इसप्रक्रिया को उलट देने की जिम्मेदारी लालू यादाव ने ली। पिछड़ी जातियों के उभार ने 'सामाजिक जातियता' के उन तथाकथित लोकाचारों को चुनौती दी जिसमें पिछड़ी जातियों के अपवंचना के गुणसूत्र विद्यमान थे और अपमानजनक व्यवहार को संस्थात्मक वैधता मिली हुई थी। इसमें किसी भी परिवर्तन को आर्थिक रूप से असंभव बना दिया गया था और जातिय छुआछुत से दूर जाने के मामले में असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर था (झा एवं पुष्पेन्द्र 2015)। 1990 के देश में इन जातियता वादी सामाजिकता का राजनीतिक रूपातंरण हुआ और पिछड़ी जातियों से आने वाले समूहों ने परिश्रमपूर्वक कांग्रेस के इस वर्गीय एवं सवर्ण वर्चस्व को तोड़ा। उन्होंने 'जनसामान्य' को शासन, प्रशासन एवं नीतियों के केंद्र में लाने की वकालत की और जातियों को नई प्रगतिशील भूमिकाओं में आने के लिए बाध्य किया गया। राजनीतिक अभिव्यक्ति एवं मुख्यधारा में आने की बेचैनी की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया जिसमें सत्ताशाली प्रभुवर्ग को विस्थापित कर के खुद ही केंद्र में आने की तड़प थी।

1990 के कांग्रेस के पराजय को बिहार की राजनीतिक यात्रा में एक युगांतकारी घटना की तरह देखा गया जिसे 'सामंती जनतंत्र की खात्मे की भी घोषणा की तरह देखा गया (विट्सो 2011)। एक नई तरह की राजनीतिक भाषा विकसित हुई जिसमें जनता को आकर्षित करने वाले सारे तत्व मौजूद थे और सामाजिक न्याय का पूरा समर्पण कम से कम सैद्धांतिक स्तर पर प्रदर्शित किया गया। इसने ना केवल चुनावी सफलता के नए प्रतिमान गढ़े अपितु शासन अभिशासन की नई शब्दावली, मुहावरे, नारे अभिव्यक्तियाँ एवं प्रारूप भी सामने लाए। पहले के प्रभावाशाली समूहों की जनतांत्रिक लोकाचारों में विन्यस्त प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं को चुनौति दी गई और एक नए प्रकार की अनगढ़ सी अपरिष्कृत व्यवस्था में शासन–प्रशासन की व्यवस्था में

प्रतिस्थापित किया गया। लालू यादव ने अपने आप को वर्गीय प्रभुता की राजनीति के समांतर जननेता के रूप में स्थापित किया जिसमें स्थापित मूल्यों, वर्गीय लोकाचारों, प्रक्रियाओं और वर्चस्वी शासकीय परंपराओं को तोड़कर एक नया आख्यान रचने की राजनीतिक मेधा थी। 1990 तक शासन में परिव्यापत वर्चस्वी प्रभुवर्गीय परंपराओं को हटाकर एक जीवंत एवं लोक स्मृतियों से सीधे ऊर्जा ग्रहण करने वाले शासन सूत्रों को उसकी जगह स्थापित करने का साहस लालू यादव ने दिखाया और उसके लिए वह हमेशा मुखर भी रहे। सवर्ण वर्ग एवं जातियों के वर्चस्व को व्यवस्थित तरीके से तोड़–फोड़ कर एक नई व्यवस्था निर्मित करने की कवायद शुरू हुई जिसमें कानूनों, परंपराओं, प्रक्रियाओं को जानबूझकर या तो मनमानी व्याख्या की तरह लाया गया कई बार उसे पूरी तरह ध्वस्त कर दिया गया(झा एवं पुष्पेन्द्र 2015)। उनकी राजनीति में वर्चस्वी प्रभुवतावादी राजनीति को नकल करने की कोई बेचैनी नहीं थी और उन्होंने यह सुनिश्चित किया की वर्गीय/जातिय प्रभुताओं को पिछड़ी जातियों द्वारा चुनौति दी जाए और अपने विनम्र पृष्ठभूमि को लेकर एक गर्व का भाव बना रहे।

जाति व्यवहार एवं प्रबंधन की क्षमताओं में निष्पात लालू प्रसाद यादव ने इसके लोकलुभावनवादी संभावनाओं का भरपूर दोहन किया और अपने राजनीतिक भाषाशैली,व्यवहार एवं प्रशासनिक निर्णयों द्वारा राज्य के पूर्ववर्ती विशिष्ट सत्ताधारी समूहों को कमतर ठहराते हुए उसकी शासकीय वैधताओं को चुनौति दी। जनसामान्य को स्थानीय भाषा में संबोधित करते हुए मानवीय एवंसामाजिक पूंजी की कमी को व्याख्यायित करते हुए उनकी समृद्धशाली समूहों से परिव्याप्त दूरी को ध्यान में करते हुए लालू जी ने यह विश्वसनीय विमर्श बिहार के स्तर पर खड़ा किया कि विकास के भ्रामक वाक्जाल से सामाजिक न्याय की सच्चाईयाँ ज्यादा बेहतर है। सम्मान, अभिव्यक्ति के माध्यम प्रदान करने एवं गरिमा की अवधारणा पर आधारित यह विमर्श विकास की खोखली चितांओं से पर की चीज है और इस अवधारणा को आक्रामक तरीके से बिना किसी दुविधा के व्यवहार में लाया गया। लोकप्रिय राजनीति के उदय के साथ इसने वर्चस्व एव वंचना के पारंपरिक आधारों को रूपातंरित कर दिया जिसने प्रतिनिधिमूलक जनतंत्र जिसे 'भौगोलिक जनतंत्र' भी कहा जाता है को आंतरिक बदलाव लाने के लिएबाध्य किया (विट्सो 2009:65)।

हासिये के समाजों की चुनावी जनतंत्र एवं प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी एक स्तर पर नागरिकता की पवित्र अभिव्यक्ति है। इसने पिछड़ी जातियों के अंदर चुनावी व्यवस्थाओं द्वारा अपनी पसंद या नापसंद अभिव्यक्त करने की ना केवल ललक जगाई अपितु इसका कोई तात्कालिक फायदा नहीं होने की भी स्थिति में पिछड़ी और दलित जातियों के अंदर स्वाभिमान एवंसशक्तिकरण की भावना मजबूत की। लालू यादव ने अगड़ी जातियों के खिलाफ हो रही इसी भावनात्मक लामबंदी को आकार दिया। सत्ता में 1990 में आने के बाद पिछड़ी जातियों का आरक्षण 20 प्रतिशत सं बढ़कर 27 प्रतिशत किया गया जिसे 1992 में विधिक स्वीकार्यता दिलाई गई। मुंगेरी लाल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर अतिपिछड़ा जातियों (EBC) के हिस्सेदारी आरक्षणमें 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 14 प्रतिशत की गई। बिहार के बटँवारे के बाद (2000 के झारखंड निर्माण) यह बढ़कार 18 प्रतिशत कर दिया गया। अतिपिछड़ा समूहों तक राजनीतिक सामर्थ्य एवं भागीदारी सुनिश्चत किया गया और इन जातियों में नए राजनीतिक नेतृत्व का विकास हुआं पिछड़ी जातियों से ही ज्यादातर कुलपति एवं शैक्षणिक संस्थानों के निदेशक चुने गए जिसने इन पूर्वाग्रहग्रस्त सवर्ण वर्चस्व पर आधारित संस्थानों में चारित्रिक एवं स्वभावगत बदलाव की एक नई व्यवस्था कायम की। जातिगत आरक्षण के नियमों उल्लंघन अब एक संज्ञेय अपराध बनाया गया (विट्सो 2006:15)। इसकेअलावा ताड़ी के खरीद–बिक्री को करमुक्त करने (एक विशेष दलित जाति पासी इस व्यवसाय में पारंपरिक रूप से संलग्न रहता है),चरवाहा विद्यालयों की शुरूआत एवं अतिपिछड़ा एवंदलित समुदाय के लोगों का राज्यसभा एवंविधान परिषद में मनोनयन इसी परंपरा में अपवंचित समूहों क समावेशन की कोशिश की तरह देखा गया।

इन राजनीतिक रणनीतियों के द्वारा जातिय एवं वर्गीय वर्चस्व के परंपरागतआधारों को तोड़कर नया विधायी एवंप्रशासनिक विशिष्ट समूह की निर्मिति की गई जिसे सरकारी नीतियों में परिवर्तन ला के और प्रशासनिक कार्यक्रमों द्वारा अंजाम दिया गया। इसने अभी तक मौन रहे समूहों को अभिव्यक्त एवंमुखरता दी जिसमें लोकप्रिय संप्रभुता का विचार गति प्राप्त कर के राजनीतिक विमर्श की एक नई भाषा के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। न्याय, सम्मान एवंसरकारी संसाधनों के वितरण पर आधारित यह व्यवस्था लालू जी के राजनीतिक व्यवहार

की नई इबारत लिखने में सफल रहा। बेहद ध्यान से गढ़े गए राजनीतिक प्रत्यक्ष जुड़ाव निर्मित किया गया और वर्चस्वी समूहों के एकाधिकार को चुनौति दी गई।

राष्ट्रवादी लोकलुभावनवाद और जातिय व्यवस्था के साथ सामाजिक न्याय की पुनःकल्पना

समकालीन युरोप एवं लैटिन अमेरिका में लोकलुभावनवाद का विश्लेषण करते हुए, मड्डू और काल्टवासर (2013) ने यह पाया कि विशष्ट समूहों के समांतर लोकलुभावनवाद नेतृत्व यह परिभाषित करता है कि कौन इस 'जनसामान्य' के साथ जुड़ा है और साथ ही साथ किसी खास वैचारिक विशेषताओं के साथ इसके अभिकर्त्ताओं के जुड़ाव का भी यह विश्लेषण करता है। मंडल की राजनीति (1990) के बाद के कालक्रम में लोकलुभावनवादी वैचारिकी के विश्लेषण से हम यह पाते है कि दक्षिणपंथ के उभार तक आते आते यह लोक बनाम विशिष्ट' की द्वैधता एक नई भूमिका एवं भावभंगिमा प्राप्त कर लेती है। समावेशन एवं अपवर्जन के इस बदलते प्रतिमानों का हम किस प्रकार अध्ययन कर सकते हैं और यह किस प्रकार राजनीतिक भूमिकाओं, नारों और भावनाओं से जुड़ा हुआ है,इसका विश्लेषण हम करेंगें। अभिशासन के वास्तविक राजनीतिक आधारों से जुड़ावबनाकर यह विभिन्न जातियों एवंसमूहों तक किस प्रकार नई राजनीतिक संभावनाएँ निर्मित करता है, यह भी हमारे विश्लेषण का विषय है।

अपने सैद्धांतिकी एवं व्यवहार में, लोकलुभावनवाद एकसमरूप एवं गुणाग्रही जनता को विशिष्ट समूहों के बरक्श खड़ा करता है। इस विशिष्ट समूह का मूल उद्देश्ययही आमजन को अधिकार विहीन बनाने एवं मूल्यों, अभिप्रेरणाओं, समृद्धि, अस्मिता एवं अभिव्यक्ति के समस्त प्रारूपों से खतरनाक तरीके सेदूर रखने पर टिकी है। यह व्यवस्था जाति एवं समुदय की आधारभूत चितांओं को लोकप्रिय विमर्श का हिस्सा बनाती है। सामाजिक न्याय का विमर्श भी एक सीमा के बाद ऊर्जाहीन हो जाता है और पिछड़ी जातियों के अंदर एक आंतरिक दरार उभार आती है। मुसलमनों को अनवरत तरीके से 'इतर' की तरह प्रदर्शित करने से 1990 एवं 2000 के दशको में अभी तक सामाजिक न्याय के लाभार्थी समूहों में एक नए प्रकार की वैचारिकता उभार लेने लगी जिसमेंइस फलोत्पादों को नएतरीके से व्याख्यायित करने की बेचैनी थी। इतिहास में बिना बहुत खंगाले, अगर हम 1980 के दशक के अंत में राजनीतिक

विकास को देखें तो हम पाते है कि हिंदू बहूमत और मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बीच एक नए तरह के तनाव बिदुंओं को उभार दिया गया जिसमें केन्द्र राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद विवाद था। इसी के समांतर विशिष्ट पिछड़ा वर्ग समूह अब हिंदू धार्मिक पहचान के अंदर अपनी अस्मिताओं की तलाश में जुट गया। जातियों के क्रमिक राजनीतिकरण और दूसरी विशेषताओं के हिंदू मुख्यधारा के अंदर ही समावेशी कर लिए जाने के कारण दक्षिणपंथ के उभार को गति मिलती चली गई। यह एक झटके से ना होकर क्रमिक तरीके से सफल होता गया। मध्य–वाम राजनीतिक समूहों और पिछड़े वर्ग के समाजवादी नेतृत्व ने मंडल की राजनीति के द्वारा इसदक्षिणपंथीउभार को मापने की कोशिश की। यह लोकलुभावनवादी राजनीति का एक ब्रह्मास्त्र था जिसने सवर्णहिंदू जातियों और पिछड़े वर्ग की राजनीतिक चेतना में एक फांक पैदा कर दी और उसके अंतर्विरोधों को उजागर कर दिया। पूर्व के विश्लेषण में हमनें यह देखने की कोशिश की है कि किस प्रकार इस परिघटना के बाद राजनीति में परिर्वतन आएऔर क्षेत्रीय विषमताओं पर आधारित पिछड़े राजनीतिक समूहों ने नई राजनीतिक भाषा अर्जित की और स्थानीयता का पुट लिए हुई राजनीति प्रारंभ की। इस प्रक्रिया में आई शिथिलता के बाद,दक्षिणपंथी लोकलुभावनवाद ने तात्कालिक अतीत के उदाहरणों से सीखा और मौलिक किस्म की राजनीतिक अभियांत्रिकी का प्रदर्शन किया। राजनीति के तौर तरीकों को नए तरीके से बदला गया और समावेशन एवंअपवर्जन के साझे उपक्रम से इस दक्षिणपंथी उभार को आधुनिकता एवं परंपरा के साथ प्रारंभ किया गया।

इसके अलावा भाजपा की अवधारणा संवाद रणनीति ने भीलोकलुभावनवादी दक्षिणपंथी को गतिकी एवं ऊर्जा प्रदान की। इस संवाद शैली की आबादी के विशिष्ट समूहों को ध्यान में रखते हुये तैयार किया गया था। इस प्रक्रिया के विश्लेषण में मैक्डॉनल एवंकैबरेरा (2019) ने पाया की भाजपा की रणनीति संवाद के विशिष्ट उपक्रम और नरेन्द्र मोदी के आक्रामक प्रचार शैली के ऊपर आधारित थी। नव उदारवादी आर्थिक सफलता के 'गुजरात मॉडल' के आधार पर एक विशिष्ट प्रचार रणनीति बनाई गई जिसमें नयी सामाजिक मीडिया तकनीकों का अधिकतम प्रयोग किया गया और नरेन्द्र मोदी ने अपने को देश के नेतृत्व करने के लिए एक मजबूत एवं सक्षम नेता के रूप में प्रचारित–प्रसारित किया। (उपरोक्तः 486)। यहाँ पर हांलाकि

सिर्फ संवादात्मक तकनीक को श्रेय देना समीचीन नहीं होगा। एक संजोग से बने प्रधानमंत्री (जैसा कि मीडिया में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को कहा गया) जिसके पास चुनावी राजनीतिक चातुर्य का अपेक्षाकृत अभाव था, की तुलना में मोदी ने अपने को सामान्य पृष्ठभूमि से आया हुआ एक ईमानदार, प्रतिबद्ध जननेता बताया जिसे कांग्रेस के विशिष्ट वर्गों के भ्रष्टाचार को खत्म करने का जिम्मा जनता से प्राप्त करना था। यह, मोदी के अनुसार, जमीनी सच्चाईयों से अपनी ऊर्जा ग्रहण करने वाले लोगों और वंशानुगत विशेषाधिकारों के बीच संघर्ष था जिसे उन्होंने 'नामदार', 'खासदार', इत्यादि संज्ञाओं से विभूषित किया और उनके समांतर,वह 'कामदार' राजनीतिक कार्यकर्त्ता हैं। वह 'शहजादे' के विरूद्ध 'चौकीदार' और 'चाय वाले' की लड़ाई थी जिसे बड़े स्तर पर प्रचारित किया। 'विशिष्ट बनाम आम' की इस लड़ाई में जाति–समुदाय के चौहदी को तोड़कर राष्ट्रिय स्वयसेवक संघ (RSS) के समर्पित कार्यकर्त्ताओं ने एक सार्वदेशिक विमर्श रचा जिसे जनसमर्थन मिलता चला गया।

विश्लेषकों ने यह बात रेखांकित की है कि लोकलुभावनवाद को समग्र तरीके से समझने के लिए इसके पूर्व कोई विशिष्ट विश्लेषण लगाना अनिवार्य है। जैसे ही इसमें कोई प्राक् विशेषण जोड़ा जाता है वैसे ही एक प्रकार का संशय एवं भय का वातावरण बन जाता है जिसे सत्ता एवं प्राधिकार के बरक्श सायास तरीके से विकसित किया जाता है। लोगों के जन समर्थन को लोकलुभावनवाद का अनिवार्य हिस्सा माना जाता है। केन्द्रिय तत्व के रूप में इस संदेश के अंतर्गत यह बात रेखांकित की जाती है कि राजनीति में लोकप्रिय नियंत्रण को नकारा जाता है और उसे फिर से बहाल करना है (क्रिसी 2014:363)।इस संदेश को जनता के मनोमस्तिषक में भाजपा ने सफलतापूर्वक अध्यारोपित किया। पिछले दशक में तरलता, दुविधा, संशयग्रस्तता एवं बहुमुखी संवाद के द्वारा अखिल भारतीयस्तर पर लघु स्तर पर इसवैचारिकी को भ्रष्टाचार के विरूद्ध लागू किया गयाऔर सोशल मीडिया के द्वारा यह माहौल बनाया गया कि राजनीति पर लोकप्रिय जनसत्ता का नियंत्रण खत्म हो गया है जिसे फिर से पुर्नस्थापित करना है। 2014 के चुनाव के ठीक पहले की घटनाओं ने यह बात रेखांकित की कि किसप्रकार 'बौद्धिकता' से ओत–प्रोत विशिष्ट समूहों ने अपनी वैधता खो दी है और प्रधानमंत्री के पद को भी अप्रत्यक्ष नियंत्रण द्वारा एक राजनीतिक वेश द्वारा चलाया जा रहा है। यह नियंत्रण दूर करके लोकप्रिय

लोकशाही को वापस लाने का प्रयास भाजपा द्वारा करने का प्रचार–प्रसार भाजपा द्वारा जोर शोर से किया गया और अभिनव सामाजिक अभियांत्रिकी और छवि निर्माण की एकनई प्रयोगशील व्यवस्था बनाई गई। लोकलुभावनवाद को समान्यताया एक खुले सम्प्रत्यय की तरह देखा जाता है जिसका कोई ठोस आकार नहीं है, जिसमें कोई तारम्तया नहीं पायी जाती हो और जिसमें लोगों को भावनात्मक रूप से प्रभावित करने की क्षमता हो और जिसमें समावेशी मुद्दे के साथ वैचारिकता के आग्रहों से मुक्त राजनीति करने की सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती हो (अल्बर्टाडजी एवं मैक्डॉनल : 2008)।

नरेन्द्र मोदी ने अपने चुनावी अभियानों में चुस्त जुमलों और शब्दावलियों का बेहद कुशलता सेप्रयोग किया और अपनी छवि को कर्मठ राजनेता की तरह पेश किया जिसके पास विकास, हिंदू राष्ट्रवाद,राष्ट्रिय नीति के नए प्रारूपों और सत्ता संस्थानों के साथ काम करने जैसे बड़े मुद्दो का तार्किक परिणती तक पहुँचाने का मुद्दा है जैफ्रॉलो (2015)। इस संदर्भ में यह विश्लेषित करते है कि गुजरात में प्राप्त किएगए मोदी के राजनीति–आर्थिक सफलता को राष्ट्रीय स्तर पर जोरशोर से प्रकाशित एवं प्रचारित किया गया जिसमें व्यक्ति केंद्रित राजनीति की परकाष्ठा थी। उनकी प्रचार छवि में एक मर्दाना वीरोचित कर्मठ प्रखर राष्ट्रवादी की रचना की गई जिसे देश के लिएबड़ा रचने और सोचने के लिए 60 महिने चाहिए था। एकचतुर सुजान लोकलुभावनवादी की तरह मोदी ने जनता के साथ प्रत्यक्ष भावनात्मक संवाद शैली विकसित की जिसे संस्थागत लोकाचारों में ना उलझाकर जनता का प्रत्यक्ष कल्याण करने के लिएसमर्पित बताया गया। उनका तथाकथित विशेषाधिकारों से आमने सामने का संघर्ष एकनए प्रकार के विमर्श रचता है जिसमें उदारवादी समूहों (कलाकरों,पक्षकारों, शिक्षाविदों) को सायास तरीके से राष्ट्रविरोधी सिद्ध करके विध्नसंतोषी करार दियाजाता है जिन्हें भारत की प्रगति से दिक्कत होती है (रंजन,2018)।

इस राजनीति को औरविश्लेषित करते हुए जेफ्रोलो (2015) बताते है कि मोदी ने अपनी अति सामान्य पृष्टभूमि को नेहरू/गाँधी परिवार के बरक्श जानबूझकर इस प्रकार प्रचारित किया कि वह ना सिर्फ वर्गीय अपितु जातीय ढ़ग से भी 'जनसामान्य' का विशिष्ट तबको के विरूद्ध प्रतिरोध जैसा लगे। मोदी ने जातिय सच्चाईयों का भी भरपूर दोहन किया और संघ की

वैचारिकी में दीक्षित होने के बावजुद भी मोदी ने उन जगहो ंपर अपने पिछड़ी जाति होने का भरपूर हवाला दिया जहाँ पर यह चुनावी रूप से महत्वपूर्ण था। बिहार के मुजफ्फरपुर में अपनी पिछड़ी जाति की पृष्ठभूमि का जिक्र करते हुए उन्होंने बताया की अगला दशक भारत में इन्हीं पिछड़ी जातियों के नाम होने जा रहा है। (पलाशिकर और सूरी 2017 : 290)। उन्होंने बेहद बारीकी एवं सजगता से अभी तक के वर्चस्वी विचार 'सामाजिक न्याय' के विचार का दंभ भरने वाली राजनीतिक दलों का खंडन किया जिसमें किसी एक विशेष मजबूत पिछड़े वर्ग के ही एकाधिकार पर आधारित राजनीतिक संस्कृति विकसित हुई थी। इसमें खेल के नियम बदल डाले और बाकि राजनीतिक समूहों को भी राजनीतिक अंकगणित के जातिय संरचना में उतरने के लिए बाध्य कर दिया (गुप्ता 2019: 24)।यह एकविशिष्ट जातीय समूह के समांतर बाकी सभी छिटके जातियसमूह का सामूहिक आख्यान गढ़ने जैसा था। यह जातिय अंकगणित के नए नियम बनाने जैसा था जिसमें मोदी ने सफलतापूर्वक 2019 के चुनावों में उत्तर प्रदेश के विपक्षी गठबंधन पर जातीय राजनीति का आरोप लगाया वहीं मोदी ने देश के समस्त गरीब जनता की एकमात्र जाति 'गरीबी' का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रधानसेवक के रूप में अपने आप को बताया।

हिंदी प्रदेशो में इस प्रकार केराजनीतिक व्यवहार से दो समांतर धाराओं का विकास हम देख सकते है। कुशलतापूर्वक चलाएगए संवादात्मक प्रचार शैली ने बड़े स्तर पर, जातियों के प्राथमिक अस्मिताओं के आकर्षण को कम कर दिया और चुनावी रूप से सवर्ण जातियों को 25 वर्ष के बाद पिछड़ी जातियों के संख्यात्म्क वर्चस्व को चुनौती देने का मौका मिला। जातियों के नाम पर खेले जा रहे चुनावी खेल को मोदी ने चुनौती दी और आर्थिक आधारों पर राजव्यवस्था को पुर्न संयोजित किया करने की वकालत की। चुनावी सभाओं में हिंदू वर्ण व्यवस्था में व्याप्त जातिगत विभेद एवं शोषण को जान बूझकर नहीं उठाया गया। दलित, पिछड़ी जातियों के सामाजिक न्यायपर आधारित विमर्श को जाति केन्द्रित होने को मोदी द्वारा प्रत्यक्ष रूप से आलोचना का विषय बनायागया जिसके फलस्वरूप आरक्षण जैसेमुद्दे कहीं पीछे छूट गये। यह सवर्ण जातियों के लिए भावनात्मक जुड़ाव का एक प्रमुख मुद्दाबन गया और इसने एक प्रकार से सवर्ण जातियों के लिए उम्मीद की नई किरण जगाई। वहीं दूसरी तरफ

जमीनी स्तर पर एक सुनियोजित जाति प्रबंधन अभियान संघ एवं भाजपा द्वारा चलायागया जिसे संगठन स्तर पर विभिन्न चुनावी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक चलाया गया।इसी व्यवस्था के द्वारा सूक्ष्मता से लोकसभा क्षेत्रों का प्रबंधन किया गया और नई चुनौतियां बनाकर चुनावी मतदान का ज्यादातर हिस्सा अपने पक्ष में मोड़ लिया गया। समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी के ज्यादातर आधारभूत मतदाताओं को छोड़कर उनसे नाराज एवं मोहभंग के शिकार सामाजिक समूहों द्वारा उत्तर प्रदेश एवंराष्ट्रीयजनतादल एवं कांग्रेस द्वारा छिटके हुए मतदाताओं ने बिहार के स्तर पर भाजपा का दामन थामा। इसने यादवों, जाटवों और मुसलमानों को फिर से राजनीतिक रूप से हासिये पर धकेल दिया। जातिके पूर्वाग्रहों से दूर होने का दावा करने के बावजूद अपने आधारभूत समर्थक समूह उपरी सवर्ण जातियों एवं व्यापारी वर्ग के स्पष्ट समर्थन पर टिकी यह रणनीति कारगार रही। वर्चस्वी पिछड़ी जातियों के राजनीतिक एकाधिकारिता से नाराज अन्य सामाजिक समूहों ने भाजपा के पीछे अपनी राजनीतिक संभावनाएं तलाशी। मंडल राजनीति के उभार और पिछड़ा मुस्लिम गठजोड़ के कारण बिहार–उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के समर्थक सवर्ण जातियों ने अब भाजपा का समर्थन करना प्रारंभ कर दिया। यह और कई अन्य महत्वपूर्ण कारणों के अलावा भाजपा की इस बहुप्रचारित रणनीति की वजह से संभव हो पाया कि कांग्रेस अब सवर्ण विरोधी पिछड़ी जातियों के साथ अपना राजनीतिक भविष्य देखरही है जिसकी स्वाभाविक परिणति सवर्ण जातियों के भाजपा के पक्ष में लामबंद हो जाने में हुई। यह सिर्फ विपक्षी दलों को चुनौति देने तक सीमित नहीं रही अपितु 2019 के चुनावों के ठीक पहले आर्थिक रूप से कमतर सवर्ण जातियों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान लागू कर दियागया। आरक्षण आधारित व्यवस्था को अभिशासन के लोकलुभावनरणनीति के रूप में प्रयोग किया गया। इस तरह आर्थिक रूप से सक्षम समूहों के बरक्श 'जनसामान्य' का एकनया लोकप्रिय विमर्श गढ़ा गया जिसमें सवर्ण पर निर्धन हिंदू, गैर वर्चस्वी पिछड़े समूह और गैरवर्चस्वी दलित समूहों की भागीदारी सुनिश्चित कर के जीतने योग्य सामाजिक आधार बना लिया गया। यादव और जाटव जैसी दो मजबूत एवं राजनीतिक–संख्यात्मक रूप से मुखर जातियों के समानान्तर एक बहुजातिय गठबंधन बनाने का यह प्रयोग सफल रहा अैर इसने सामाजिक न्याय के एक व्याकरण की रचना की।

पिछड़ी जातियों के मलाईदार एवं प्रभावी तबकों के सामने उनकी तुलना में वंचित एवं पिछड़े समूहों का एकबड़ा गठजोड़ भाजपा ने तैयार किया। सरकारी नौकरियों एवं शैक्षणिक जगहों पर अपेक्षाकृत कमतर उपस्थिति का मुद्दा बनाकर इस संघर्ष को पिछड़ा बनाम अति पिछड़ा बना दिया गया जिसमें गहरे अंर्तविरोध तो थे ही इसके साथ इन जातियों तक राज्याश्रय की भी पहुँच अभी तक नहीं बन पाई थी। 2014 के आम चुनाव, 2017 के विधानसभा वुनाव और 2019 के लोकसभा चुनाव में यह रणनीति बेहद कारगर रही। इन तीन सामाजिक समूहों (यादव, जाट एवं मुसलमान) के 40 प्रतिशत के करीब होने वाले सामाजिक संख्याबल की तुलना में बाकी 60 प्रतिशत का विमर्श गढ़ागया जिसमें सवर्ण जातियाँ,गैर यादव पिछड़ा समूह और गैर जाटव दलित समूह का साझा गठबंधन बनाया गया। इन सामाजिक समूहों को संगठन में उचित प्रतिनिधित्व दिया गया और ऊपरी जातियों के बिना छेड़ छाड़ किए संगठन का विस्तार कर के इन वंचित समूहों को भी भागीदारी दी गई। राजनीतिक प्रधिनित्व के अलावे जनहितैषी संसाधनों में भी इस समूह की हिस्सेदारी बढ़ाई गयी (कुमारः 2019)। धानुक, मौर्य, शाक्य, घोषी, खटिक, राजभर,पासी, पटेल इत्यादि जातियों के सामुहिक संख्याबल ने इन समूहों को एक बड़ी राजनीतिक पहचान दी। इसके अलावा समग्र हिंदूत्व की विचारधारा ने इन पिछड़ी एवं दलित जातियों के हिंदू सवर्ण व्यवस्था के अंदर ही अपना भविष्य तलाशने की जरूरत को रेखांकित किया (नारायण : 2019)। हिंदुत्वके नए नायकों की तलाश में इन जातीय समूहों के महानायकोंऔर पुरखों के इर्द गिर्द एक आभा मंडल निर्मित किया गया जिसके लिए सैद्धांतिक उपादान भाजपा और संघ के पास पहले से मौजूद थे। यह एक प्रकार से उदारवादी राजनीति के अवसान की भी घोषणा भी थी जिसके कारण इन स्थानीय परंपराओं,संगीत कला अभिव्यक्रियों,मिथक एवं स्मृतियों के नायको को एक प्रतीक शास्त्र में बदल दिया गया। यह कहना ना होगा की समग्र हिंदुत्व के इस कड़े अभियान में भाजपा ने अपना मूलभूत राष्ट्रवादी चरित्र अक्षुण्ण रखा। कश्मीर से 370 हटाने, समान नागरिक संहिता पर जोर देना, राम मंदिर जैसे मुद्दे अभी तक के विचार विमर्श के दौरान हिंदुओं के वर्चस्वी समूह तक अपनी पहचान बनाने का सार्थक प्रयत्न कर रही थी।

अलग अलग तरह की राणनीति द्वारा भाजपा अपने सामाजिक आधार पर तेजी सेकाम कर रही थी और जैसाकी वानखेड़े (2018) यह तर्क भी देते है कि जाति अभी भी दुश्मनी,लघु दृष्टि एवं अविश्वास के वातावरण को निर्मित करने का कार्य करती है। यह बड़े राजनीतिक सहकारों के बिखराव के समर्थक होने की राजनीति है ताकि 'अन्य पिछड़े वर्ग' और 'दलित' की एक सर्वमान्य एवं स्वीकृत श्रेणी नहीं बनने पाये। इस अभूतपूर्व जातीय गतिकी को समझने एवं व्यवहार में उजागर करते हुए इन जातीय समूहो के द्वारा सुझाए गएउपायों को मानते हुए भाजपा ने एक नए विमर्श की शुरूआत की। हिंदुत्व की राजनीति के भविष्य के रूप में कुर्मी, जाटव, मौर्य, लोध, पासी, भर–राजभर, खटिक इत्यादि जातियों के उभार से एक नए राजनीतिक विमर्श की रचाना हुई(उपरोक्त : 2018)।

यहाँ पर इस बात को भी ध्यान में रखा जाए कि विगत दो दशकों में पिछड़ी जातियों में भी विभिन्नता एवं बिखराव/अलगाव की भावना घर कर गई है। जून 28, 2010 को उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह ने एकसामाजिक न्याय संबंधी विशिष्ट समूह के गठन की घोषणा की जिसमें पिछड़ा वर्ग के 27 प्रतिशत आरक्षण को फिर से वितरणात्मक न्याय के तहत समायोजित कर इसे समता पर आधारित व्यवस्था में परिणत करने का लक्ष्य रखा गया। इस आयोग द्वारा दिये प्रतिवेदन को यथार्थ में लागू नहीं किया जा सका क्योंकि इसमें विभिन्न जातियों की उपश्रेणी बनाकर आरक्षण देने की सिफारिशकी गई थी। भाजपा ने इस बहस को जिंदारखते हुए अभी भी पिछड़ा और अति पिछड़ा का वर्गीकरण करने की हिमायत की है। यह इन संख्यात्मक वर्चस्व के समानांतर सवर्ण और सामजिक रूप से प्रभावी लेकिन राजनीतिक रूप से हाशिये पर पड़े समूहों का एक गठजोड़ बनाने की सायास रणनीति थी। (झा : 2017)।

इस तरह से हम पाते हैं कि भाजपा का राजनीतिक व्यवहार इन जातियों के बरक्श जोछूट गई या राजनीतिक महत्व के पैमाने पर दरकिनार कर दी गई जातियाँ हैं,उनके एकबड़े गठजोड़ पर टिका हुआ है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गुर्जर, त्यागी, ब्राह्मण, सैनी, कश्यप आदि जातियों को मुख्यधारा की जाट, मुसलमान, दलित इत्यादि समुदायों की तुलना में अपेक्षाकृत ज्यादा महत्व देकर एक नए राजनीतिक महत्व का आयाम रचागया। इस तरह के कम मुखर पर सामुहिक रूप से संख्यात्मक महत्व संघ के चिंतन के अनुसार ही मुसलमानों को

राजनीतिक रूप से अछूत की तरह माना गया लेकिन वर्चस्वशाली पिछड़ी जाति यादव को पूरी तरह से दरकिनार नहीं किया।गुप्ता के (2019) 'साझे विकर्षण' का सिंद्धात पेश कर के इन जातियों में आपसी अदावत के सूत्र तलाशते हैं जिसके आधार पर भाजपा ने एक प्रतियोगात्मक चुनावी पैमाना बनाकर इस अंर्तविरोधों को सफलतापूर्वक अपने हित में साधा। राजनीतिक रूप से यह प्रयोग विपरीत स्वभाव के लोगों और समूहों को एक साथ लेकर चलने में सफल सिद्ध हुआ। राष्ट्रवाद, विकासएवंनरेन्द्र मोदी केसक्षम कर्मठ व्यक्तित्व केइर्द गिर्द बुने गए इस छवि निर्माण प्रबंधन ने इस विरोधी जातियों को एकमंचपर खड़ा कर दिया। इसकी एकबड़ी वजह यह थी भाजपा ने इन जातियों में नेतृत्व विकास के लिए अपार ऊर्जा एवं संसधान खर्च किएथे। इसके परिणामस्वरूप एकगैर–विशिष्ट वर्गीय, स्थानीय नृेतत्व उभरकर सामने आया जिसके पास मोदी के नेतृत्व में काम करने की ललक थी। (गुर्जर 2019)

हमने यह देखा की किस प्रकार दक्षिणपंथी लोकलुभावनवाद आरक्षण की व्यवस्था के अंदर और बाहर व्याप्त चिंताओ और शिकायतों को नियोजित करके अपना कार्य करता है। इस तरह के विकास से जातिगत वर्चस्व एवं समर्पण कर डालने वाली परिघटनााओं मेंवृद्धि होती है। दक्षिणपंथी राजनीति के इस परिघटना पर चेंटल मूफे (2017 : 72) यह तर्क देते है कि – 'दक्षिणपंथी लोकलुभावनवाद के उभार के प्रति दक्षिणपंथीराजनीतिकदलो का रूख कई बार समस्याओं की तीव्रता को और बढ़ा ही देता है। सामाजिक सद्भाव, भातृत्व एवं सामुदायिक भावनाओं को लेकर दक्षिणपंथी राजनीति के पास वैकल्पिक कार्ययोजनाएँ होती है जिसमें निचले तबको के लिए एक अग्रगामी गतिशीलता के साथ वर्चस्वी समूहों के लिएसहानुभूति की भावना होती है क्योंकि उनकी सामाजिक शक्ति क्रमशः कम होती जाती है। प्रशांत झा (2017 :178)ने इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए यह कहते हैं कि – ''यह एक शानदार रणनीति थी जिसमें हिंदुओं का एक साथ ही रिक्तता के भाव से भरागया क्योंकि उनके अधिकारों की प्राप्ति नहीं हो रही है और मुसलमानों के विरूद्ध एकआलोचनात्मक दृष्टि विकसित की गई क्योंकि उनको तथाकथितधर्मनिरपेक्ष समुदाय द्वारा अनवरत पोषित– प्रोत्साहित करके पुचकारने का काम किया गया है। यह बाकी सभी राजनीतिक जमात का धर्म के आधार पर विशिष्ट

हित समूहों की वकालत करने वाले नागरिकता और निष्पक्ष निवैर राज्य के नाम पर यह विभिन्न समुदायों को विभाजित कर डालने का प्रत्यक्ष उदाहरण था।''

इस संदर्भ में लोकलुभावनवादी राजनीति के कर्त्ताधर्ता अपने भावनात्मक संदेश एवं सत्ता समीकरणों के हिसाब से दुविधा में पड़े मतदाताओं तक पहुँचाने के लिए प्रयत्न करते हैं। इस तरह के विमर्शोको तब और ज्यादा मजबूती मिलती है जब प्रतिष्ठान एवंव्यवस्थाविरोधी विचारों को उन तथाकथित 'ठग लिए गए लोगों' तक बेचा जाता है क्योंकि जनकल्याणकारी राज्य के लाभांशों कोबहुसंस्कृतिवाद के नाम पर उन पारंपरिक विशिष्ट समूहों तक ही सीमित कर दियाजाता है। यह एकप्रकार से चुनिंदा समुहों तक ही सारे लाभाशों कोबेच डालने का मामला बताया जाता है (इंगलहार्ट :2016)। मोदी जी की प्रामणिकताको स्वतः सिद्धकरने हेतु इसआख्यान को जोर शोर से प्रचारित किया गया कि वह आम आदमी के प्रतिनिधि चेहरे है जिसे व्यवस्था केअंदर जाकर भ्रष्टाचारियों से दो–दो हाथ करने है।

जैसा कि राजा (2018) तर्क देते है कि मोदी जी के रणनीतिक रूप से सफल प्रबंधन केपीछे प्रतीको के कुशलतापूर्वक इस्तेमाल एवंउनकी रचना कर डालने की भी चातुर्य का अपार योगदान है। उन्होंने गरीबों और अमीरों के बीच अपने आने को एक संतुलनकर्त्ता की तरह दिखाया, सपनीली दुनिया के यथार्थ के बीच एक पुल की तरह जिसमें कई तरह के द्वैधताओं को साध लेने का अद्भुत कौशल हो। सभी तरह के जातीय, वर्गीय, समावेशी सपनों को एक साथ साधे रखने की साझा जगह मोदी में संभव है, यह संदेश देने में वह कामयाब रहे। आधुनिकता विकास एवं नवउदारवरदी राजनीति के साझे उपक्रम से बनी यह लोकलुभावनवादी सांस्कृतिक राजनीति राष्ट्रवादी और नवउदारवादी मतदाताओं के साझा हितों और चितांओं को एक साथ आकार देती है (किनवालः 2019) 'नये भारत' के निर्माण के संस्थापक के रूप में, प्रगति के प्रति समर्पित एवं बाजार एवं तरक्की के लिए अनवरत मेहनत करने वाले भ्रष्टाचार विरोधी नेता के रूप में बनाई गई यह छवि मतदाताओं को आकर्षित करती है। एक संयोजित एवं लोकलुभावनवादी राजनीति के आख्यान के तौर पर मोदी ने एक वीरोचित मर्दवादी भारतीय राज्य की परिकल्पना गढ़ी हैजो वैश्विक एवं स्थानीय स्तर पर आत्मविश्वास से लबरेज है और अपना बचाव कर सकता है। एक स्तर पर मोदी की नीतियाँ जनतांत्रिकरण को बढ़ावा

देती है क्योंकि अंतहीन विविधताओं के बीच एक नए प्रकार की एकात्मकता उत्पन्न हो रही है, यह सफल होगी की नहीं कहा नहीं जा सकता लेकिन लैक्लाऊ केशब्दों में यह ''सामाजिक पहचानों की राजनीतिक अभिव्यक्तियाँ है जो एक साझा पुल बनाने का कार्यकरती है (लैक्लाऊ 2007: 154)।समाज को दो अंर्तविरोधी समूहों में बाँटकर, लोकलुभावनवादी विमर्श एक 'जनसामान्य' का गठन करता है जिसका समुदाय के सभी सदस्यों के कुल योग की तुलना में कमतर ही महत्व है लेकिन इस समूह की यह प्रबल आकांक्षा होती है कि इसे एकमात्र वैध सम्मुचय के रूप में समझा जाये। (लैक्लाऊ 2005 : 81)। इस समग्रता से कमतर होने की भावना का ही दोहन दक्षिपंथी राजनीति द्वारा कियाजाता है और जिसमें वैधता से प्राप्त समग्र के लिएराजनीतिक दावेदारी की जाती है। यह बात दीगर है कि इन समूहों की कार्यपद्धियाँ तौर तरीके मूल विचार एवं अभिव्यक्तियों में अभी भी एक प्रकार की दुर्बोधतापायी जाती है जिसे सही तरीके से व्यक्त करना मुश्किल कार्य है।

निष्कर्ष

इस लेख के माध्यम से शोधकर्त्ता ने यह तर्क दिया है किवाम/समाजवादी या दक्षिणपंथ राष्ट्रवादी प्रकार के लोकलुभावनवादी राजनीति में जातीय प्रबंधन एवं सामाजिक गठबंधनों का जबरदस्त महत्व है और इसके बिना राजनीतिक कार्यकलाप नहीं हो सकते इसे सामाजिक न्याय के खांचे में लाया जाता है जिसमें राजनीतिक पहलकदमियों एवं गतिशीलता को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस तरह की राजनीति का बड़े पैमाने पर समर्थन एवं स्वीकार्यता मिलने की बड़ी वजह यह है कि इसमें भावनाओं को उभारा जाता है और कहीं ना कहीं बीज रूप में यह चिंतन समाज में पहले से विद्यमान रहता है। विभिन्न तरह की शिकायतों और अपवंचनाओं को लोलुभावनवाद एकसाझा मंच दे देता है और सामाजिक रूप से पीड़ीत समूहों तक आशा की नई लौ बनकर सामने आता है। दक्षिणपंथी एवं वामपंथी राजनीति जिसका नेतृत्व मोदी एवं भाजपा और कर्पूरी–लालू क्रमशः करते हैं दोनो तरह के वैचारिक आख्यानों में लैक्लाऊ के चिंतन के अनुरूप ये सब चीजे साझा मिलती है– पहला– यथास्थितिवाद के विरूद्ध एक प्रकार की दुश्मनी का भाव, दूसरा– पारंपरिक राजनीतिक समूह के प्रति अविश्वास, तीसरा– जनसामान्य

तक पहुँच बनाने की कोशिश ना की किसी खास वर्ग या जाति तक ही सीमित रहने की मजबूरी और चौथा– बौद्धिक और बौद्धिकतावाद की विरोधी स्वर (लैक्लाऊः 1979)। 'स्वयं' का प्रदर्शन एक आम आदमी के रूप में करके एवं विनम्र पृष्ठभूमि से आया हुआ नेतृत्व जिसे अंग्रेजीदां लोगो की भाषा एवं व्यवस्था से एक नैतिक किस्म की दूरी एवं दिक्कत हो; ऐसा नेतृत्व अपने राजनीतिक व्यवहार में आम आदमी के हितों के संरक्षक के रूप में दिखाया जाता है। दोनों ही उदारवादी पारंपरिक तौर तरीकों से राजनीति ना करके एक गैर पारंपरिक व्यक्ति केंद्रित राजनीति पर जोर देते है जहाँ संस्थानों को गैर पारंपरिक तरीके से चलाया जाता है। राजनीतिक एवं नीतिगत मामलो में लोकलुभावनवादी नेतृत्व का व्यवहार राजनीतिक व्यवहार के ही समानार्थी बन जाता है। जनतंत्र की प्रक्रियात्मक सफलताओं के लिए लोकलुभावनवाद एक अनिवार्य परिघटना बन जाती है जिसमें क्षैतिज एवं उर्ध्वाधर विस्तार की अपार संभावनाएं है और यह समावेशी विमर्शों पर आधारित होती है। असुरक्षा, शिकायतों एवं चिंताओं के समान धरातल पर दोनों समूह भावनात्मक अपील के द्वारा अपना सामाजिक आधारा तैयार करते हैं जिसमें राजनीतिक दलों द्वारा प्रतिपक्ष एवं प्रतिगतिकी की प्रक्रिया अपनाई जाती है। गैर निर्वाचित सर्वत्तावादियों की तरह ना होकर लोकलुभावनवादी नेतृत्व द्वारा अपनी सत्ता को चुनावी वैधता प्रदान की जाती है ताकि जनता की अंतरतम भावनाओं के सच्चे एकमात्र वैध प्रतिनिधि के रूप में अपनी दावेदारी को मजबूत किया जा सके। यद्यपि यह भी सत्य है कि ऐसी राजनीति के मूल में एक प्रकार की द्वियित्तता की स्थिति पाई जाती है, एक नैतिक विभ्रम पर आधारित यह व्यवस्था सभी चाजों को अर्थवेत्ता देने की कोशिश की जाती है जो अपने स्वभाव में ही अनिश्चित, परिर्वतनीय, क्षणभंगुर एवं बिना किसी ठोस आकार की हों।

संदर्भ सूची

अल्बरटैजी डी., मैक्डोनल डी. (2008). इंट्रोडक्शनः द सेप्टर एण्ड द स्पेक्टर. इन : अल्बरटैजीडी. मैक्डोनल डी. (संपादित) ट्वेन्टी फर्स्ट सेंचुरी पाप्युलिज्म. पैलग्रेव मैकमिलन, लंदन

आर्यावर्त, (25 दिसम्बर 1970).पटना

ब्लेयर. हैरी डब्लयू (1980). ''राइजिंग कुल्कस एण्ड बैकवर्ड क्लासेज इन बिहार : सोशल चेंज इन द लेट 1970''. इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 15, 2 (12 जनवरी)

अर्नेस्टोलैक्लाऊ,(1979).पालिटिक्स एण्ड आइडियोलॉजी इन मार्क्सिस्ट थ्योरी, लंदनः वर्सो पब्लिकेशनस

गुर्जर, विशेष प्रताप. (2019). वाई कास्ट मैटर्सः रीडींग इलेक्टोरल आउटकम्स थ्रूद आप्टिक्सऑफ कास्ट. इकोनॉमिक एण्ड पालिटिकल वीकली. 54,32 पृ. सं. 76–78.

गुप्ता, दिपांकर. (2019). कास्ट एण्ड इलेक्टोरल आउटकम्स मीसरीडींग हारकी एण्ड द इलूशन ऑफ नम्बर्स.इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली. LIV 25

इंग्लीहार्ट, रोनाल्ड.(2016). ''इनइक्वैलिटि एण्ड मॉर्डनाइजेशन : वाई इक्वैलिटी इज लाइकली टू मेक ए कमबैक.'' फारेन अफेयर्स 95 (1): 2–10

जैफरलॉट, क्रिस्टोफर. (2015). द मोदी–सेन्ट्रिक बी.जे.पी 2014 इलेक्शन कैम्पेन : न्यू टेक्निक्स एण्ड ओल्ड टैक्टिक्स. कॉन्टेम्परारी साउथ एसिया 2015 वाल्यूम 23, 2, 151–166

जैफरलॉट, क्रिस्टोफर एण्ड लुइस टाइलिन. (2017). पाप्युलिज्म इन इण्डिया. द आक्सफोर्ड हैण्डबुक ऑफ पाप्युलिज्म एडिटेड बाई क्रिस्टोबल रोविरा कॉल्टवसेर, पॉल टैगर्ट, पॉलिना ऑक्होआ एसपेजो, एण्ड पियरे ऑस्टीगाइ. ऑनलाइन पब्लिकेशन 10.1093/oxfordhb/9780198803560.013.7

जेनसेन, रॉबर्ट एस. (2011). पॉप्युलिस्ट मोबीलाईजेशन : ए न्यू थ्योरेटिकल एप्रोच टू पाप्युलिज्म. सोशयोलॉजिकल थ्योरी, वाल्यूम 29 न. 2 (जून 2011) पृ.सं. 75–96

झा, मनीष के0 एण्ड पुष्पेन्द्र कुमार. (2015). गर्वनिंग कास्ट एण्ड मैनेजिंग कान्फलिक्टसः बिहार, 1990–2011, इन रणबीर समद्दर (सपांदित) ''गर्वमेंट ऑफ पीस : सोशल गर्वमेंट, सिक्योरिटि एण्ड द प्रॉब्लमेटिक ऑफ पीस'', सुरेः एशगेट पब्लिशिंग

झा,मनीष के0 (2019). बिहार इन द सिक्टिस एण्ड सेवेन्टिसः द एनिग्मेटिक फिगर ऑफ कर्पूरी ठाकुर. इन रणबीर समद्दर (सपांदित), फ्रॉम पाप्युलर मूवमेंटस टू रिबेलियनः द नक्सलाइट डिकेड, न्यूयॉर्कः राउदलेज

झा, प्रशांत (2017) : *हाउ द बीजेपी विन्स*, दिल्लीः जगरनॉट

किनवॉल, कैटरिना. (2019). पाप्युलिज्म, ऑनटोलोजिकल इनसिक्योरिटि एण्ड हिंदूत्व : मोदी एण्ड द मसकुलैनाइजेशन ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स. कैम्ब्रिज रिव्यू ऑफ इण्टरनेशनल अफेयर्स, 32, 3, 283–302

किनवॉल, कैटरिना एण्ड टेड स्वेन्सन (2019) 'डिफरेन्शियेटेड सिटिजेनशिपः मल्टीकल्चरलिज्म, सेक्यूलरिज्म एण्ड इण्डियन फॉरेन पॉलिसी' इन जोहेन्स ड्रेग्सबेक

किशोर, रोशन. (28 जुलाई2019). लोकेटिंग क्लास, ऑर लैक ऑफ इट, इन इण्डियन पॉलिटिक्स. हिंदूस्तान टाइम्स. http://www.hindustantimes.com/editorials/locating-class-or-lack-of-it-in-india-s-politics/story-DimS03yZXBZ2atTxE8Na8J.html30 जुलाई 2019 को देखा गया।

क्रियेसी, हैन्सपीटर. (2014).''द पाप्युलिस्ट चैलेंज.'' वेस्ट यूरोपियन पॉलिटिक्स 37, न. 2: 361–378

कुमार मिथिलेश, (2017). मेकिंग ऑफ ए पाप्युलिस्ट गर्वन्मेंटः ए स्टडी ऑफ कर्पूरी ठाकुर रीजीम, पीपुल, पालिटिक्स एण्ड प्रोटेस्टस VI. कोलकाताः पॉलिटिक्स एण्ड प्रैक्टिस, पृ.सं. 15–20

कुमार सज्जन, (अप्रैल 18, 2019). द लिम्ट्स ऑफ पाप्युलिज्म. https://www.thehindu.com/opinion/lead/the-limits-of-populism/article26867609.ece 20 अप्रैल को देखा गया

लैक्लाऊ, एर्नेस्टो. (2005) ऑन पाप्युलिस्ट रिजन. लंदन; न्यूयॉर्कः वर्सो.

लैक्लाऊ, एर्नेस्टो. (1979). पालिटिक्स एण्ड आइडियोलोजी इन मार्क्सस्टिथ्योरी, लंदनः वर्सो पब्लिकेशन

मैक्डोनेल, डन्केन एण्ड लुइस कैबरेरा. (2019). द राइट–विंग पाप्युलिज्म ऑफ इण्डियास भारतीयजनता पार्टी (एण्ड वाई कॉम्परेटिविस्टस शुड केयर), डेमोक्रेटाइजेशन, 26:3,484–501

मूफे, चैन्टल (2005) : *ऑन द पालिटिकल*, लंदनः राउदलेज.

मॉफिट, बी. (2016), *द ग्लोबल राइसऑफ पाप्युलिज्म.* स्टैन्फोर्ड,सी.एः स्टैन्फोर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस.

मुडे, कैस, एण्ड क्रिस्टोबेल रोविरा कल्टवस्सेर. (2013). एक्सक्लूशनरी वर्सेज इन्क्लूजनरी पाप्युलिज्मः कम्पेयरिंग कॉन्टेमपररी यूरोप एण्ड लैटिन अमेरिका. गर्वमेंट एण्ड ऑपोजिशन. 48 2 पृ. सं. 147–74

मुडे, सी., एण्ड कल्टवस्सेर, सी. आर. (2017). *पाप्युलिज्मः ए वेरी शार्ट इंट्रोडक्शन.* आक्सफॉर्ड :आक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस.

नारायण, बद्री. (नवम्बर 19,2018). इट इज बैक टू द हिंदूत्व कार्ड इन उत्तर प्रदेश. द हिंदूस्तान टाइम्स.

पलशिकार, सुहास एण्ड के.सी. सूरी. (2017). क्रिटिकल शिफ्ट्स इन 2014 इलेक्शन इन सुहास पलशिकार, संजय कुमार एण्ड संजय लोढ़ा संपादित इलेक्टोरल पालिटिक्स इन इण्डिया : द रिसर्जेन्स ऑफ भारतीय जनता पार्टी. न्यूयार्कः राउदलेज

राजा, ए. (2018). मि. मोदी : डेलिबरेटली अपियरिंग डियोनीसियेन. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एण्ड एनालिटिकल रिव्यूस*, 5(4), 70–73

रंजन, प्रभास. (2018). इज पाप्युलिज्म सिनोनिम्स विथ राइट विंग? द वायर. 28 नवम्बर. http://thewire.in/politics:populism-india-narendra-modi-indira-ganhi 9 अगस्त को देखा गया

रिचर्डस, बैरी (2013) 'एक्सट्रीम नैश्नलिज्म एण्डद हाट्रेड ऑफ द लिबरल स्टेट' इन एन. डिमरटीज (संपादित) इमोशंस इन पालिटिक्सः द अफेक्ट डाइमेन्शन इन पालिटिकल टेन्सन. बेसिंग्सटोकः पेलग्रैव, 124–142

शिल्स, एडवर्ड. (1956). द टोरमेन्ट ऑफ सिक्रेसी. मेलबर्नःहाइनमैन

व्रीज, क्लेज एच. डी, फ्रैंक एस्सर,टोरिल एलबर्ग,कार्स्टनराइनमैन,एण्ड जेम्स स्टेनयेर. (2018). ''पाप्युलिज्म एज एन एक्सप्रेसन ऑफ पालिटिकल कम्यूनिकेशन कन्टेन्ट एण्ड स्टाइलः ए न्यू पर्सपेक्टिव''. *द इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ प्रेस/पॉलिटिक्स* 23, नं. 4 (अक्टूबर 2018):423–38.

प्रतिस्पर्धात्मक जनतंत्र और लोकलुभावनवादी राजनीति एवं व्यवहारः विशेष संदर्भ छत्तीसगढ़

रजत रॉय

लोकलुभावन राजनीति के वैश्विक राजनीति में बढ़ते प्रभाव और नई प्रवृत्तियों को देखते हुए हम पाते हैं कि वामपंथ एवं दक्षिणपंथ की विभाजक रेखाएं अकसर धुंधली हो गई हैं। 1970 के दशक में हमने इंदिरा गाँधी की लोकलुभावन राजनीति यथा बैंकों के राष्ट्रीयकरण, कोयला खदान के सरकारीकरण और राजाओं के प्रीवी पर्स की समाप्ति के साथ गरीबी हटाओ जैसे लोकप्रिय नारों को अपने शानदार प्रारुप में देखा था जिसके फलस्वरूप वामपंथी दलों को भी अनेक समर्थन में आना पड़ा था। वैश्विक रूप से अमेरिका में बर्नी सैंडर्स, ब्रिटेन में जेरमी कॉर्बीन, फ्रांस में ले पेन और कई अन्य नेता इस वैश्विक परिघटना के प्रमुख किरदारों में से हैं। भारत में भी इस प्रवृत्ति ने अपना प्रारुप ग्रहण कर लिया है और इस बात के प्रबल खतरे हैं कि यह स्थापित रूप से की जाने वाली वर्गीय राजनीति एवं उदारवादी जनतंत्र के तौर तरीकों को कहीं विस्थापित करके उसके परे ना चले जाए। 2014 के नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री अभियान के प्रमुख नारे 'सबका साथ, सबका विकास' कोअगर हम याद करें तो हम पार्था चटर्जी के इस कथन को इस पृष्ठभूमि में समझ सकते हैं। उनका मानना है कि – 'लोकलुभावनवाद एक प्रकार की जनतांत्रिक राजनीति है जिसमें कोई संगठन या व्यक्ति, किसी समूह के कई सारे ना पूरे हुए मांगों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता है और अपने वाक्चातुर्य एवं लफ्फाजियों से यह भरोसा जताता है कि शक्तिशाली प्रमुवर्ग द्वारा इन मांगों को लगातार नकारा गया है और यह प्रमाणिक लोगों की मांगे है जिसे सामुहिक रूप से एक समकक्षता की कड़ी में जोड़ा जा सकता है।[1]

यद्यपि यह बात रेखांकित की जानी चाहिए कि लोलुभावनवाद के सिद्धांत पर सामान्यतया यह मानते है कि यह परिघटना वर्चस्वी सत्ताओं के खिलाफ अपना

[1]पार्था चटर्जी, पोप्युलिजम प्लस, द इंडिया फोरम, 7 जून 2019.

प्रारूप ग्रहण करती है। यद्यपि भारतीय परिदृश्य में उदीयमान प्रवृत्तियाँ इससे अलग कहानी बचा करती है। भारतीय संदर्भ में लोकलुभावनवाद को ज्यादा बेहतर और समग्र तरीके से समझने के लिए हमेंअलग–अलग राजनीतिक दलों द्वारा शासित केंद्रीय ओर प्रांतीय शासन व्यवस्था के नीति कार्यक्रमों को देखना पड़ेगा जिसमें लोकलुभावनवाद के अलग–अलग प्रारूप दिखाई पड़ते हैं। चाहे वह छत्तीसगढ़ में रमन सिंह की सरकार हो या पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी या दिल्ली में अरविंद केजरीवाल की।

इस संदर्भ में कई सारे प्रश्नों का उठना अनिवार्य है जैसे कि क्या हम सिर्फ अभिशासन के ही संदर्भ में लोकलुभावनवाद को समझे या फिर कि लोकलुभावनवाद एक महत्वपूर्ण घटक है। सरकारोंका जिसके द्वारा वो उत्तर औपनिवेशिक समाजों का प्रबंध करती है? इसके अलावे क्या कल्याणकारी व्यवस्थाओं की आधारभूमि पर ही लोकलुभावनवाद टिका होता है? संगठित वैचारिकी से प्रभावित आंदोलनों द्वारा जब इसको चुनौती दी जाती है तब क्या होता है? इन सब सवालों के उत्तर को खोजने के लिए छत्तीसगढ़ को क्षेत्र अध्ययन के विषय के रूप में लिया गया है।

इस शोध परियोजना के अंतर्गत पिछले दो दशकों के अखबारों और अन्य सामग्रियों को खंगाला गया है, सरकारी दस्तावेजों का अध्ययन करके अलग–अलग संस्थाओं की रिपर्टों एवं अकादमिक अध्येताओं, पुस्तकों एवं विशेषज्ञों से बातचीत करके इस प्रश्न को प्रस्तुत किया गया है। इस पृष्ठभूमि में यह देखना समीचीन होगा कि भारतीय संदर्भों में लोकलुभावनवादी राजनीति किस प्रकार प्रस्तावित हुई है। रमन सिंह के भाजपा शासित छत्तीसगढ़ में 15 वर्षों तक के शासन में लोकलुभावनवादी नीतियों की एक लंबी श्रृंखला रही हे। यह शासन 2003 से लेकर 2018 तक रहा और इसके उपरांत तभी कांग्रेस के शासन में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान रही है।

राज्य में गरीबी निवारण के क्षेत्र में इन 15 वर्षों के दौरान किए गए रमन सिंह सरकार के प्रयासों का एक विस्तृत लेखा–जोखा इस शोध पत्र में लिया गया है जिसमें लोकलुभावनवादी जनकल्याणकारी योजनाएं प्रमुख स्थान रखती है। यहाँ पर

यह भी देखना होगा कि किस प्रकार 2018 में कांग्रेस के द्वारा ज्यादा प्रतिस्पर्धी नारे देकर जनता को अपने पक्ष में कर लिया गया।

छत्तीसगढ़ की विशिष्ट स्थिति

मध्यप्रदेश से अलग होकर नवंबर 2000 में भारत के क्षेत्रफल के हिसाब से दसवें बड़े राज्य छत्तीसगढ़ का उदय होना एक नयी राजनीतिक घटना थी। 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी आबादी 2 करोड़ 55 लाख थी और जनसंख्या घनत्व भी न्यूनतम के ही आस–पास 189 बतायी गई है। भारत भर में यह भारत के औसत 382 की तुलना में काफी कम हे। 44 प्रतिशत से ज्यादा वनाच्छिदित जगह होने के साथ खनिज संपदा से भी परिपूर्ण है। कोयला उत्पादन में द्वितीय, लौह अयस्क के संग्रहण–उत्पादन में तृतीय और इसकेअलावा बड़ी मात्रा में अन्य खनिज इत्यादि भी प्रचूर मात्रा में उपलब्ध है। यह ऊर्जा के मामलेमेंअपने जरूरतों से ज्यादा उत्पादन करने वाला राज्य है यहाँ पर इस्पात, सीमेण्ट, एल्युमिनियम और बिजली संयंत्रों की उपलब्धता के कारण एक अच्छा औद्योगिकआधार तैयार है। अपनेचावल उत्पादन के लिए यह राज्य जाना जाता है। लेकिन कमोबेश यही एक मात्र मुख्य फसल उतपादन है।[2]एक ठीक–ठाक कृषि उतपादन ओर मजबूत औद्योगिक संरचना के बावजूद जिसमें प्रति व्यक्ति जमीन उपलबधता भी अच्छे स्तर पर है, इसके गरीबी का प्रतिशत राष्ट्रीय औसत 27.5 प्रतिशत की तुलना में छत्तीसगढ़ में 48.7 प्रतिशत है। दूसरे शब्दों में 2 करोड़ 55 लाख लोगों में 1 करोड़ 22 लाख लोग गरीबी रेखा से नीचे निवास करते है।[3]चूंकि आम लोगों के पास अपने वर्ष भर की जरूरतों के अनुसार प्रचुर खाद्यान्न उपलबध नहीं है इसलिए छोटे किसान ओर मजदूर दूसरे राज्यों में कुशल या अर्द्ध कुशल कामगारों के रूप में पलायन करने को भी बाध्य होते है। जिन्हें पारम्परिक रूप में विलासपुरी कुली कहा जाता है।

[2]13वें वित्त आयोग की रिपोर्ट।
[3]यू.एन.डी.पी. छत्तीसगढ़, आर्थिक एवं मानव विकास सूचकांक ।

रमन सिंह की सरकार द्वारा जन–वितरण प्रणाली में सुधार

गरीबी की एक बड़ी आबादी के कारण खाद्य सुरक्षा को लेकर राजनीतिज्ञों में एक योजनागत दृष्टि पायी जाती है और खाद्य राजनीति लोकप्रिय जन उधार का एक बड़ा मुद्दा रहा है। सन् 1980 के दशक में एन.टी. रामाराव ने 2 रू/ किग्रा चावल योजना की शुरुआत करके इस दिशा में लोकप्रियता हासिल की थी। इसके पूर्व तमिलनाडू में एम.जी. रामचन्द्रन ने विद्यालयों में मध्याह्न भोजन योजना का आरम्भ करके विद्यालयी शिक्षा में एक क्रान्ति ला दी थी जिसे बाद में राष्ट्रीय स्तर पर भी लागू किया गया। इसके बाद सस्ते भोजन की उपलब्धता को लेकर जयललिता की सरकार ने राज्य में 'अम्मा किचेन' की शुरुआत की। तमिलनाडु की राजनीति में दोनों प्रमुख दल डी.एम.के. और ए.आई.डी.एम.के ने लोकप्रिय कार्यक्रमों की जबरदस्त होड़ लगा दी है, जिसमें मुफ्त रंगीन टी.वी. से लेकर गाय, मंगलसूत्र व प्रेशर कुकर, मोबाईल फोन इत्यादि देने की योजनाएँ मौजूद रही है।

भाजपा की छत्तीसगढ़ सरकार के मुख्यमंत्री 2003 से ही सत्ता मेंआने के बाद गरीबों के बीच 'चावल बाबा' के रूप में विख्यात हो गए क्योंकि उन्होंने जन वितरण प्रणाली को काफी हद तक ठीक करके सस्ते चावल की उपलब्धता राज्य भर में सुनिश्चित की। जनवितरण प्रणाली को अभी तक राजनैतिक उपेक्षा और प्रशासनिक भ्रष्टाचार का सामना करना पड़ा था और इसकी दशा दयनीय थी। छत्तीसगढ़ जन वितरण कानून, 2004 को लागू करवाकर रमन सिंह ने इस दिशा में क्रान्तिकारी सुधार किया। इस कानून को पारित होने से पहले ज्यादातर दुकान निजी हाथों में थी और लोगों तकअनाज की उपलबधता सुनिश्चित करने का कोई तरीका नहीं था। रमन सिंह की सरकार ने इन सभी निजी संचालकों के हाथ से उचित मूल्य पर खाद्यानों को उपलबध करने का लाइसेंस छीन लिया और इसे सरकारी समितियों, पंचायत समितियों और महिला स्वयं सहायता समूह को जंगल अधिकार समूहों और साख सहकारी समितियोंको इस नए कानून के तहत अधिकार दिए गए। रमन सिंह की सरकार ने जनवितरण केन्द्रों की संख्या भी 8492 से बढ़कर 10465

कर दी। कम्प्यूटर आधारित प्रोद्योगिकी का प्रयोग करके समग्र पर्यवेक्षण एवं पारदर्शी विवरण व्यवस्था सुनिश्चित की गयी।

2011 में प्रख्यात समाजशास्त्री ज्यां द्रेज द्वारा 8 विकासखण्डों में किए गए अध्ययन से यह पाया गया कि छत्तीसगढ़ में जनवितरण व्यवस्था ठीक से काम कर रही है। 85 प्रतिशत कार्ड धारकों को पूरा 35 किग्रा अनाज मिल पा रहा था। वहीं बाकी लोगों को भी 25 किग्रा अनाज उपलबध था। जाली राशन कार्ड धारकों की संख्या मात्र 2 प्रतिशत पायी गयी। उन्होंने आगे यह भी बताया कि 2007 तक आते–आते करीब 800 प्रतिशत जनंसख्या को इसके दायरे में ले लिया गया है। निजी हाथों से यह अधिकार छीनकर और वितरण व्यवस्था में पारदर्शिता सुनिश्चित करके रमन सिंह की सरकार ने एक तकनीकि रूप से भी सघन कार्यक्रम चलाया। हितग्राही समूहों को किसी भी अव्यवस्था की शिकायत पर सरकार तक मोबाईल फोन संदेश द्वारा सजग करने और शिकायत निवारण की मजबूत प्रणाली विकसित करने के कारण यह व्यवस्था प्रभाव रूप से चलायी गयी। ''जब लोगों को अपने जन वितरण केन्द्र का खुद ही मालिकाना हक मिल जाए तो धोखा देने की प्रवृत्ति न्यूनतम हो जाती है क्योंकि यह एक अर्थों में अपने साथ ही भ्रष्टाचार करने जैसा है। ग्राम पंचायत जैसी समुदायिक संस्थाएँ अनिवार्य रूप से जन संस्थाएँ भी हों यह जरूरी नहीं है, लोगों तक एक प्रभावी कार्यक्रम चलाने के मामले में जटिल प्रशासनिक अमले और भ्रष्ट बिचौलिए वर्ग की तुलना में यह ज्यादा प्रभावी सिद्ध हुआ है।'' ज्यां द्रेज[4] के इस कथन से योजना आयोग के पूर्व सदस्य सचिव और राष्ट्रीय खाद्य योजना कानून के मुख्य रचनाकारों में एक एन.सी. सक्सेना भी अपनी सहमति जताते है।[5]

रमन सिंह ने जनवितरण प्रणाली में सुधार के लिए सिर्फ नौकरशाही के तन्त्र पर ही भरोसा नहीं किया बल्कि जनता की सक्रिय पहल को भी इस आन्दोलन के साथ कम से कम प्रारम्भिक दिनों में जोड़ा। पंचायती राज संस्थाओं एवं अन्य स्थानीय

[4]ज्या द्रेज, छत्तीसगढ़ शोध, द.वे. द. हिन्दू, 13 नवम्बर, 2010.
[5]एन.सी. सक्सेना की लेखक से ई–मेल पर बातचीत पर आधारित।

निकायोंको इन केन्द्रों के संचालन एवं वितरण और पर्यवेक्षण के सक्रिय अधिकार देकर उन्होंने स्थानीय लोगों को ही प्रत्यक्ष हितग्राही समूहों के रूप में परिवर्तित किया। यह नौकरशाही व्यवस्था के समानान्तर जन भागीदारी के माध्यम से एक सक्षम एवं प्रभावी वितरण प्रणाली विकसित करने जैसा था जिससे भ्रष्टाचार एवं खाद्यान्न की बरबादी पर अंकुश लगाया गया। यह बात भी यहाँ ध्यान देने योग्य है कि छत्तीसगढ़ का खाद्य सुरक्षा कानून केन्द्रीय खाद्य सुरक्षा कानून से पूर्व ही अस्तित्व में आ गया था। प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक जन वितरण केन्द्र की उपलब्धता सुनिश्चित करके यह तय किया गया कि ग्राम समितियाँ ही इसके सतत् प्रगतिका पर्यवेक्षण करेंगी और खाद्यान्नों की बरबादी और कालाबाजारी को सक्षम तरीके से रोकेंगी।

लोकलुभावन उपाय

रमन सिंह सरकार ने अपने 15 वर्ष के दौरान कई लोकलुभावन नीतियों को प्रारम्भ किया, जिसके माध्यम से न सिर्फ समुदाय को बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर भी उनके जीवन में गुणात्मक परिवर्तन सम्भव हो सकें।

कुछ लोकप्रिय नीतियाँ निम्नवत् हैं :–

1. गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे परिवारों को 2 रू./किग्रा. की दर से चावल और अन्त्योदय कार्ड धारक परिवारों को 1 रू./किग्रा. चावल, गरीब परिवारों को मुफ्त नमक का वितरण।
2. गरीब परिवारों की बालिकाओं को वित्तीय सहायता।
3. स्कूल जाने वाली बालिकाओं को मुफ्त साइकिल।
4. आदिवासी तथा गरीब बच्चों की छात्रवृत्ति में वृद्धि।
5. महिलाओं को 100 रू. प्रति गैस कनेक्शन की सब्सिडी।
6. गरीब बच्चों को मुफ्त पुस्तकों का वितरण।
7. पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की 50 प्रतिशत भागीदारी।
8. तीन प्रतिशत की दर से ऋण की व्यवस्था।

9. गांव को 24 घण्टे बिजली तथा पांच एच.पी. पम्प होने पर मुफ्त बिजली।

10. किसानों को 270 रू./ कुण्टल धान।

11. तेन्दु पत्तियाँ एकत्र करने वाले आदिवासी समाज के लोगों को मुफ्त में जूते–चप्पल देने की वरूवस्था।

पन्द्रह वर्ष के कार्यकाल में इन व्यवस्थाओं को विभिन्न चरणों में लागू किया गया। 2018 में विधानसभा चुनाव से पहले रमन सिंह ने यह वादा किया कि जन वितरण केन्द्रों से और ज्यादा पोषणकारी खाद्यान्नों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाएगी जिसमें प्रमुख रूप से चना दाल का वितरण किया जाएगा और राज्य की 55 लाख महिलाओं को मोबाईल फोन मुफ्त दिए जाऐंगे।

इसके अतिरिक्त रमन सिंह सरकार ने एक अभिनव प्रयोग करते हुए अलग से आम बजट के साथ एक 'जेण्डर बजट' भी प्रस्तुत किया।[6] इस बजट में सरकार के 18 विभागों द्वारा कम से कम 23 मुद्दों पर स्त्रियों एवं बालिकाओं के लिए अलग से बजटीय प्रावधान किए गये थे। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण देने का भी कानून छत्तीसगढ़ सरकार ने लागू किया।

राज्य का वित्तीय स्वास्थ्य

रमन सिंह सरकार ने अपनी लोकलुभावन नीतियों को आगे बढ़ाते हुए सब्सिडी पर बजटीय आवंटन को कई गुना बढ़ाया। 2007–2008 में जहाँ 202.55 करोड़ का आवण्टन किया गया था, वहीं 2011–2012 में इसे बढ़ाकर 1871 करोड़ रूपये किया गया। इसी समयान्तराल में अन्य सामान्य राज्यों की तुलना में समग्र सार्वजनिक खर्चे का प्रतिशत, राज्य के समग्र सकल घरेलू उत्पाद (जी.एस.डी.पी.) के अनुपात में उच्चतर स्तर पर था।[7]

जी.एस.डी.पी. द्वारा विकास खर्च (करोड़ में)

[6]14वें वित्त आयोग की रिपोर्ट के परिशिष्ट, 1.6 में उद्धरित।
[7]14वें वित्त आयोग द्वारा उद्धरित।

क्र.संख्या	वित्तीय वर्ष	खर्च करोड़ में
1	2007–2008	10773.00
2	2008–2009	12995.00
3	2009–2010	16002.00
4	2010–2011	16857.00
5	2011–2012	21310.00

यद्यपि राज्य द्वारा अपने निवेश की प्रतिपूर्ति के मामले में राजकोष में औसत प्राप्ति में कमी पायी गयी। जहाँ राज्य सरकार 2011–2012 में 7–08 प्रतिशत की दर से ब्याज दे रही थी वहीं निवेश पर प्रतिदिन की दर सिर्फ 0.04 प्रतिशत थी।[8]

राज्य पर लगने वाली सब्सिडी[9]विवरण

क्र. सं.	2007 से 2012 के बीच राज्य द्वारा प्रदत्त सब्सिडी (करोड़ में)					
	वित्तीय वर्ष	2007–08	2008–09	2009–10	2010–11	2011–12
1	पोषण	0.44	946.28	1288.78	886.73	750.51
2	पशुपालन	29.35	41.23	41.00	40.07	46.36
3	मत्सय उत्पादन	0.55	0.41	0.47	0.75	0.60
4	वन उत्पादन	19.53	10.09	10.00	10.00	8.10

[8]उपरोक्त।

[9]राज्य वित्त के ऊपर सी.ए.जी. का प्रतिवेदन, 2011.

5	खाद्य संग्रह	606.16	109.47	406.61	488.65	383.67
6	लघु सिंचाई	8.09	10.49	10.62	11.01	10.88
7	ऊर्जा	10.14	128.04	150.10	202.10	321.10
8	ग्रामीण एवं लघु उद्योग	9.60	24.27	39.26	37.71	52.52
9	उद्योग	1.13	4.37	1.46	3.72	1.87
	कुल योग	**802.55**	**1134.68**	**1994.30**	**1763.81**	**1870.93**

यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि उद्योगों को दी गयी सब्सिडी न्यूनतम स्तर पर थी ओर इसका पूरा झुकाव ग्रामीण एवं शहरी गरीबों की ओर था।

2015–2016 के दौरान सब्सिडी की कुल मात्रा 7397 करोड़ थी।[10] यह बात ध्यान देने योग्य है कि 2007–2008 में खाद्य सब्सिडी की मात्रा 606 करोड़ से बढ़ाकर 2011–2012 में 1334 करोड़ हो गयीं किसानों को उनके ब्याज के ऊपर भी तमाम आकर्षक छूट व सब्सिडी प्रदान की गयी। सरकार द्वारा 3 प्रतिशत ब्याज के ऊपर किसानों को कृषि ऋण दिए गए और सहकारी एवं ग्रामीण बैंकों द्वारा लिए गए ब्याज की अन्तर वाली राशि को सरकार द्वारा चुकाया गया।

राज्य सरकार द्वारा सरकारी खातों मेंकई तरह के छुपे हुए सब्सिडी की भी व्यवस्था की गई। न्यूनतम समर्थन मूल्य से ज्यादा कीमत पर धान उत्पादकों से धान खरीदे जाने पर जो अतिरिक्त लाभांश किसानों को दिये गए उसकी चर्चा इस आंकड़े में नहीं की गयी है। 2008–2009 में जहाँ यह 440 करोड़ था, वहीं 2014–2015 तक आते–आते यह 1750 करोड़ हो गया। उसी तरह से बिजली के उपभोग पर दी

[10]उपरोक्त ।

जाने वाली सब्सिडी का भी यह परिदृश्य था। कृषि कार्य के लिए दी जाने वाली बिजली पर सब्सिडी जहाँ 2007–2008 में 10 करोड़ थी, वहीं 2011–2012 में बढ़कर 100 करोड़ हो गयी।

जन वितरण प्रणाली

राज्य में कुल 55 लाख परिवार हैं, जिन पर प्रति माह 35 किग्रा. चावल/ रूपये की दर से दिए जाने का प्रावधान है। वहीं गेंहू की दर 2 रू./किग्रा. है। इसके अलावा दाल कम कीमत पर तथा आयोडीन युक्त नमक भी देने का प्रावधान है सरकारी आकड़ों के अनुसार इनमें से 13 लाख परिवार गरीबी रेखा से नीचे के हैं।

ज्यां द्रेज की जन वितरण प्रणाली पर किये गये आकड़ों के अध्ययन से विश्लेषण करते हुए इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली में प्रकाशित एक अध्ययन में राघव पुरी नेबताया कि जन वितरण प्रणाली के तहत 32 लाख 30 हजार परिवारोंको लाभान्वित किया गया है। बिजेनेस लाइन पत्रिका को दिए एक साक्षात्कार में दिसम्बर 2016 में बताया कि मुख्यमंत्री खाद्यान्न सहायता योजना के अन्तर्गत 58,80,000 परिवारों को लाभान्वित किया गया है।[11] अगर यह दावा सही है तो यह मानना पड़ेगा कि राज्य सरकार ने करीब–करीब सम्पूर्ण आबादी को ही खाद्यान्न सुरक्षा का लाभार्थी बना दिया है।

इन वर्षों में सब्सिडी की मात्रा में बढ़ोत्तरी के कारण हानि भी अपार मात्रा में हुई है। 2007–2008 में जहाँ राज्य नागरिक आपूर्ति निगम को 8 करोड़ का घाटा हुआ था वहीं 2010–2001 में यह 450 करोड़ तक बढ़ गया। इसी तरह राज्य सरकार के या तो मुफ्त या न्यूनतम शुल्कों पर बिजली देने के संकल्प के कारण राज्य सरकार की बिजली वितरण कम्पनी डिस्कॉम को भारी घाटा उठाना पड़ा। यही स्थिति और भी कई विभागों की रही, जिससे राज्य सकल घरेलू उत्पादन में नकारात्मक असर पड़ा और अर्थवयवस्था खराब हुई।

[11]बिजनेस लाइन, 13 दिसम्बर, 2016.

नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की 31 मार्च 2016 की रिपोर्ट के अनुसार –

1. राज्य सकल घरेलू उत्पादन में 2015–2016 में वृद्धि 6.40 प्रतिशत की थी जबकि 14वें वित्त आयोग ने अपने अनुमान में इसे 14.42 प्रतिशत बताया था।
2. राज्य क्रियान्वयन संस्थाओं को प्रत्यक्ष मुद्रा हस्तान्तरण के नाम पर 130.65 करोड़ रू. (38.92 प्रतिशत) दिए गए वहीं 2014–2015 में यह बढ़कर 466.30 करोड़ हो गया जिसे विभिन्न सामाजिक–आर्थिक योजनाओंको लागू करने के लिए दिया गया था।
3. राज्य द्वारा विभिन्न स्थानीय निकायों को दिए गए वित्तीय मदद मेंकमी पायी गयी 2014–15 में यह 10573 करोड़ था, वहीं 2015–2016 में यह 9678.18 करोड़ हो गया। वहीं दूसरी ओर सब्सिडी पर खर्च 3650 करोड़ रू. बढ़ गया। (परिशिष्ट 1.6.6)

राज्य वित्त पर बढ़ते दबाव के बावजूद नीतियों से रमन सिंह की सरकार ने किनारा नहीं किया। अपने लोकप्रिय सामाजिक आधार को बनाए रखने केलिए उन्होंने इस तरह की कल्याणकारी योजनाओं को अनवरत बनाए रखा। पारम्परिक राजनीतिज्ञों की तुलना में लोकलुभावन राजनीति के सारे अभिकर्ताओं में यह बात एक समान पायी जाती है कि केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित वित्तीय अनुशासन का यह डर नहीं मानते और लोकप्रिय नीतियों के राजकोषीय घाटे की कीमत पर भी बनाए रखते हैं। यह हमेशा इस तथ्य की अनदेखी कर जाते हैं कि राजकोषीय एवं वित्तीय अनुशासन के बिना लम्बे समय तक इन लोकप्रियतावादी अभियानों को नहीं चलाया जा सकता है। उनकी तत्कालिक नजर अपने सामाजिक राजनीतिक आधार को सुनिश्चित करते हुए चुनावी जीत पर होती है।

मानव विकास सूचकांक एवं गुणात्मक बदलाव में कमी

यद्यपि इन सारे लोकप्रिय नीतियों के बावजूद इन जनकल्याणकारी योजनाओं का राज्य के मानव विकास सूचकांक प्रदर्शकों पर कोई खास गुणात्मक परिवर्तन नहीं

देखने को मिला है। असमानता को संयोजित करते हुए 2011 के भारतीय राज्यों के ऊपर जारी मानव विकास सूचकांक रिपोर्ट में छत्तीसगढ़ का 19 राज्यों में 18वां स्थान था। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) के 2007–2008 की एक रिपोर्ट के मुताबिक –

- छत्तीसगढ़ का 2006 में 23 राज्यों में 23वां स्थान था।
- लैंगिक विकास सूचकांक केमामले में 35 राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में छत्तीसगढ़ का 30वां स्थान था।
- लैंगिक सशक्तिकरण मानकों के आधार पर (जी.ई.एम.–2011) में छत्तीसगढ़ का स्थान 19वां था।
- भारत में गरीबी अनुपात के औसत, जिसमें भूख से जुड़े संकेतक भी शामिल हैं, के आधार पर अखिल भारतीय स्तर पर जहाँ यह 29.8 है, वहीं छत्तसीगढ़ में यह 48.7 प्रतिशत है।
- 35 करोड़ 46 लाख गरीब लोगों की भारतीय संख्या में छत्तीसगढ़ में एक करोड़ 21 लाख 90 हजार गरीब हैं।

2005 से 2017 के बीच छत्तीसगढ़ का मानव विकास सूचकांक न्यूनतम वृद्धि के साथ 0.583 से 0.605 तक पहुँचा। 29 राज्यों के बीच छत्तीसगढ़ का स्थान 24वां था। राज्य सकल घरेलू उत्पाद में नाटकीय गिरावट दर्ज की गयी, जहाँ पहले यह 14 प्रतिशत के आस पास था, वहीं यह 2015–2016 में 6.40 प्रतिशत हो गया। इसी दौरान सरकार पर जन वितरण प्रणाली को लेकर 30 हजार करोड़ रूपये के घोटाले के आरोप लगे।[12] 2018 में मानव विकास सूचकांक के मामले में 188 देशों के बीच भारत का स्थान 131वां था। इससे नीति आयोग के मुख्य कार्यकारी अमिताभ कान्त ने छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों को इस पिछड़े प्रदर्शन के मुख्य कारकों में गिनाया।[13]

[12]इकॉनामिक टाइमस, 4 जुलाई, 2015.
[13]बिजनेस टुडे, 24 अप्रैल, 2018.

यद्यपि ज्यां द्रेज जैसे अर्थशास्त्री मानव विकास सूचकांक को ज्यादा महत्व नहीं देते है। वह हमें इस बात से आगाह करते हें कि मानव विकास सूचकांक जैसे निष्कर्षात्मक संकेतकों से हमें सावधानीपूर्वक कार्य व्यवहार करना होता है। वे यह सलाह देते हैं कि हमें विभिन्न श्रेणीबद्ध घटकों पर आधारित संकेतकों पर ध्यान देना चाहिए। जैसे, बाल स्वास्थ्य के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ ने अच्छी प्रगति दर्ज की है।[14] इस संदर्भ में ज्यां द्रेज 'फोकस' नाम के प्रतिवेदन का हवाला देते हैं जिसके निष्कर्ष इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली (ई.पी.डब्लयू.) में प्रकाशित हुए हैं।

दिसम्बर 2006 में प्रकाशित 'फोकस रिर्पोट' में 6 साल से कम उम्र के बच्चों पर किए गए अध्ययन मेंजिसका जमीनी सर्वेक्षण और अध्ययन मई–जून 2004 में कई राज्यों के स्तर पर किया गया था। इसमें छत्तीसगढ़ के अलावे आईसीडीएस ने उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडू जैसे राज्योंको सम्मिलित कर के यह निष्कर्ष निकाला गया कि भारत में आधे से ज्यादा बच्चे कुपोषित हैं और आधे से ज्यादा बच्चों में एकाग्रता की बीमारी पाई गई थी।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य अध्ययन (एन.एफ.एच.एस.) के तृतीय संचरण के आँकड़ों का अध्ययन करने से हम पाते हैं कि 2005–2006 से लेकर 2015–2016 के चतुर्थ चरण तक हम पोषण उपलब्धता के स्तर में यकीनन वृद्धि तो पाते है लेकिन यह अभी भी वैश्विक मानकों के करीब नहीं आ पाया है। 2005–2006 में जहाँ 71.2 प्रतिशत बच्चे (5 वर्ष से कम आयु में) रक्ताल्पता से ग्रस्त थे, वहीं 24 प्रतिशत बच्चोंकोमलेरिया था, 45 प्रतिशत बच्चों को औसत दर्जे का और 2 प्रतिशत बच्चों को सबसे कठिन प्रकार के मलेरिया से ग्रस्त पाया गया।[15] 6 से 35 महिने के बच्चों तकमलेरिया ग्रस्तता के उपायों की उपलब्धता के आधार पर हम पाते हैं कि द्वितीय चरण की तुलना में तृतीय चरण में यह प्रतिशत 79 प्रतिशत तक चला गया।[16]

[14]ज्यां द्रेज की लेखक से ई–मेल पर बातचीत पर अधारित।
[15]एन.एफ.एच.एस.–3, क्रमांक 10.13, पृष्ठ 290.
[16]उपरोक्त ।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य पर्यवेक्षण रिपोर्ट केचतुर्थ चरण में कुछ प्रवृत्तियों में बदलाव देखा गया जिसमें राष्ट्रीय औसत 38 प्रतिशत की तुलना में बच्चों में अल्प विकास के मामले में छत्तीसगढ़ में गुणात्मक बदलाव देखा गया। तृतीय चरण में जहाँ यह 53 प्रतिशत था वही 6 से 9 महिने के बच्चे के बीच 71 प्रतिशत बच्चे रक्ताल्पता से पीड़ित पाए गए और 58 प्रतिशत महिलाओं में भी यही समस्या पाई गयी।

इसके चतुर्थ चरण तक आते–आते बच्चों में रक्ताल्पता का प्रतिशत 41.5 प्रतिशत पाया गया लेकिन महिलाओंमें इस दिशा मेंकोई खास गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया। 53 प्रतिशत महिलाओं में अभी भी रक्ताल्पता की समस्या पाई गई।[17] यह कहना ना होगा कि कुपोषण के कारण सबसे ज्यादा गरीब तबको से आने वाले बच्चे और औरतें ही कुप्रभावित होते हैं।

बच्चों के पोषण स्तर में सकारात्मक वृद्धि के बावजूद यह स्पष्ट है कि तृतीय चरण की तुलना में चतुर्थ चरण में भले ही गुणात्मक परिवर्तन आया हो लेकिन यह समग्र परिवर्तन नहीं है। बच्चों मेंअल्प विकास के मामले में यह 53 प्रतिशत से घटकर 38 प्रतिशत तक तो जरूर आया है लेकिन यह एक दशक की उपलब्धि के हिसाब से बहुत आश्वस्ति कारक घटना नहीं हैं। कम वजन वाले बच्चों की भी संख्या 47 प्रतिशत से 38 तक हुई है। इसी काल खंडमें खाद्यान्नों की बरबादी भी 20 प्रतिशत से बढ़कर 23 प्रतिशत तक हो गई। यह स्पष्ट रूप से इस तथ्य का परिचायक है कि अल्प विकास एवं कम वजन होने के मामले में भले ही हमने कुछ प्राप्त किया है परंतु बच्चों में कुपोषण अभी भी एक बड़ी समस्या है।[18]

वहीं एक दूसरी रिपोर्ट जिसे पोषण ने जारी किया था। (पार्टनरशिप एंड ऑपरच्युनिटीज टू स्ट्रेंथन एण्ड हार्मोनाइज एक्शन्स फॉर न्यूट्रीशनस् इन इंडिया) और जिसका प्रकाशन आई.एफ.पी.आर.आई. करती है ने यह समचार प्रमुखता से छापा किप्रजनन योग्य उम्र में महिलाओं और 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण का स्तर अमानवीय स्तर पर पहुँच गया है। राज्य के 27 जिलों में, बस्तर

[17]एन.एफ.एच.एस.–3, क्रमांक 10.13, पृष्ठ 294 एवं क्रमांक 10.21.1 पृष्ठ 334.
[18]एन.एफ.एच.एस.–4, पृष्ठ 20.

की दशा–दिशा इसमें सबसे खराब है। 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में यह स्तर 41. 6 प्रतिशत तक पाया गया और अल्प वजन वाले बच्चों की संख्या 50.6 प्रतिशत और रक्ताल्पता का प्रतिशत 59.4 प्रतिशत पाया गया। प्रजनन योग्य उम्र की महिलाओं में रक्ताल्पता का प्रतिशत 67.6 प्रतिशत पाया गया। बस्तर और सरगुजा जैसे आदिवासी बाहुल्य जिलों में 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में अल्प विकास का स्तर 31.3 प्रतिशत पाया गया जिसमें 22.3 प्रतिशत बच्चे खत्म हो गए, अल्प वजन वाले बच्चों का प्रतिशत 37.4 प्रतिशत था वहीं रक्ताल्पता से ग्रस्त बच्चों की संख्या 38.6 प्रतिशत थी।वहीं महिलाओं में यह प्रतिशत 35.1 प्रतिशत पाया गया। रामपुर और बस्तर के बीच अवस्थित एक जिले धमतरी में कुपोषण का स्तर खतरनाक ढंग से बढ़कर 34.2 प्रतिशत पर पाया गया और 27 प्रतिशत नष्ट हो गए इसके अलावे 40.2 प्रतिशत अल्पवजन के बच्चे और 52.7 प्रतिशत बच्चे रक्ताल्पता से ग्रस्त पाए गए।[19]

पोषण की उपलब्धता और रक्ताल्पता के मामले में बच्चों ओर औरतों के स्वास्थ्य स्तर के आधार पर छत्तीसगढ़ ने मिली जुली सफलता दर्ज की है। जन वितरण सेवाओं की उपलबधता का सकारात्मक असर इन कार्यक्रमों पर पड़ा तो जरूर है लेकिन इस दशा में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। छः राज्यों के सर्वेक्षण पर आधारित, जिसमें छत्तीसगढ़ भी एक है। (2016) में ज्यां द्रेज, प्रांकुर गुप्ता, रीतिका खेरा और इजाबेल पाइमेन्टा ने अपने अध्ययन में पाया कि छत्तीसगढ़ ने जन वितरण प्रणाली के मामले में अच्छी सफलता दर्ज की है। बिना किसी भ्रष्टाचार और उपलब्धता में कमी के हरेक महिने लाभार्थी समूहों को अनाज मिल रहा था। इस सर्वेक्षण के उत्तरदाता सामान्यतया प्रसन्न थे।[20]

ज्यां द्रेज एवं अन्य के अध्ययन पर आधारित सर्वेक्षण में भले ही छत्तीसगढ़ सरकार की प्रशंसा की गई हो लेकिन पोषण की उपलब्धता का मामला अभी चिंता का विषय बना हुआ है। नीति आयोग के अद्यतन आँकड़ों के अनुसार 5 वर्ष से कम उम्र

[19]पोषण : जिला पोषण सूचकांक, छत्तसगढ़, मई 2018.
[20]ज्यां द्रेज एवं अन्य : इ.पी.डब्ल्यू., 9 फरवरी 2019.

के 37.60 प्रतिशत बच्चे कुपोषण से ग्रस्त थे। इसके अलावा बेटियों एवं महिलाओं की रक्ताल्पता से ग्रस्त होने की संख्या भी खतरनाक स्तर पर है। यह बात बताते हुए वर्तमान मुख्यमंत्री भूपेश बघेल कहते हैं कि ज्यां द्रेज का अध्ययन 'बीमारू राज्यों की पहचान से छत्तीसगढ़ के बाहर निकलने की आशा को प्रदर्शित करता है। छत्तीसगढ़ अब समस्याजनक क्षेत्रों सेबाहर निकलने के लिए प्रतिबद्ध है। हमें अनवरत काम करना है और अन्य समस्या जनक क्षेत्रों में हमें ठोस प्रगति करनी है।[21] छत्तीसगढ़ में इस बात के संकेतक मिल रहे है कि बाल विकास के मामले में प्रगति हुई है और बाकी अन्य समस्याजनक राज्यों की तुलना में छत्तीसगढ़ का प्रदर्शन काफी बेहतर रहा है। 2000 में राज्य गठन के बाद यह छोटी उपलब्धि नहीं है और हम इस दूरी को बेहतर प्रदर्शन से और बढ़ाते रहेंगे।[22]

यहाँ पर ध्यान देने लायक बात यह है कि हम राज्यों में भी इन संकेतकों में कोई बहुत अच्छी स्थिति नहीं पाते हैं। बहुत कम ही ऐसे राज्य हैं जहाँ आधे से कम बच्चे रक्ताल्पता से पीड़ित हैं जिनमें प्रमुख रूप से गोवा (38 प्रतिशत), मणिपुर (41 प्रतिशत) मिजोरम (44 प्रतिशत), केरल (45 प्रतिशत) इत्यादि हैं। रक्ताल्पता का उच्चतम स्तर बिहार में पाया गया जहाँ यह 78 प्रतिशत था, वहीं मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में 74 प्रतिशत और हरियाणा में 72 प्रतिशत और छत्तीसगढ़ मेंइसका स्तर 71 प्रतिशत पाया गया पंजाब और राजस्थान में सबसे जटिल एवं खतरनाक स्तर तक रक्ताल्पता प्रतिशत पाया गया।[23] यह इस बात को रेखांकित करता है कि ज्यां द्रेज के आशावाद केबावजूद छत्तीसगढ़ को अभी समस्याजनक दोनों से परे जाने में लंबा रास्ता तय करना है।

वर्तमान की भूपेश बघेल सरकार ने कुपोषण के इस स्तर से निपटने के लिए प्रोटीन युक्त खाने की उपलबधता सुनिश्चित कराने के निर्देश दिए हैं। इसमें अंडे, दाल, सब्जियों की उपलब्धता आदिवासी बहुल क्षेत्रों में सुनिश्चित कराने के लिए अब राज्यव्यापी अभियान शुरूआती पॉयलट अध्ययन के बाद शुरू किया गया है। बस्तर,

[21]इंडिया टूडे, 19 अगस्त 2019 में उद्धृत ।
[22]ज्यां छेज एवं रीतिका खेरा, ई.पी.डब्ल्यू., 20 नवम्बर, 2012, वाल्यूम 37, नं. 39.
[23]एन.ई.एच.एस.–4 क्रमांक 10.13.

दंतेवाड़ा, धमतरी और सरगुजा में यह अभियान प्रारंभिक चरण में सफल हुआ है। महिलाओं में रक्ताल्पता के साथ साथ प्रोटीन युक्त आहार की उपलब्धता से बच्चों में पोषण के स्तर को प्राप्त करने मेंमदद मिलेगी।[24]

इन सब सारी कमियों केबावजूद हम इस बात से इंकार नहीं कर सकते की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए हमें जन वितरण प्रणाली की बेहतर व्यवस्था करनी पड़ेगी। जैसा कि गरीब लोगों को अल्पकालिक लक्ष्यों के तौर पर कम मूल्य पर खाद्य उपलब्ध अनवरत रूप से कराने की जरूरत है। इसके अलावा उनके लिए न्यूनतम आय सुनिश्चित करने हेतु प्रत्यक्ष मुद्रा हस्तांतरण के साथ–साथ उनके कौशल विकास एवं गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य उपलबध कराने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसमें कोई टालमटोल या कोई दूसरा रास्ता अख्तियार करने जैसी बात नहीं है। यद्यपि ज्यादातर राज्यों ने इनक कार्यक्रमो में अच्छी सफलता दर्ज नहीं की है जिसके कारण दीर्घकालिक लक्ष्य पोषण, स्वास्थ्य एवं शिक्षा तक सबकी गुणात्मक पहुंच नहीं बन पायी है।[25]

अभिशासन में लोकलुभावनवाद के समान लक्षण

छत्तीसगढ़ में रमन सिंह और पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी सरकार द्वारा इसी तरह के चलाए गए गरीब हितैषी नीतियों में स्थापित वाम द्वारा अपनाए गए लोकलुभावन नीतियों की प्रतिध्वनियाँ स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती हे। लेकिन फिर भी ध्यान से देखने पर यह पारंपरिक वामपंथी आंदोलनों के कार्यशैली से भिन्न है। पारंपरिक रूप से वामपंथ में वर्गीय नजरिये से अपनी राजनीति को संचालित किया जाता हैं वहीं दिल्ली में अरविंद केजरीवाल और उपरोक्त दोनों राज्य सरकारों ने कुछ हद तक 'जनता' को ध्यान में रखते हुए अपनी नीतियाँ बनाई हैं जो अपने मूल गठन में ही 'अमूर्त्त' श्रेणी है। इसका कोई ठोस आकार नहीं होता है। इसके समांतर हमें कांग्रेस नीत यूपीए–प्रथम गठबंधन को भी इस बात का श्रेय देना होगा कि उन्होंने अपने पाँच वर्ष के शासन में कई सारी जनहितैषी एवं जनता के जीवन को युगांतकारी

[24]द टेलीग्राफ, 18 अक्टूबर, 2019.
[25]शोधकर्त्ता के साथ ई–मेल में बातचीत पर आधारित 26, जुलाई, 2019.

तरीके से बदलने वाले निर्णय लिए। नव उदारवादी राजनीति के विमर्शों के इर्द–गिर्द बुने गए इस आख्यान में नए राजनीतिक अर्थशास्त्र की आधारभूमि तैयार की जिसे 1991 के उपरांत हरेक सरकारों ने लागू किया। कृषि संकट और किसानों में बढ़ते आत्महत्या की घटनाओं ने यूपीए–प्रथम गठबंधन को सामाजिक विकास के क्षेत्र में प्रभावी हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य कर दिया। इसके परिणामस्वरुप महात्मा गाँधी न्यूनतम रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) अस्तित्व में आयी जिसमें राज्य द्वारा ग्रामीण भारत में न्यूनतम 100 दिनों का रोजगार सुनिश्चित करने की योजना थी। इसके उपरांत जन अधिकारिता से संबंधित कई कानून संसद द्वारा पारित किए गए जिसमें काम पाने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, वन अधिकारिता और खाद्य सुरक्षा का अधिकार प्रमुख था। छत्तीसगढ़ ने खाद्य सुरक्षा के केन्द्रीय कानून बनाने के पहले ही जनवितरण प्रणाली को मजबूत करने के लिहाज से एकप्रणाली एवं सक्षम कानून पारित किया और इस दिशा में अपनी अग्रणि सोच का परिचय दिया। बाकी राज्यों में जन हितैषी कानूनों एवं जनाधिकार पर आधारित प्रक्रियाओं में गति लाई गई। इस तरह से राज्य सरकारों में दलीय प्रक्रियाओं के अलग अलग प्रारूप में भी केन्द्र सरकार के समांतर लोकलुभावन राजनीति के अलग अलग प्रतिमान देखने को मिले।

यह कुछेक अपवादों को छोड़कर दक्षिणपंथ की राजनीति में भी बड़े पैमाने पर देखा गया है। क्या इसका ये निहितार्थ लगाया जाए कि लोकलुभावन राजनीति में अनिवार्य रूप से एक दक्षिणपंथी रूझान रहता ही है? शोधकर्त्ता के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह जरूरी नहीं है। जैसा कि आम मान्यता है कि लोकलुभावनवाद आमतौर पर अपने मूल प्रकृति में ही नृजातीयता वाद, स्थानीयतावाद और फासीवादी चरित्र लिए हुए एक संकुचित करने वाली परिघटना है लेकिन इस दो बड़े चिंतकों अर्नेस्टो लैक्लाऊ और चैंटल मफ़े ने चुनौती दी है, उन्होंने तर्क दिया है कि डोनाल्ड ट्रंप, बर्नी सैडर्स, पोडेमोज, फ्रांस का राष्ट्रीय मोर्चा इत्यादि व्यक्ति या दल सभी लोकलुभावनवाद के उदाहरण है। दूसरे शब्दों में

वामपंथ और दक्षिणपंथ दोनों तरह के झुकावों के साथ लोकलुभावनवाद की परिघटना कार्य कर सकती है।[26]

लैक्लाऊ और मफे की सैद्धांतिकी में चिरसम्मत मार्क्सवादी सैद्धांतिकी कोखारिज कर के एक नया सिद्धांत प्रस्तुत किया है। पूर्ववर्त्ती मार्क्सवादी सिद्धांत पर ही कट्टर मार्क्सवाद और सामाजिक जनतंत्रात्मक दलों की दार्शनिकता टिकी हुई है। उन्होंने ग्रामशी के वर्चस्व एवं ऐतिहासिकता की अवधारणा को अंगीकृत किया है। लैक्लाऊ के अनुसार लोकलुभावनवाद एक राजनीतिक तार्किकता की घटना है जिसे वाम, मध्य या दक्षिण किसी भी तरह के वैचारिक धरातल पर प्रयोग में लाया जा सकता है। इस सैद्धांतिकी में 'लोगों' को गतिशील करके एवं राजनीतिक सक्रियताओं और पहलों द्वारा 'सत्ताशाली वर्ग' के विरूद्ध खड़ा किया जाता है। यह वर्गीय सहकार या वर्गीय साझेदारियों से परे जाकर एक अमूर्त्त समूह जिसका कोई निश्चित आकार नहीं हो, वैसी परिघटना की तरह 'जनता' का गठन होता है। 'सत्ता' का तात्पर्य वैसी व्यवस्था से है जिसमें किसी राजनीतिक व्यवस्था का लोगों के ऊपर समग्र वर्चस्व हो। लोकलुभावनवादी राजनीति में लोगों की पहल करने की क्षमता को उद्देलित करके सत्ता के समांतर सक्रिय किया जाता है। जिसमें 'जन सामान्य' की निर्मिती वर्ग एवं समूह के अन्य समाजिकताओं के परे जाकर होती है।

भारतीय संदर्भ में, पश्चिम की प्रचलित लोकप्रियतावादी राजनीति की सैद्धांतिकी बहुत प्रासंगिक सिद्ध नहीं होती है। हमारे यहाँ लोकलुभावनवादी राजनीति का विकास किसी पूर्वनिश्चित पश्चिमी सैद्धांतिकी के आधार पर ना होके स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार हुआ है। यह स्थापित मान्यताओं के परे जाने वाली परिघटना है। ममता बनर्जी के उदाहरण को अगर हम गहराई में विश्लेषित करें तो हम पाते हैं कि प्रारंभ में भले ही उन्होंने एक संघर्षधर्मी लड़ाकू राजनीति की लेकिन बाद के वर्षों में उन्होंने अपना 'जनआधार' तैयार करने के लिए जनकल्याणकारी एवं जन भावनाओं को समर्थन देने वाली राजनीति को अपनाया जिसने 'वामपंथ' की वर्चस्वी सत्ता वाली राजनीति का एक प्रभावी प्रतिपक्ष खड़ा किया। सत्ता में आने के

[26]जॉन बी, डयूडोस, रिथिंकींग पॉण्युलिडम, डिसेन्ट पत्रिका, 2018 बसंत।

बाद अभिशासन के द्वारा उन्होंने इस छवि को और मजबूत किया। यही बात अरविंद केजरीवाल और रमण सिंह के लिए भी बहुत हद तक सही है। रमण सिंह के मामले में उनको दिल्ली से छत्तीसगढ़ प्रदेश भाजपा अध्यक्ष बनाकर भेजा गया था जिसे कांग्रेस सरकार को चुनाव में हराने की जिम्मेदारी दी गई थी। ममता बनर्जी और अरविंद केजरीवाल से राजनीतिक यात्रा और नेतृत्व के वैचारिक गठन के मामले में रमण सिंह का उदाहरण थोड़ा अलग है। एक बार सत्ता में आने के बाद 2003 से ही रमण सिंह ने लोकलुभावन राजनीति की नयी पटकथा लिखी और पंचायती संस्थाओं के द्वारा लोगों को पहल करने के लिए प्रेरित किया। प्रशासनिक तौर तरीकों के द्वारा भले ही रमण सिंह ने जयादातर योजनएं लागू की लेकिन जन वितरण प्रणाली के गैर निजीकरण एवं जनसहभागिता द्वारा इसको एक सफल जन अभियान में बदल दिया। सरकारी नौकरशाही तंज को नकार कर जनता के हाथों में अधिकार देने एवं पर्यवेक्षण के अधिकार पर प्रभावी पारदर्शिता सुनिश्चित कर के रमण सिंह सरकार ने नवोन्मेषी पहलकदमी की। नैकरशाही एवं भ्रष्टाचारी कोटेदारों का गठजोड़ तोड़कर रमण सिंह ने अपार लोकप्रियता एवं जनसमर्थन प्राप्त किया।

यहाँ पर यह सवाल समीचीन है कि हम लोकलुभावनवादी राजनीति को भारतीय संदर्भो में केसे समझें। पश्चिमी अवधारणाओं के उलट, भारतीय संदर्भों में हम लोकलुभावनवाद को सरकारी–शासन समूह के व्यवस्थाओं एवं नीतिगत सक्रियता के बिना नहीं समझ सकते हैं। दूसरे शब्दों में इसे अभिशासन के ही वैचारिक आधारभूमि एवं दृष्टिकोण से समझा जा सकता है। जैसा कि रणबीर समद्दार कहते हैं– राज्य प्रशासन एवं शासकीय नीतियों के द्वारा अभिव्यक्त लोकलुभावनवाद को हमें विश्लेषण के केंद्र में रखना चाहिए और इसे उत्तर–औपनिवेशिक समाजों में इस परिघटना को समझने के लिए एक प्रतिमान के रूप में प्रयोग में लाना चाहिए।[27] चैटल मूफे ने यह तर्क दिया है कि राजनीति में 'जनसामान्य/लोग' एवं 'दुश्मन' के बीच अंतर किया जाना हरेक प्रकार की राजनीति में अनिवार्य घटना है और इसके बीच संघर्षात्मक प्रकृति की अवस्थिति होती है जिसे वह 'द्वंदात्मक' संबंधों पर

[27]रणबीर समद्दार, 31 अगस्त, 2019, पॉप्युलिज्म इन साउथ एशिया, उद्घाटन वकत्व्य, सी.आर.जी., कोलकाता।

आधारित व्यवस्था कहती है।[28] एक नृजातीयतावादी स्थानीयतावाद के परिप्रेक्ष्य में, यह प्रवासियों (यथा रोहिंग्या एवं बांग्लादेशी) या विदेशियों (यथा पाकिस्तानी और चीन के लोगों को) को दुश्मन की तरह देखता है जिसके साथ–साथ नक्सलवादियों को सबसे गंभीर किस्म का आंतरिक सुरक्षा खतरा करार दिया जाता है।

रमण सिंह और नक्सली मुद्दा

सन् 2005 में 'सलवा जूडूम' का भी गठन किया। यह आँदोलन राज्यव्यापी नक्सल विरोधी आँदोलन था जिसमें हथियार देकर आम आदिवासियों को नक्सलियों के विरूद्ध लामबंद किया गया। अपार हिंसा और हो हंगामे के बाद 2011 में सर्वोच्च न्यायालय ने इसे बंद करने और सभी हथियार वापस लेने का निर्णय दिया। यद्यपि इनके आंदोलन पर घोषित तौर पर पाबंदी लगा दी गई लेकिन अनौपचारिक रूप से किसी दूसरे नामों से संचालित होकर राज्य द्वारा पोषित एवं प्रयोजित होकर यह ग्रामीण आंदोलन चलता रहा। बस्तर जिले में इसके कारण हजारों लोगों को अपना घर–जमीन छोड़कर अन्यत्र विस्थापित होना पड़ा। सुरक्षा तंत्र द्वारा बसाए गए शिविरों में यह ग्रामीण युवा आबादी अमानवीय परिस्थितियों में रह रही थी। करीब 5000 लोगों ने बस्तर छोड़कर पड़ोस के राज्य आँध्र प्रदेश में शरण ली। एन.सी. सक्सेना इस संदर्भ में बताते है कि, वंचित समूहों के अंदर, आदिवासी विशेषकर गहन भारत के आदिवासी सबसे बुरी तरह से नक्सली हिंसा से एवं पुलिसिया दमन के दोहरे आघात से प्रभावित हुए हैं जंगल एवं जमीन के विरूद्ध खड़े आदिवासी विरोधी कानूनों ने उनका जीवन, कठिन बना दिया है। विस्थापन विरोधी कानूनों ने उनका जीवन कठिन बना दिया है। विस्थापन एवं कुप्रशासन की नाकामियों ने उनके लिए मुश्किल हालात पैदा किए हैं। पिछले 70 वर्षो में जंगल तक उनकी आजीविका के लिए निर्भरता एवं पहुंच में उत्तरोत्तर कमी आई है। 1952 की जंगल नीति, मनुष्य निर्मित जंगलों को मिश्रित जंगलों के ऊपर प्राथमिकता देती है, जिसमें गैर इंमारती लकड़ियों के उत्पादन को हतोत्साहित करके उद्योग एवं सरकारी विकास के नाम पर प्राकृतिक रूप से विकसित हुए जंग को निरर्थक बनाने का

[28]चैंटल मूफे, फॉर ए लेफ्ट पॉप्युलिज्म, वर्सो, 2018.

प्रयास किया गया है। रायगडा में कई आदिवासी महिलाओं को इसलिए गिरफ्तार कर लिया गया क्योंकि उन्होंने जंगली पौधों से बने झाड़ू अपने घर में रखे थे।

डा. सक्सेना इस तथ्य के तरफ भी इशारा करते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों के मामले में अमीर होने के बावजूद, मध्य भारत में अमानवीय गरीबी एवं निर्धनता भरी पड़ी है। उनका मानना है कि औद्योगिकीकरण के कारण पैदा हुए तथाकथित विकास ने विस्थापन को बढ़ावा दिया है। उनके अनुसार 1990 से लेकर वर्तमान में 85 लाख आदिवासी, जनता विस्थापित हुई। आदिवासी, भारत के 8 प्रतिशत आबादी के हिस्सेदार हैं लेकिन कहीं भी विस्थापित होने वाले लोगों में 55 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासी लोगों की थी। यह मुख्य रूप से राष्ट्रीय वन अक्यारण्यों के निर्माण बड़े बांध एवं औद्योगिक विकास, सुविधाओं एवं सहयोग के लिहाज से जंगल तक उनकी निर्बाध पहुंच को बाधित करने जैसी सनकी निर्णयों से सीधे सीधे जुड़ा मसला है। उनकी पहले से डांवाडोल अर्थव्यवस्था में इस सरकार के समाजिक एवं आर्थिक तंत्र पर बहुत बुरा असर पड़ा है। आजिविका का संकट, जमीन जबरदस्ती हस्तांतरण एवं बृहत पैमाने पर पलायन के कारण आदिवासी कई स्तरों पर शोषित रहे हैं।[29]

2011 की जनगणना के अनुसार छत्तीसगढ़ में आदिवासियों का प्रतिशत 30 है। नक्सली गतिविधियों का केंद्र बस्तर है जहाँ आदिवासी आबादी करीब 70 प्रतिशत तक चली जाती है। दोतरफा हिंसा की मार झेलते हुए आदिवासी समूह हमेशा से ठगे जाने लिए अभिशप्त हैं यह हमेशा से ही रहा है कि विकास की सर्वागीण पटकथा में आदिवासी हितों को सबसे आखिर में डाल दिया जाता है। बस्तर के प्राकृतिक खनिज एवं अन्य संसाधनों तक कार्पोरेट घरानों को निर्बाध छूट देने एवं स्थानीय जीवन पद्धति को बुरी तरह से प्रभावित करने के कारण भारत के पूंजीपति समूह को यहाँ पर प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। नक्सली लोग भी इन पूंजीपतियों से अपना हिस्सा लेकर अपने आंदोलन को चलाने के लिए आर्थिक संसाधन जुटाते हैं। पूर्वाधार विकास के किसी भी अभियान को वे हिंसक तरीके से

[29]एम.सी. सक्सेना के साथ बातचीत पर आधारित।

बंद करवाते हैं (सड़क, अस्पताल, बिजली, पानी) क्योंकि इससे वैकल्पिक आदिवासी अभिव्यक्ति एवं उनके गठजोड़ पर यह विचार यात्रा नकारात्मक असर डालती हैं।[30]

नक्सलवाद के लिए दोहरी रजनीति

प्रारंभ में रमण सिंह सरकार की रणनीति यह थी कि नक्सलवाद को छत्तीसगढ़ में अगर पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता है तो कम से कम उसको सीमाबद्ध करके रखा जाए। प्रारंभ में उग्रवादी वामपंथ के लिए एक आक्रामक एवं हिंसक रास्ता अख्तियार करने के बाद भारत सरकार एवं अन्य प्रभावित राज्य सरकारों ने अपनी रणनीति में बदलाव किया। 2008 में योजना आयोग नेएक विशेषज्ञ समूह के द्वारा एक विस्तृत प्रतिवेदन नक्सल प्रभावित इलाकों के लिए प्रस्तुत किया जिसा शीर्षक 'उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों के लिए विकास चुनौतियाँ' था। इस प्रतिवेदन में आदिवासी जीवन और उनके जमीन–जंगल अधिकारों को लेकर वामपंथी उग्रवाद के मुख्य कारकों में गिनाया गया। इस प्रतिवेदन में आदिवासी जीवन के अनवरत बहिष्करण की चर्चा की गई थी और विकास जनित कारकों के द्वारा उनके विस्थापन की चर्चा की गई थी। इस प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया गया कि सिर्फ सुरक्षात्मक उपायों से उग्रवादी वामपंथ पर काबू नहीं पाया जा सकता है। सुरक्षात्मक–निरोधात्मक उपायों के अलावे एक समग्र दृष्टीकोण की जरूरत को रेखांकित करते हुए यह कहा गया कि आदिवासी जीवन पद्धति को संरक्षित करते हुए उनके जल, जंगल–जमीन के अधिकारों को सुनिश्चित कर के ही उनको मुख्यधारा में वापस लाया जा सकता है।[31]

इस विशेषज्ञ समूह के प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए, रमण सिंह सरकार ने दोहरी राजनीति का सूत्रपात किया। ये सुरक्षा केंद्रीय और विकास केंद्रीय रणनीति को दोहरी व्यवस्था थी जिसमें संवाद को भी संघर्ष निवारण का एक मुख्य मार्ग माना गया। मुंबई में डा. रमण सिंह ने 2012 में एक वक्तव्य दिया कि – 'हमलोग वामपंथी उग्रवादियों का हृदय जीतने की कोशिश कर रहे हैं। हम लोग अपने

[30]नंदिनी सुंदर, माओवाद, बस्तर एवं सलवा जूडूम, ई.पी.डब्ल्यू., 22 जुलाई 2006.
[31]योजना आयोग, 2008.

कल्याणात्मक उपायों और जन वितरण प्रणाली के साथ उन तक पहुंचने का प्रयत्न कर रहे हैं। हम उन तक पहुंचने वाले हरेक सेतुओं का पुर्ननिर्माण करेंगे जो उन्होंने अबतक तोड़ दिये है।[32]

इस प्रकार उन्होंने बस्तर, कांकेर, सरगुजा इत्यादि जिलों में सघन विकास कार्यक्रमों के द्वारा नक्सलवादी गतिविधियों पर लगाम लगाने की कोशिश की। बस्तर में जन वितरण प्रणाली को मजबूत बनाकर धातु निर्मित सड़कोंके द्वारा जिला मुख्यालयों को सुदूरवर्त्ती क्षेत्रों से जोड़ा गया। अपने लोकलुभावनवादी कदमों के रास्ते मेंआनेवाले अड़चनोंएवं संस्थागत बाधाओं कोउन्होंने अतीत के कांग्रेसनीत शासन की विरासत के रूप में दिखलाया जिसे एक और दूसरे महत्वपूर्ण प्रतिद्वंदी एवं विकास विरोधी नक्सलियों के साथ खड़ाकर उन्होंने अपने 'जनता हितैषी' एवं जनप्रतिबद्ध नेतृत्व को छवि निर्माण के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

योजना आयोग के विशेष समूह द्वारा प्रस्तावित योजनाओं के द्वारा यूपीए–द्वितीय सरकार में एकीकृत कार्ययोजना (आई.ए.पी.) 2012 को प्रारंभ किया गया।[33] इस योजना के द्वारा अतिरक्त सहायता राशि एवं मदद को वामपंथी उग्रवाद प्रभावित 60 जिलों में (कुल 10 राज्यों में फैले) लागू किया गया जिसका विस्तार बाद में 76 जिलों तक किया गया। इन जिलों में छत्तीसगढ़ के 14 जनपद शामिल किए गए। 2010–2011 में जहाँ प्रत्येक जिले को 25 करोड़ रूप्ये दिए गए वहींबाद के वर्षों में 30 करोड़ की धनराशि अवमुक्त की गई। 2013 मेंइसका पुर्ननामाकरण कर के अतिरिक्त सहायता कार्यक्रम (ए.सी.ए.) कर दिया गया जिसे सार्वजनिक पूर्वाधार विकास कार्यक्रम एवं सेवाओं पर खर्च किया जाना था।[34]

सुरक्षा उपायों एवं सामाजिक विकास के समांतर कार्यक्रम के बावजूद राज्य में संतोषप्रद स्थिति तक नक्सली हिंसा को रोका नहीं जा सका। रमण सिंह के स्वर में इस बात की निराशा उनके इस वक्तव्य में प्रदर्शित होती है कि– संविधान हमें

[32]द हिन्दू, 7 अगस्त 2012 में उद्धत ।
[33]पयनियर, 4 अगस्त, 2012.
[34]भारत सरकार का गृह मंत्रालय, प्रेस इंर्फामेशन ब्यूरो, 4 मार्च 2015.

हमारे अपने ही लोगों के विरूद्ध सैन्य प्रयोग की ईजाजत नहीं देता है और न ही मेरा हृदय इस बात को स्वीकार करता है। सेना के प्रयोग में लाने पर यह समस्या चार घंटों में सुलझ सकती है, अगर हम काल्पनिक रूप से ऐसा मान ले तो। लेकिन मेरा स्पष्ट मत हैकि ऐसा कभी नहीं होना चाहिए।[35] बस्तर में विशेषकर विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देते हुए रमण सिंह ने यूपीए नीत सरकार पर विकास कार्यक्रमों में रूकावट पैदा करने के लिए पर्यावरण मानकों और आदिवासी जीवन पद्धति को संरक्षित करने की खोखली आड़ लेने का आरोप लगाया।[36] इस तरह के तर्क नवउदारवादी कॉर्पोरेट दुनिया में प्रमुखता से दिए जा रहे थे। इन कॉर्पोरेट ताकतों का मध्य भारत के खनिज संपदा क्षेत्रों में निर्बाध प्रवेश का ईरादा था कि वो अपने कल कारखाने एवं खनन अधिकारों को फिर से प्राप्त कर सकें। इसी कारण से योजना आयोग के विशेषज्ञ समूह ने समग्र रणनीति की प्रस्तावना की थी।

रमण सिंह सरकार के लोकलुभावनवादी नीतियों और उसके कार्य–कारण प्रभावित का प्रत्यक्ष संबंध नक्सली गतिविधियों मेंकमी आनेको लेकर कोई नीतिगत दस्तावेज तोउपलब्ध नहीं हैं। लेकिन इस संदर्भ में यह सत्य के काफी करीब होगा कि हम यह उनके लोकप्रिय कारकों में एक प्रमुख तत्व के रूप में मौजूद रहाहै। एक स्थानीय साप्ताहिक पत्रिका को दिए साक्षात्कार में छत्तीसगढ़ के वर्तमान मुख्य मंत्री भूपेश बघेल ने यह ईमानदार स्वीकरोक्ति कि – नक्सली हिंसा का अंत हिंसा और बंदूकों से नहीं हो सकता है। यह संवाद से ही संभव है। उनके अनुसार नक्सली हिंसा के मूल में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारण हैं। हम हरेक हितग्राही समूहों से बात करने के हिमायती हैं। बस्तर से सरगुजा तक के आदिवासी ईलाकों में हम आदिवासी जीवन पद्धति के अनुरूप विकास कार्यक्रम चलाऐंगे।[37]

प्रतिस्पर्धात्मक जनतंत्र

[35]इंडियन एक्सप्रेस में उद्धत।
[36]उपरोक्त।
[37]उपरोक्त।

हमें यह तथ्य नहीं भूलना चाहिए कि रमण सिंह की लोकलुभावनवादी नीतियों की पृष्ठभूमि में एक प्रतिस्पधात्मिक जनतांत्रिक व्यवहार मौजूद था। राजनीतिक गतिशीलता में अधिकतम लोगों की भागीदारी और समाज के विभिन्न तबकों तक राजनीतिक व्यवस्था के लाभांशों को ले जाने के कारण 'लोगों' का स्वाभाविक जुड़ाव राजनीतिक व्यवस्था के साथ होता है।रमण सिंह को 2018 में चुनावी हार का सामना तीन लगातार चुनावों में सफलता के बाद करना पड़ा। किसानों के शत–प्रतिशत कर्ज माफी के कारण कांग्रेस के चुनावी अभियान को जबरदस्त सफलता मिली और वो जबरदस्त तरीके से सफल रहे। रमण सिंह ने ग्रामीण महिलाओं को 55 लाख मोबाईल फोन देने का वादा और जन वितरण प्रणालीमें गुणात्मक सुधार कर के अपने अभियान को गति देने की कोशिश की लेकिन वो सफल नहीं हो सके। भाजपा और कांग्रेस दोनों ने नक्सली समस्या पर चुनावी लफ्फाजी नहीं कि क्योंकि उनके पता था कि वो उसे प्रभावी तरीके से नियंत्रित करने में असफल सिद्ध हुए है।

सत्ता मेंआने के बाद कांग्रेस सरकार ने 16.65 लाख किसानों का अल्पकालीन ऋण माफ करने का कार्य किया। अगले छः महिने में, कांग्रेस सरकार ने यह इंगित किया कि वह पूर्ववर्त्ती सरकार के लोकलुभावन योजनाओं को खत्म नहीं करके उसे ओर ज्यादा बेहतर करने का प्रयास करेंगे। विकास कार्यों के लिए अधिग्रहण की जाने वाली कृषि भूमि पर इस सरकार ने चार गुणा क्षतिपूर्ति राशि देने की प्रतिबद्धता दिखाई। पहले के रमण सिंह सरकार में यह सिर्फ दो गुनी ज्यादा थी। धान के खरीद पर न्यूनतम समर्थन मूल्य भी इस सरकार में अपेक्षाकृत वृद्धि से ज्यादा मात्रा में बढ़ाया गया। 16 फरवरी 2019 को इस सरकार ने 'सिंगूर' की ही तरह टाटा स्टील को दी गई जमीन को किसानों को वापस लौटाने के लिए एक कानून पारित किया। चित्रकूट विधान सभा क्षेत्र में 2500 एकड़ जमीन को टाटा समूह को 2005 में रमण सिंह सरकार ने प्रदान किया था। लेकिन किसान इस मामले में नाराज थे और 1707 प्रभावित परिवारों में एक तिहाई किसानों ने क्षतिपूर्ति राशि लेने से मना

कर दिया था। सिंगूर की ही तरह, छत्तीसगढ़ में भी टाटा समूह को कांग्रेस सरकार आने पर अपनी जमीन वापस करना पड़ा।[38]

भूपेश बघेल सरकार के अद्यतन प्रचार अभियानों में यह दावा किया गया कि 18 लाख 5 हजार किसानों का कुल 8818 करोड़ रूपया ऋृण माफ किया गया। 207 करोड़ का सिंचाई ऋण भी किसानों का माफ कर दिया गया। आदिवासी समाज के हित में तेंदू पत्ते के संग्रहण के लिए प्रति बोरे 4000 रूपये की राशि तय की गई। जन वितरण प्रणाली में, गरीबी रेखा से नीचे निवास करने वाले परिवारों के छः सदस्य के लिए भी 35 किलों के अतिरिक्त 7 कीलो चावल देने का आदेश जारी किया गया।[39] गरीबी रेखा के ऊपर के परिवारों के लिए 10 रूपये प्रति किलो चावल देने का निर्णय लिया गया। 2500 प्रति क्विंटल की दर से 80.37 मिट्रीक टन धान खरीद किया गया और यह दावा किया गया कि यह किसी भी राज्य में दी जाने वाली अधिकतम समर्थन मूल्य है। 5 डिसमिल जमीन से कमकी खरीद एवं बिक्री पर लगाया गया प्रतिबंध समाप्त कर के नयी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करने का प्रयत्न किया गया। सरकारी विभागों में खाली हजारों पदों को भरने का समयबद्ध कार्यक्रम चलाने का वादा करके आदिवासी क्षेत्रों में तीन कनिष्ठ कर्मचारी चयन आयोग बनाए गए।

लोकलुभावनवादी राजनीति की कमान रमण सिंह से परिवर्तित होकर भूपेश बघेल तक आ गई है।

[38]छत्तीसगढ़ जन–मन (हिन्दी), 28 फरवरी – 7 मार्च 2019.
[39]आउटलुक पत्रिका में दिया गया प्रचार, अक्टूबर–नवंबर 2019.

पश्चिम बंगाल में कन्याश्री योजना : लोकलुभावनवाद एवं शासकीय स्त्रीवाद

रिया डे

कन्याश्री योजना पर एक विहंगम दृष्टि

किसी भी सरकारी योजना या नीतिगत कार्यक्रम का गहन विश्लेषण अनिवार्य रुप से उस विशिष्ट योजना का शासन के एक प्रारुप के तौर पर शासकीय भावना के साथ अध्ययन है। इस कार्यक्रमों के द्वारा जनता को संकेतित किया जाता है, उसकी परिभाषिक स्थिति, उनके वर्गीकरण और कल्याण के लिए शासन प्रयास करता है और जन सामान्य के साथ संबंध निर्मित कर के अपने शासन के लिए उपयुक्त नागरिकता का निर्माण करता है। यह अनिवार्य रुप से शासन के एक विशिष्ट पक्ष का अध्ययन है जिसके द्वारा राज्य अपने कार्यकलापों में अभिव्यक्त होता है। तृणमूल पार्टी द्वारा पश्चिम बंगाल में कन्याश्री योजना चलाई जा रही है जिसका अध्ययन इस शोधपत्र में किया गया है। यह एक सांदर्भिक अध्ययन प्रस्तुत करता है क्योंकि इसमें प्रस्तुति, समयानुकुलता (करीब 6 वर्षों से यह अनवरत चल रहा है), इसका व्यवस्थित स्वरुप और इसके जनसमर्थन के पीछे के कारणों का अध्ययन यहाँ पर समीचीन होगा। बहिष्करण के अल्पकालिक लक्ष्यों से परे जाकर यह एक समावेशी योजना का रुपाकार ग्रहण कर चुकी है। पश्चिम बंगाल की शिक्षा व्यवस्था के साथ सहकार बना के इसने शहरी क्षेत्रों में भी अपना क्षेत्र विस्तार किया है। यह एक तरह से जनसंचार के हरेक माध्यमों पर जबरदस्त तरीके से दृश्यमान है जिसमें इंटरनेट का भी सघनतम उपयोग किया है। अभिशासन के साथ, अगर हम कह सकें तो, जनता की सामान्य इच्छा का किस तरह से सहकार निर्मित होता है। इसका एक सफल उदाहरण, कन्याश्री योजना में अभिव्यक्त होता है जिसमें जन भागीदारी एवं सामाजिक–सांस्कृतिक गतिशीलता के सारे तत्व प्रदर्शित होते है। यह नौकरशाही के भी तकनीकी प्रक्रियाओं की जटिलता एवं उसकी व्यवस्थापरक दुनिया का एक बढ़िया उदाहरण है। यहाँ पर सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा लैंगिक न्याय का भी है। इस शोधपत्र में एक कल्याण योजना के गहन

विश्लेषण के द्वारा लोकलुभावनवादी राजनीति को उसके अपने शर्तों पर अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें समकालीन प्रशासन एवं लोकप्रियतावाद का गहन अध्ययन तो किया ही गया है, साथ ही साथ इसका अखिल भारतीय संदर्भ भी यहाँ पर विचारणीय मुद्दा है।

इस शोधपत्र में सर्वप्रथम कन्याश्री प्रकल्प का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और इसके व्यवहारिक पक्ष एवं कार्यन्वयन के तौर तरीकों का भी विश्लेषण किया गया है। इसके पश्चात इसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण इसमें जनभागीदारी एवं सक्रियतावाद के नजरिये से करने का प्रयत्न किया गया है। जनता की आत्मअभिव्यक्ति एवं सरकार के साथ प्रारंभ किए गए संवाद के द्वारा इस हिस्से में विश्लेषण का प्रयास किया गया है। तीसरे हिस्से में शोधार्थी द्वारा बीरभूम एवं मुर्शिदाबाद जनपद में किए क्षेत्र अध्ययन की गहन विवेचना के द्वारा निष्कर्ष निकाले गए हैं। अंतिम निर्णय द्वारा यह समझने का प्रयास किया गया है कि लोकलुभावनवादी राजनीति की अनिवार्य रणनीति की भूमिका में यह योजना क्यों अनिवार्य रुप से पश्चिम बंगाल के विशिष्ट संदर्भ में सफल एवं जनसंवेदी प्रशासन के हिसाब से सही सिद्ध हुई है।

सुश्री ममता बनर्जी सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए इस योजना को महिला विकास एवं सामाजिक कल्याण मंत्रालय ने कार्यन्वित किया है। इस योजना के अंतर्गत सत्रियों–लड़कियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास के लिए (2013 से प्रारंभ) प्रत्यक्ष मुद्रा हस्तांतरण की नीति अपनाई गई है। इसका लक्ष्य बाल विवाह की रोकथाम एवं स्त्री साक्षरता की दर में गुणात्मक वृद्धि के द्वारा पश्चिम बंगाल में मानवीय विकास के लिए अनुकूल परिष्टियों का निर्माण करना है। महिलाओं की अवैध तस्करी, बाल–विवाह इत्यादि पर भी इस योजना में रोकथाम के प्रमुख उपाय किए गए हैं। इस योजना के प्रारंभिक लक्ष्यों में लड़कियों को, जो खासकर पिछड़े आर्थिक तबकों से आती हैं, शिक्षा के साथ जोड़ना था ताकि बाल विवाह पर लगाम लगाई जा सके और सामाजिक दबावों के बिना आत्मनिर्भरता हासिल कर सके। पिछले एक वर्ष से इस योजना को बिना किसी आर्थिक विभेद के सभी बालिकाओं तक लागू किया गया। वर्तमान समय में इस योजना के तीन हिस्से हैं–

प्रथम भाग में 13 से 18 वर्ष की बालिकाओं को अपने शिक्षा प्राप्ति के दौरान (अविवाहिता रहने पर और विद्यालय में न्यूनतम तय उपस्थिति दर्ज कराने पर) 1000 रुपये प्रतिवर्ष की छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।

द्वितीय हिस्से में, एकमुश्त 25000 की राशि सभी बालिकाओं को 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर दी जाती है। इसमें भी वह शर्त है कि वे अविवाहित हों, शिक्षा या किसी व्यवसाय/कार्य में नियोजित हों।

तृतीय हिस्से में कन्याश्री प्रकल्प में वैसे लाभार्थी जो कन्याश्री योजना के द्वितीय भाग में पहले से लाभ प्राप्त कर रहे हों और अब परास्नातक पाठ्यक्रम में अपना नामांकन कराए हों वे इसके तृतीय हिस्से में छात्रवृत्ति पाने के लिए अर्हता पाते हैं। स्वामी विवेकानन्द छात्रवृत्ति योजना के अंतर्गत 45 प्रतिशत अंक न्यूनतम (स्तर स्नातक हो) प्राप्त करने वाले किसी भी लड़की को पश्चिम बंगाल के अंतर्गत परास्नातक में नामांकन कराने पर छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी। कला एवं वाणिज्य संवर्ग की छात्राओं को 2000 रुपये प्रतिमाह एवं विज्ञान वर्ग में 2500 रुपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी। इसके लिए अविवाहित होने की कोई बाध्यता नहीं है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कन्याश्री योजना में मैट्रिक लाभ के द्वारा स्त्री शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता के द्वारा स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में प्रयास किए गए है। उच्चतर प्रतिशत पाए जाने वाले बालिकाओं के विद्यालय छोड़ने की हर में गुणात्मक सुधार से लेकर इसके लिए वित्तीय लाभांशा देने की व्यवस्था की गई है। इस संदर्भ में शिक्षा व्यवस्था में बालिकाओं के विद्यालय नहीं जाने के उपर इस योजना के प्रभाव को लेकर मिश्रित परिणामों वाले अध्ययन हुए हैं।

इस योजना के क्रियान्वयन में विभिन्न तरह की जनसांख्यिकी से संबंधित प्रतिमान प्रदर्शित होते हैं। सफलता और असफलता के संदर्भ में कई तरह के दावे–प्रतिदावे प्रचलित हैं। बहस इस बात को भी लेकर होती रही है कि यह योजना ग्रामीण बंगाल में ज्यादा सफल रही है या शहरी क्षेत्रों में ? क्या इसके प्रभाविता के क्षेत्रों में सफलता की प्रकृति एवं क्षेत्र अलग–अलग रहे हैं यह भी विचारणीय प्रश्न है। इस तरह के सवालों को इस शोध प्रपत्र

में उत्तरित करने की आंशिक रुप से चेष्टा की गई है। आगे के हिस्से में जन संचार एवं प्रभाव–प्रसार के नजर से कन्याश्री योजना का विश्लेषण किया गया है। यह योजना किस प्रकार से पश्चिम बंगाल सरकार की सबसे महत्वपूर्ण योजना बन गई और सरकार की ही सिर्फ सफलता का परिचायक न होकर तृणमूल कांगेस की चुनावी सफलता का भी वाहक बनी है। इस योजना ने मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की लैंगिक न्याय एवं स्त्राी अधिकारों की प्रबल समर्थक छवि को और मजबूती प्रदान की है।

कन्याश्री योजना : एक सामाजिक–अर्थिक/सांस्कृतिक परिघटना

इस विशिष्ट योजना का पश्चिम बंगाल शासन ने जबरदस्त तरीके से विभिन्न जनसंचार माध्यमों से प्रचार–प्रसार किया है। मुद्रण से लेकर आभासी दुनिया तक, मास मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक इस योजना को प्रचारित किया गया है। दिवाल पर भित्ती चित्र से लेकर सांस्कृतिक–कलात्मक आयोजनों तक इसको एक जनांदोलन का रुप दिया गया है। 14 अगस्त को कन्याश्री दिवस मनाने की घोषणा कर के, इस योजना को विद्यालय के पाठ्यक्रम में भी स्थान दिया गया है। 14 अगस्त को मुख्यमंत्री की तरफ से एक वृहद शासकीय आयोजन कर के कन्याश्री योजना के पुरस्कार विजोतओं को सम्मान दिया जाता है। अकादमिक एवं अन्य सृजनात्मक गतिविधियों में विशिष्ट स्थान प्रापत करने वाले बालिकाओं को राज्य से लेकर खंड विकास क्षेत्रों तक सम्मानित किया जाता हें बलिकाओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी की जाती है।

इस वर्ष ममता बनर्जी की सरकार ने कन्याश्री विश्वविद्यालय की भी नींव रखी है। इसके अलावा, इस योजना के अंतर्गत कई तरह के स्वायत्त संरचनाओं का गठन किया गया है जिसे 'कन्याश्री संघ' या कन्याश्री कमिटी का नाम दिया गया है जिसके सदस्यों को कान्याश्री जोद्धा (योद्धा) कहा जाता है। इस सब योद्धाओं द्वारा अपने स्थानीय समुदायों के अंतर्गत विभिन्न सांस्कृतिक एवं जागरुकता जगाने वाले कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। विभिन्न शैक्षणिक कर्मचारियों एवं शिक्षकों के सहयोग से इन कार्यक्रमों के द्वारा उन अभिभावकों को हतोत्साहित किया जाता है जिन्होंने बाल–विवाह का समर्थन किया हो या जिनकी लड़कियाँ विद्यालय नहीं जा रही है। कन्याओं के अल्प वयस्क विवाह को लेकर

ऐसे कई प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं जहाँ पर बाल–विवाह को त्वरित प्रक्रिया देकर रोका गया है और इन लड़कियों का उचित पुर्नवास कराया गया। हाल के दिनों में सरकार की पूरी प्रचार व्यवस्था में दृश्य माध्यमों में कन्याश्री योजना ही केंद्रीय तरीके से स्थान बनाए रही। इसकी केंद्रीय महत्ता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि इस योजना का मुख्य प्रचार जीत खुद मुख्यमंत्री ने लिखा है और बंगाल की प्रसिद्ध गायिका लोपामुद्रा मिश्रा ने इसे सस्वर गाया है। जन जागरुकता अभियान के अंतर्गत सोशल मीडिया का भी सार्थक प्रयोग किया गया। इस योजना के अलावा इसके तकनीकी पक्षों और नौकरशाही के विभिन्न प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं का भी जोर शोर से प्रचार–प्रसार किया गया। जिला स्तर पर भी स्थानीय पर आधारित गान के कारण ही कई सारे बाऊल गायकों और कलाकारों ने इस अभियान में अपना स्वर दिया है। इस योजना के संभावित लाभार्थियों के लिए कई सारे लोगों ने सोशल मीडिया पर उपयोगी सूचनाएं एवं ज्ञान का विस्तार करने हेतु तमाम जानकारियाँ संप्रेषित की हैं। बहुस्तरीय तकनीकी जटिलताओं एवं वर्ष के अंत में लागातार पुर्ननवीकरण कराने की बाध्यताओं ने इस योजना को कई सारे तकनीकी प्रश्नानूकलता से भर दिया है। छात्रवृत्ति प्राप्त करने का सबसें एक खास प्रकार का तकनीकी पक्ष है। बांकुड़ा जिला पोलिश विभाग ने एक बाऊल गान की रचना गोलोक बिहारी महतो की आवाज में की है जिसमें यू ट्यूब चैनल पर लड़कियों के परिवार वालों से यह अपेक्षा की गई है कि वह बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करेंगे और विवाह बिना वयस्क हुए नहीं करेंगे। इन से संबंधित कई सारे विडियों और उन पर आने वाले समर्थन या विरोध की असंख्य टिप्पणीयों के द्वारा इस कार्यक्रम की जनमानस में पकड़ को समझा जा सकता है। विभिन्न अभिभावकों द्वारा इस कार्यक्रम के बारे में टिप्पणियाँ दर्ज की गई हैं और छात्रवृत्ति प्राप्त करने के मार्ग में आने वाली बाधाओं के बारे में बताया गया है। वे आवेदन पत्र को भरने में आने वाली दुश्वारियों के बारे में बात करते हैं जिसमें तकनीकी गलतियों एवं खंड विकास कार्यालय एवं अधिकारी के समक्ष आने वाली परेशानियों के बारे में बात करते हैं। सभी विद्यालयों से प्राप्त आवेदनों को इसी कार्यालय में निष्पादित किया जाता है। सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध वीडियोज में कम से कम 300 ऐसे विशेष वीडियों हैं जिसमें सिर्फ आवेदन करने के तरीकों के बारे में समझाया गया है। 2500 से लेकर 45000 लोगों ने इस वीडियों को देखा

है। कुछ वीडियों में विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक स्तर की परीक्षाओं में कन्याश्री योजना के बारे में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं। 2019 के आम चुनावों के पहले, कन्याश्री योजना के लाभार्थियों के द्वारा तृणमूल कांग्रेस के लिए चुनाव प्रचार भी किया गया। कुछ लाभार्थियों द्वारा तृणमूल के चुनाव चिन्ह के साथ–साथ कन्याश्री योजना के प्रतीक चिन्ह को भी दिवालों पर अंकित किया गया। आनंद बाजार पत्रिका द्वारा लगातार कन्याश्री योजना के बारे में खबर छापी गई और कन्याश्री संघ के कार्यकलापों के बारे में विस्तृत खबर दी गई।

स्थानीय विद्यालयों से प्रारंभ होकर जनसंचार के माध्यमों द्वारा सार्वजनिक जगहों पर कोलकाता में वृहत प्रचार अभियानों के द्वारा शहरी एवं अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में जनजीवन के हरेक परिप्रेक्ष्य में यह योजना सार्वजनीक उपस्थिती दर्ज कराती है। कन्याश्री योजना के वृहत सामाजिक–सांस्कृतिक उपस्थिति को हम यूट्यूब चैनल पर उसके विविध प्रसंगों एवं कार्यक्रमों के द्वारा समझ सकते हैं। स्थानीय स्तर पर आयोजित प्रश्नोत्तरी कार्यक्रमों से लेकर सांस्कृतिक उत्सवों नाटकों, खेल एवं अन्य सार्वजनिक आयोजनों द्वारा स्थानीय आबादी को इसके साथ सक्रिय तरीके से जोड़ा गया है। ममता बनर्जी के अथक भागीरथ प्रयासों के छवि निर्माण के साथ–साथ बालिकाओं के सशक्तिकरण के जन अभियान को बेहद तन्मयता से जोड़ा गया है। इस अभियान में करिश्माई नेतृत्व, जनकल्याण, शासन एवं जन सामान्य के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन की एक विशिष्ट सामुहिक प्रस्तुती को अंर्तगुंफित करके वर्तमान मुख्यमंत्री की एक विराट छवि को गढ़ा गया है। इस बात का महत्व इस तथ्य में अंर्तनिहित है कि संवैधानिक प्रावधानों के साथ–साथ स्त्राी सशक्तिकरण के लिए एक दृश्यमान संस्कृति के अंतर्गत एक विस्तृत जनजागरुकता कार्यक्रम चलाया गया है जिसने ममता बनर्जी को ना केवल लोकप्रियता दी है बल्कि इसके चुनावी लाभांशों से भी इंकार नहीं किया जा सकता है।

जैसा कि पहले भी विश्लेषित किया गया है कि इस योजना के लाभार्थियों के नामांकन के लिए खंड विकास कार्यालयों एवं विद्यालयों को मुख्य केंद्र बनाया गया है। शोधार्थी द्वारा अपने क्षेत्र अध्ययन के दौरान दो विद्यालयों (बीरभूम जिले मे लाभपुर बालिका उच्च विद्यालय एवं मुर्शिदाबार जिले में शतितारा एन.जी.एन.एस विद्यापीठ उच्च विद्यालय) में

शोधार्थी ने पाया कि कन्याश्री योजना के लिए विशिष्ट शिक्षकों एवं लिपिकों की नियुक्ति की गई है। इनका कार्य लाभार्थियों के आवेदनों को निष्पादित करना, सही तरीके से आवेदन पत्र को भरना (यह एक दुष्कर एवं श्रमसाध्य कार्य है क्योंकि ज्यादातर अभिभावक अल्प शिक्षित या अशिक्षित हैं जिनके पास नौकरशाही के तकनीकी पक्षों का इतना ज्ञान नहीं हैं) और इन प्रसंस्करित आवेदनों को खंड विकास अधिकारियों के कंप्यूटर सर्वर पर अपलोड करने का है। बहुत कम विद्यालयों में जहाँ इंटरनेट की सुविधा है यह कार्य विद्यालय स्तर पर होता है नहीं तो ज्यादातर मामलों में यह कार्य खंड विकास कार्यालयों में ही हो पाता है। पहचान के विभिन्न पत्रों के अलावा विद्यार्थियों को अपने पंचायतों से सत्यापित यह प्रमाणपत्र भी देना होता है कि वे आवेदन करते समय अविवाहित हैं यह जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है इस योजना का लाभ लेने के लिए एक अनिवार्य शर्त है। नामांकन एवं प्रमाणन के इस जटिल प्रक्रिया में विद्यार्थी, शिक्षक, प्रधानाध्यापक (जो प्रमाणन अधिकारी होता है) के बीच एक जटिल लेकिन सक्रिय संबंध इस पूरी प्रक्रिया में निर्मित होता है। किसी भी अन्य कल्याण योजना की ही तरह एक खास तरह के लाभार्थी समूह का निर्माण किया जाता है जिसे राज्य द्वारा अविलंब सक्रिय सहयोग की दरकार होती है। एकमात्र बालिका वाले परिवारों को खासकर इस कल्याण योजना में सबसे ज्यादा प्रभावित परिवार माना जाता है। जिसके साथ बालविवाह या मानव तस्करी का सबसे ज्यादा खतरा रहता है और जिसे अविलंब मदद एवं सहयोग की जरुरत होती है। यहाँ पर मूलभूत प्रश्न यह है कि एकल बालिकाओं को 'समस्या के जड़ में' मानकर क्या इस बहाने सामाजिक–राजनीतिक पहलकदमियों को चुनावी नजरिये से गतिशील किया जाता है? क्या वित्तीय मदद के द्वारा उन निम्न एवं निर्धन परिवारों तक आय के वैकल्पिक श्रोतों को प्रदान करने के कारण उनकी पारिवारिक जरुरतों को पूरा किया जाता है?

शोधकर्त्ता ने इस संदर्भ में वैयक्तिक साक्षात्कारों एवं समूह परिचर्चा के द्वारा कन्याश्री योजना के लाभार्थियों से बात की। इन दोनों विद्यालयों के लाभार्थी समूहों से बात करने के कारण शोधार्थी का ज्यादा ध्यान इस प्रश्न का उत्तर जानने में था कि कन्याश्री योजना किस किस प्रकार से इन लाभार्थियों की मदद कर पा रही है। शिक्षा एवं विद्यालय छोड़ देने के लक्ष्य को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से चलाई गई इस योजना के ओर कौन से सकारात्मक

परिणाम प्राप्त हुए, इसका उत्तर खोजने के लिए शोधकर्त्ता उत्सुक थी। उसका ध्यान प्राप्त वित्तीय मदद के खर्च करने के तौर तरीकों को जानने में था। क्या किसी वर्गीय, जातीय, क्षेत्रीय, धार्मिक प्रतिमानों के द्वारा इन छात्रवृत्तियों का खर्च करने के तौर तरीकों पर असर डाला गया? शोधार्थी ने विद्यार्थियों के द्वारा नौकरशाही की जटिलताओं एवं इसके तनकीकी प्रभावों को असर जानने की भी चेष्टा की।

इस संदर्भ में यह बात ध्यातव्य है कि इस प्रक्रियाओं द्वारा एक नए प्रकार का विमर्श एवं आख्यान प्रस्तुत किया गया है। मुसलमान उत्तरदाताओं के आशंकाओं एवं चिंताओं ने इस पूरे विमर्श में एक नया पाठ प्रस्तुत किया। मुसलमान बालिकाओं का गुप्त तरीके से विवाह एवं उपरी स्तर पर किसी अविवाहित या विवाहित लडकी के बीच सांस्कृतिक तरीके से भेद नहीं कर पाने की अयोग्यता ने किस प्रकार इस विमर्श को एक नया आयाम दिया, यह जानना भी काफी ज्ञानवर्धक था। सतीतारा उच्च विद्यालय के प्रधानाध्यापक जो खुद ही एक पुरुष एवं मुसलमान थे उन्होंने जोर देकर कहा कि वो विवाहित एवं गैरविवाहित लड़कियों के बीच विभेद कर सकते हैं और इन लड़कियों को कन्याश्री योजना का लाभार्थी बनाने से रोकने के लिए समयानुकूल हस्तक्षेप करते हैं। कक्षा का वातावरण भी मुसलमान एवं गैरमुसलमान छात्राओं के बीच प्रतिस्पर्धी बातावरण से भर गया है। गैर मुसलमान छात्राओं का यह आरोप था कि मुसलमान लड़कियाँ गुप्त तरीके से विवाह कर के भी इसका लाभ ले रही हैं और कई मामलों में द्वितीय स्तर के 25000 रुपये का आर्थिक लाभ पाकर अपने विवाह के दहेज के लिए वह रुपया खर्च किया जाता है। वहीं मुसलमान लड़कियों ने इस तरह के 'रुढ़ीबद्ध धारणा' का जोरदार खंडन किया और बताया कि 1000 रुपये की मदद उनके परिवारों के अल्प आय में थोड़ी बहुत राहत लेकर आती है। सच्चाई यह है कि कई सारे मुस्लिम लड़कियों को स्कूली शिक्षा खत्म करने के उपरांत भी शादी नहीं हो पाती है क्योंकि वो बहुत गरीब हैं। कई सारे लड़कियों को निजी नर्सिंग विद्यालयों में लाखों रुपये की धोखाधड़ी का शिकार होना पड़ा है जो आर्थिक रुप से इन परिवारों पर बहुत ही भारी पड़ा है।

शोधकर्त्ता ने इसी के समानान्तर एक प्रश्न और पूछा कि क्या लड़कियों के इस 'अविवाहित' होने के अनिवार्यता को पुर्नपरिभाषित करने की जरुरत है? ये दोनों विद्यालय किस प्रकार

से इस अनिवार्यता के साथ अपना संबंध निर्वाह करते हैं? दोनों विद्यालयों में, जहाँ शोधकर्त्ता ने अपना अध्ययन किया था, इस प्रश्न को अलग–अलग तरीके से संदर्भित किया था। पहले विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने बताया कि लड़की के विवाहिता होने या ना होने से ज्यादा जरुरी यह प्रश्न था कि इन बालिकाओं की विद्यालय में उपस्थिति संतोषजनक है या नहीं। उनका मानना था कि लड़कियाँ विद्यालय में लौटें और उनके विद्या प्राप्त करने के मार्ग में कोई बाधा नहीं हो। यह संभवतः इस कारण से भी था कि इस विद्यालय में नामांकन दर अभी भी कम था। वहीं दुसरे विद्यालय में पिछले 5 वर्षों में (जब से यह योजना प्रारंभ की गई थी) बालिका नामांकन दर में जबरदस्त उछाल आया था। स्वाभाविक था कि दुसरे विद्यालय में नियमों एवं प्रतिबंधों को लेकर ज्यादा कड़ाई थी। दोनों विद्यालयों के सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में भी काफी अंतर था। यद्यपि दोनों ही ग्रामीण परिवेश में स्थित थे लेकिन दोनों के प्रभाव क्षेत्रों एवं इस योजना के अंतिम निष्कर्ष में अंतर परिलक्षित हुआ। शोधकर्त्ता ने यह भी पाया कि दूसरे विद्यालय में इस योजना के लाभांशों एवं तकनीकी समझ को लेकर ज्यादा सजगता थी। विद्यार्थियों को इस योजना के बारे में बेहतर तरीके से मालूम था एवं उनकी जागरुकता का स्तर पर यहाँ ज्यादा पाया गया। ज्यादातर मध्यवर्गीय विद्यार्थियों का पैसा यूं ही उनके बैंक खातों में जमा था। कुछ छात्राओं ने बताया कि उन्होंने इन पैसों से पाठ्यक्रम की किताबें खरीदीं वहीं निम्नवत आय वर्ग की लड़कियों ने इन पैसों को अपने परिवार की जरुरतों के उपर खर्च करने के लिए उपयोग किया। मुसलमान लड़कियों ने यह ज्यादा पाया गया कि क्योंकि उनके भाईयों ने पढ़ाई छोड़कर प्रवासन के द्वारा मुंबई, चेन्नई, दिल्ली या खाड़ी देशों की राह पकड़ ली थी। दोनों विद्यालयों के प्राधानाध्यापकों द्वारा कन्याश्री द्वारा बालिकाओं के नामांकन दर पर सकारात्मक असर को रेखांकित किया गया लेकिन इनकी शैक्षणिक उपलब्धियों एवं आकांक्षाओं में गुणात्मक अंतर पाया गया। पिछड़े आर्थिक एवं कमजोर सामाजिक तबकों से आने वाले ग्रामीण अंचल के इन विद्यालयों में विद्यालयी शिक्षा के उपरांत उच्चतर कक्षाओं के लिए ज्यादा आकांक्षा नहीं पायी गई। ज्यादातर लड़कियों की विद्यालयी शिक्षा के बाद नर्सिंग विद्यालयों में नामांकन की इच्छा थी। ताकि वो कहीं पर शिक्षिका की नौकरनी पा सकें। वहीं दूसरी विद्यालय में कई लड़कियों ने उच्चतर शिक्षा में प्रवेश लिया एवं

कला–मानविकी जैसे विषयों से स्नातक एवं परास्नातक कार्यक्रमों में नामांकन कराया। कन्याश्री योजना की सफलता को एकल तरीके से ना देखकर इसे विद्यालयी शिक्षा के अन्य योजनाओं के साथ देखे जाने की भी जरुरत है। उदाहरणस्वरुप 'सबजु साथी' योजना जिसमें विद्यार्थियों को साइकिल दिया गया है। मध्याहन भोजन योजना, 'रुपाश्री' योजना जिसमें विवाह के लिए 25000 की मदद का प्रवधान है, जैसी योजनाओं के साथ–साथ कन्याश्री योजना को देखने की जरुरत है। कई छात्राओं ने यह बताया कि कन्याश्री योजना के द्वितीय स्तर पर प्राप्त 25000 रुपये के साथ रुपाश्री योजना के अंतर्गत मिले अन्य 25000 रुपये को मिलाकर उनके विवाह का खर्च निकाला जाएगा। दोनों विद्यालयों के प्रधानाचार्यों ने यह तर्क दिया कि 'रुपाश्री' योजना (जो कि 2018 में घोषित की गई थी) के द्वारा कन्याश्री योजना में घोषित लक्ष्यों को एक तरह से नकारने का काम किया है क्योंकि कन्याश्री योजना का लक्ष्य कन्याओं के लिए उच्चतर शिक्षा में प्रवेश एवं प्रोत्साहन बढ़ाना है ना कि उनके विवाह के लिए धन उपलबध कराना। वहीं कई लड़कियों ने यह कहा कि वे विवाह के बाद भी अध्ययन जारी रखी हुई हैं इसलिए एक की कीमत पर दूसरे लक्ष्य का प्रश्न ही नहीं है। यहाँ पर कन्याश्री योजना का तीसरा हिस्सा जहाँ पर परास्नातक स्तर पर लड़कियों को छात्रवृत्ति देने का प्रावधान है (उनके विवाहित होने या नहीं होने की भी स्थिति के बिना), यह योजना बेहद मददगार सिद्ध हुई है। दोनों विद्यालयों के अलावा तृणमूल कांग्रेस के स्तर पर भी यह दावा किा गया कि विद्यालय छोड़ने के अनुपात में इस योजना के बाद भारी गिरावट आई है। यद्यपि इसका अनिवार्य रुप से यह निष्कर्ष नहीं है कि नीचले आर्थिक तबकों की लड़कियों में उच्चतर शिक्षा के ललक उत्पन्न हो ही गई है। लाभपुर उच्च विद्यालय के संदर्भ में, उदाहरणस्वरुप, ज्यादातर लड़कियों की आकांक्षा बी. एड. की डिग्री प्राप्त करना था ताकि वे शिक्षक की नौकरी पा सकें। प्रधानाचार्य के अनुसार, ऐसा इसलिए है क्यांकि लड़कियाँ उच्चतर शिक्षा के ज्यादातर विकल्पों से अनभिज्ञ हैं और उनकी आकांक्षाएं भी सीमित हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस योजना कि कोई एक समान कार्यपद्धति एवं लाभार्थियों के बीच समरुप स्वीकार्यता नहीं है। इसके अलावे भी अन्य सामाजिक कारकों को हमें ध्यान में रखना होगा। विभिन्न वर्गीय, जातीय, क्षेत्रीय एवं धार्मिक समूहों के बीच इसकी स्वीकार्यता का अलग–अलग स्तर है और कन्याश्री

संघों की स्वीकार्यता एवं सक्रियता का स्तर भी असमान है। जैसा कि मनीषा बंदोपाध्याय बताती हैं कि मुर्शिदाबाद जैसे मुसलमान बाहुल्य जिले में कन्याश्री की सफलता का उच्चतर दर इसलिए भी है क्योंकि इनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति यहाँ पर अच्छी है और कन्याश्री संघों की सक्रियता का उच्चतर स्तर यहाँ पर मिलता है। पूर्वाग्रह से ग्रस्त सामाजिक परिस्थतियों का प्रत्यक्ष प्रभाव कन्याश्री योजना पर भी पड़ा है और इस योजना ने कई जगह इस जड़ता को गतिशीलता में बदलता है।

यहाँ पर विचार करने योग्य मुद्दा यह भी है कि हम क्यों इस योजना की सफलता पर यहाँ बात कर रहे हैं और क्या अपने घोषित लक्ष्यों को प्राप्त करने में यह सफल रही है? क्या हम किसी लोकलुभावनवादी योजना एवं कार्यकुशल योजना के बीच अंतर स्पष्ट कर सकते है? किसी योजना के लोकलुभावनवादी होने के लिए हमें यह समझना पड़ेगा कि 'खोखले/मुक्तवादों की वहाँ कितनी जगह है जिसे अर्नेस्टो लैक्लाऊ 'खोखला अर्थविहीन वाचक' सामान्यतया किसी लोकलुभावनवादी योजना को नकारात्मक अर्थो में ही ग्रहण किया जाता है। यह ना तो सफल तरीके से चलायी जा सकती है ना ही इसकी ऐसी कोई मंशा ही होती हे। एक रणनीति के तौर पर 'जनसामान्य' को निर्धारित करके भले ही यह कार्यरत होती है लेकिन इसका अंतिम लक्ष्य कुछ और ही होता है। उदाहरणस्वरुप मोदी सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए 'बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ' योजना का (2014) 56 प्रतिशत खर्च सिर्फ मीडिया प्रसार एवं पक्षधरता' पर किया गया वहीं 25 प्रतिशत से कम ही आवंटन विभिन्न राज्यों एवं जिलों को प्रदान किया गया। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, 19 प्रतिशत आवंटन खर्च ही नहीं हुआ। इस तरह के आंकड़ों से हम किसी योजना के फायदे, नुकसान, विफलताओं, प्रतीकवादी अस्रित्व इत्यादि के बारे में जान सकते हैं। यह हमारे प्रशासनिक तंत्र की कार्यकुशलता का भी पैमाना होती है। यद्यपि कन्याश्री योजना के आवंटन में विफलता या भ्रष्टाचार की खबरें अभी तक तो नहीं आयी हैं लेकिन लोकप्रिय विमर्शों में इसके लक्ष्यों को प्राप्त करने में आई विफलता एवं निराशाओं की चर्चा सर्वत्र है। जनवरी 2019 की टेलीग्राफ की एक खबर के अनुसार केवल अच्छी भावनाओं और सद्ईच्छाओं के द्वारा ज्वलंत समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता है। उसके साथ एक स्पष्ट सोच एवं कार्यकुशल तरीके से क्रियान्वयन भी जरुरी है। अच्छी सोच एवं प्रगतिशील क्रियान्वयन

के बीच के इस अंतर में ही कन्याश्री प्रकल्प' की कमजोरी का राज छिपा है। पश्चिम बंगाल सरकार के अनुसार इसके लाभार्थियों की संख्या 57 लाख है, जो निश्चय ही एक विराट एवं स्पृहणीय लक्ष्य है। लेकिन स्त्राी सशक्तिकरण एवं अवैध मानव तस्करी रोकने के नजरिये से, इस योजना के उपर विश्वसनीयता का संकट मौजूद है।'' इसी खबर में आगे यह तर्क दिया गया है कि क्या वार्षिक रुप से 1000 रुपये की मदद एक प्रभावी मदद है? महिलाओं की निर्णय स्वायत्रता, सुश्रखा सशक्तिकरण जेसे मुद्दों को सुलझाए बिना इस कार्यक्रम की सफलता संदिग्ध है। किसी योजना कि कार्यकुशलता, इसके लक्षित समूहों तक इसकी सफलता और कार्य निष्पादन की दर एवं शिकायत समाधान तंत्र की कुशलता से ही यह तय होता कि कोई योजना लोकलुभावन है या नहीं। इसकी कार्यकुशलता के लिए, इसके वैचारिक लक्ष्यों को भी ध्यान में रखना होगा जिसमें न्याय, जनतांत्रिक समावेशन, सशक्तिकरण जैसे मुद्दों को सम्मिलित किया गया है। क्या इन रुढ़ीवादी आदर्शों को इस योजना के माध्यम से कार्यान्वित किया गया है? यद्यपि लैक्लाऊ वैचारिक निष्पत्तियों के आधार पर लोकलुभावनवाद का विश्लेषण खारिज कर देते हैं। लोकलुभावनवाद के साथ दिक्कत यह है कि यह विभिन्न तरीके के राजनीतिक आग्रहों एवं विश्वासों को अपने अंदर समाहित करता है। लोकलुभावनवादी नेतृत्व में जान बूझकर कर एक खास किस्म की अस्पष्टता, लचीलापन एवं कृत्रिमता पाई जाती है। जिसमें राजनीतिक, राजनीतिक कार्यवाहियों को राजनीतिक के विरुद्ध घोषित कर दिया जाता है। लेकिन लैक्लाऊ द्वारा लोकलुभावनवाद को फिर से समर्थन दिया गया है और उनका मानना है कि यह रजनीति का 'केंद्रीय मर्म है। यह 'जन निर्माण' की प्रथम प्रयोगशाला है। इसकी विशिष्टता विभन्न वैचारिक आग्रहों, विचारों को एक साथ संग्रहित कर के, राजनीतिक मांगों को व्यवस्थित करके इसे एक खास प्रकार के विशिष्ट वर्चस्वी समूह के प्रतिरोध में खड़ा करती है। जिसके बीच ना केवल समानार्थकता होती है अपितु यह उन प्रतिरोधों को जनसामान्य की इच्छा और नैतिक आभामंडल भी प्रदान करता हे। दूसरे शब्दों में लोकलुभावनवाद को उसके प्रारुपों के आधार पर परिभाषित किया जाना चाहिए ना कि उसके आंतरिक महत्व के आधार पर। लैक्लाऊ इसे द्वैध प्रक्रिया की तरह देखते हैं जिसमें 'जन सामान्य' के सामने एक वर्चस्वी समूह/संस्थागत सत्ता वर्चस्वी ताकत का प्रतिदर्श होता है जिसे अवैध

ठहराकर ही लोकलुभावन राजनीति सफल हो सकती है। विविधकृत एवं अस्पष्ठ किस्म के राजनीतिक मांगों को एक स्पष्ट प्रारुप देकर लोकलुभावन राजनीति सफल होती है जिसमें ना केवल यथास्थिति को चुनौती दी जाती है अपितु एक खोखले प्रतिदर्शक की तरह यह बांकि अन्य राजनीतिक मांगों की तरह अपनी समतुल्यता को प्राप्त करती है। लैक्लाऊ के अर्थों में, कन्याश्री योजना एक 'खोखले वाचक का कार्य ममता बनर्जी के शासन के लिए कर रही है जिसमें अर्थवत्ता देने का कार्य लोकलुभावनवादी राजनीति करती है। कन्या श्री योजना को, शोधकर्त्ता के निष्कर्षों के अनुसार, एक प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं आतरिक शक्ति का परिचालक ना मानकर एक लोकलुभावनवादी योजना माना जाना चाहिए जिसके असंबंद्ध तत्वों की लोकप्रिय राजनीति की रणनीति अनिवार्यता की तरह देखा जाना चाहिए। यह दृश्यमान संस्कृति का सार्वजनिक प्रदर्शन है जिसमें रणनीतिक कार्यवाहियों, सामाजिक यथार्थ एवं शहरी सार्वजनिक जगहों पर एक शानदार उपस्थिति के द्वारा 'जन सामान्य' के विचार को गढ़ा जाता है। ममता बनर्जी के विराट छवि निर्माण तंत्र एवं सार्वजनिक व्यक्तित्व को इसमें जनकल्याण के साथ एकाकार कर दिया गया है जिसमें करिश्माई नेतृत्व एवं लैगिंक न्याय के तत्व अंर्तनिहित है। इस शोध पत्र की उपयोगिता इस बात में अंर्तनिहित है कि किस प्रकार 'कन्याश्री' योजना एक प्रभावकारी शक्ति का निर्माण करती है जिसमें 'बालिकाओं' को सशक्तिकरण का अग्रदूत बना जाता है और कालांतर में सत्ताधारी दल के राजनीतिक वर्गीकरण के ढांचे में महिलाओं को एक अलग विशिष्ट वर्ग की तरह निरुपित कर के मुख्यमंत्री की एक मातृत्व छवि गढ़ी जाती है और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरुप ही ममता बनर्जी एवं तृणमूल कांग्रेस की सफलता के लिए नई सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को निर्देशित किया जाता है।

मुसलमान 'इतर' : डेक्कन में लोकलुभावनवादी राजनीति और मुसलमान

शेफाली झा

हमारे राजनीतिक एवं अनुशासनिक प्रस्थान बिंदुओं को ध्यान में बिना रखे हुये, जिसके द्वारा हम लोकप्रियतावादी राजनीति को व्याख्यायित करते हैं, हमें इस निर्विवाद सच्चाई से दो चार होना पड़ेगा कि लोकलुभावन राजनीति का अन्योन्य संबंध एक दुश्मन एक इतर तत्व से रहा है। यह हमारे रक्त मज्जा में अंतगुर्फित उस शत्रुता की भावना से परिचालित होती है जिसे लोकलुभावन जनता में जानबूझकर धार्मिक या नृजातीय अल्पसंख्यकों के विरूद्ध डाला जाता है। यह अल्पसंख्यक समूह संख्यागत भी हो सकता है जिसे जनविरूद्ध संस्थानों या नीतियों का साक्षात प्रतिरूप मान लिया जाता है। सामान्यता यह दोनों प्रक्रियाएं साथ–साथ घटित होती हैं। एक बात जो निश्चित रूप से स्पष्ट है वह यह है कि लोकलुकाभावन राजनीति, लोगो के गहरे अंर्तमन और आंतरिक ईच्छाशक्ति से प्रत्यक्ष जुड़ती है (माजरेल्ला:2019) और यह सीमा निर्धारण एवं बहिष्करण के माध्यमों से कार्य करती है। लोकलुभावन राजनीति आकस्मिता की परिघटना नहीं होती है अपितु यह दीर्घकालिक प्रभावोत्पादकता को केन्द्रियता में रखकर कार्यरत होती है। इस सीमा तक, हम क्रूर किस्म के बहुमतावाद के आलोचनाओं में अंतर्निहित शक्ति को भले ही स्वीकार करें परंतु बहुमतवाद ही दुनिया को अपने सर्वग्रासी प्रभाव में लेचुका है। मूलर (2016) के चिंतन में इसकी शानदार अनुगूंजे सुनाई पड़ती है।

'लोक' एवं 'नागरिकता' की अवधारणा के बिना राजनीति की अवधारणा के स्वरूप का निर्धारण अभी भी एक विचारणीय प्रश्न है और इसके साथ ही साथ 'लोकलुभावनवादी पुनरूत्थान', अगर हम इसको ऐसा नामाकरण दे सकें क्या उन सांस्थानिक एवं नागरिक पोलिसवादी समग्र राजनीति कि दिवास्वपनों का परिणाम है

दक्षिणी गोलार्द्ध के उत्तर औपनिवेशिक राजनीति में अगर हम लोकप्रियतवादी राजनीति के वर्चस्व को देखें तो हमें कहानी में नये मोड़ एवं नाटकीय तत्व दिखायी पड़ेंगे। भारत में तो विशेषज्ञता प्राप्त समुदाय यथा अर्थशास्त्री एवं नौकरशाही के मानस में लोकप्रिय राजनीति स्थानीय हितों को वरीयता देती है जबकि राजनीतिज्ञों का ध्यान कड़े फैसलों पर होना चाहिए।

इस शोध पक्षमें शोधकर्त्ता की दुविधा इसके सैद्धांतिक ढांचे के केंद्र में है जहा लोकलुभावन राजनीति दक्षिण एशियाई राजनीति के वर्चस्वी आकार में अपने को प्रकट करती है वहीं इसके दूसरे प्रारूप में अल्पसंख्यक समूहों के भी संस्थागत तौर तरीको को यह अपनी विशेषताओं में समाहित करती है। यह उन स्वतंत्र राजनीतिक दलों के लिए ज्यादा सही है जिनका प्रतिनिधित्व के ऊपर ज्यादातर दावा, अल्पसंख्यक समूहों के विशेषकर मुसलमान ही गतिशीलता पर निर्भर करता है। भारतीय बहुसंख्यकवादी राजनीति में यह तबका 'इतर' की सबसे सामान्य अभिव्यक्ति की तरह लक्षित होता है। 'विधि के शासन' की मिथकीय परिकल्पनओं में जहाँ–जहाँ भी खुले तौर पर प्रदर्शित होती है वहां लोकलुभावन राजनीति ही नुकसान एव 'न्याय' के सामुहिक दावों के बीच एकमात्र अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बच जाती है। विडंबना यह है कि चुनावी राजनीति के द्वारा जो प्रतिनिध्यात्मक राजनीति के संस्थागत जगह खुलते हुए दिखते भी हैं वो लोगो की एक अलग प्रकार की सांदर्भिक सच्चाइयों को अभिव्यक्त करते है जिसे सरकारें अपनी सुविधा से बहुमत एवं अल्पसंख्यक समूहों में बाँटने का खेल खेलती रहती है।

गतिशील जनता की आंतरिक ऊर्जा पर आधारित यह समूह प्रतिनिध्यात्मक राजनीति को जिंदा रखनें में मदद करता है। इस शोध प्रपत्र में शोधकर्त्ता ने हैदराबाद के मुस्लिम समाज में अपना ध्यान केंद्रित किया है। इसकी अगुवाई करने वाला राजनीतिक दल ऑल इण्डिया मजलिश–ए–इतिहाद–उल–मुसलमीन (आगे से मजलिश या ए0आई0एम0आई0एम (AIMIM)है) है जो भारत के अल्पसंख्यक हितों को अभिव्यक्त करने में सर्वाधिक मुखर एवं सर्वश्रेष्ठ है। शोधकर्त्ता के शोध अध्ययन में इसी दल की चर्चा की गयी है।

मजलिश (AIMIM) और हैदराबाद की सर्वाधिक सहजीविता

1958 में अपने स्थापना के बाद से ही, जब मजलिश की भले ही कोई विधायी ताकत नहीं रही लेकिन तब भी इसे हैदराबाद के तत्कालीन अतीत में भारतीय गणराज्य के साथ शांतिपूर्ण मिलन के रास्ते में एक रोड़े की तरह देखा गया। 1962 के आते–आते इस दल से पहला विधायक निर्वाचित होकर आता है जो और कोई नहीं बल्कि इस पार्टी के संस्थापक अब्दुल

वाहिद ओवैसी के पुत्र सुल्तान सलाहुद्दीन ओवैसी थे। वर्तमान समय में, यह करीब–करीब सर्वज्ञात तथ्य है कि उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र असऊद्दीन ओवैसी इस पार्टी के अध्यक्ष हैं। वहीं दूसरी तरफ पार्टी के तरफ से इसके पूरे राजनीतिक जीवन में पहली बार कोई दूसरा व्यक्ति भी संसद में चुनकर आया। इनका लोकसभा क्षेत्र औरंगाबाद और इनका नाम इसी जनपद के स्थानीय निवासी इम्तियाज जलील हैं।

अगर हम हैदराबाद को सामान्य राजनीतिक शब्दावली में विश्लेषित करे तो इसे एम0आई0एम का अपना गढ़ या 'जेबी पकड़' वाला क्षेत्र समझा जाता है। यहां पर सामंतवादी अवशेषों की भी भाषाई अनुगूंज सुनाई पड़ती है और इसकी वजह पार्टी और उसके नेतृत्व का इस शहर से नाभिनालसंबंध रहना है। उन्होंने किसी और राजनीतिक दल के द्वारा इस शहर में अपना जनाधार बनाने की कोशिशों कर सफलतापूर्वक विरोध किया है। भारतीय मुस्लिम लीग जैसे राजनीतिक दल भी यहां जगह बनाने में सफल नहीं हो पाये हैं। इसकी एक बड़ी वजह यह भी है कि डेक्कन से बाहर जाने का प्रयत्न मजलिश ने कभी नहीं किया। उनके राजनीतिक विरोधियों द्वारा यह अक्सर कहा भी जाता है कि मजलिश या तो मुकामी पार्टी है या बहुत ज्यादा से ज्यादा 'पुल के उस पार की 'राजनीतिक पार्टी' है। यह नये शहर का पुराने हैदराबाद से स्पष्ट विभाजन भी बताता है जिसके बीच अब करीब करीब मृतप्राय नदी मूसी बहती है।

औरंगाबाद में इम्तियाल जलील के जीतने के उपरांत अब स्थानीयता के आरोपों को मजबूत चुनौती तो मिल रही है तथापि यह सच है कि हैदराबाद के मुसलमानों का सार्वजनिक रूप से मजलिश के प्रति जुड़ाव–लगाव या समांतर तरीके से अविश्वास या मोहभंग भी इसी नजदीकी और अतिपरिचय ये निसृत होता है। शोधकर्ता का अनावश्यक रूप मध्यस्थों की अनुपस्थितीको रूमानी बनाने का यहा कोई इरादा नहीं है परन्तु यह भी उतना ही सच है कि मजलिश के केंद्रिय नेतृत्व की वैधता का श्रोत ही स्थानीय जीवन में अनवरत उपस्थिति एवं उनके किसी भी सुख–दुख में लगातार खड़े होने से मिलती है। यह उनकी अपने मुख्यालय दारूल–सलाम की अपने निर्वाचकों से एकदम पास की भौगोलिक उपस्थिति से भी स्पष्ट होता है।

2010 से 2013 तक के दौरान किए गये क्षेत्र अध्ययन के दौरान मजलिश के इस मुख्यालय को शोधकर्ता ने एक मंजिला ही पाया था, जिसका कुछ हिस्सा 1930 से मौजूद है। आज यह एक भव्य, चमकदार बहुमंजीली सफेद ईमारत में बदल चुकी है जिसका सीधा संबंध मजलिश की बढ़ती राजनीतिक पहुँच और प्रभावशीलता से है। जैसा कि पहले भी कहा गया है कि उनका मुख्य नारा ही जनता के साथ पूरी तरह घुल–मिल जाना है, आवाम से रब्त जिसे हमेशा जनता के बीच रहना है। यह अलग–अलग कई तरीकों से अभिव्यक्त होता है जिसमें एक प्रमुख कारक दारूस सलाम में लोगों का अनवरत आगमनभी है। मजलिश के नेता हमेशा सार्वजनिक मंचो से यह दावा करते हैं कि उनके इलाके में जो जिंदगी की जीवंतता और रौनक है वो और कहीं भी उपलब्ध नहीं है। यह बात अलग–अलग कई कारणों से शोधकर्ता ने भी अपने शोध अध्ययन के दौरान अनुभव की। अन्य राजनीतिक दलों में जहां पार्टी कार्यालय और उसके पदाधिकारी तमाम बंधनों, सुरक्षा चक्रों एवं आंतरिक कार्यकताओं से ही घिरे शैक्षिणिक संस्थान भी चलते है और साथ में प्रेस भी कार्यरत है।

लेकिन जनप्रभाव का अनवरत मजलिश तक आते रहने का प्रमुख कारण पार्टी के संपूर्ण केन्द्रिय नेतृत्व का एक ही जगह मौजूद रहना है। असउद्दीन और अकबरूद्दीन ओवैसी दोनों ही सर्वोच्च निर्णय प्राधिकार है और लोग उनके हस्तक्षेप को किसी मामले में निर्णायक मानते है। यह स्थानीय विधायक या नगर निगम सभासदों से परे जाकर कार्य कराने की एक विशिष्ठ शैली है। अमूमन हम अन्य दलों में राजनीतिक शीर्ष नेतृत्व को पार्टी कार्यालय में बढ़ते हुए नहीं पाते है। मुख्यमंत्री, मंत्री या अन्य राष्ट्रिय नेता ऐसा करते हुये कभी नहीं दिखते है। मजलिश के मुख्यालय में पार्टी का कमोबेश सारा नेतृत्व एक जगह उपलब्ध रहता है और वह भी निश्चित समय में क्योंकि यह पार्टी मूलरूप से एक शहर केन्द्रित पार्टी है। दिन से लेकर 3 बजे दोपहर तक यहां समय देना पड़ेगा। यह समय परिर्वतन किसी विशेष परिस्थितियों यथा विधानसभा या अन्य आवश्यक राजनीतिक घटनाओं के समय में हो सकता है। अपने घर या पड़ोस के किसी कार्यालयी जगह में भी पार्टी के विधायक लोगो से मिलते है। नगर निगम सभासदों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना नाम और क्षेत्र एक खास रजिस्टर में दर्ज करें जिसको 'एतेमाद' कहा जाता है। इसे सार्वजनिक तरीके से दारूसलाम में प्रदर्शित किया

जाता है। इसके साथ एक अघोषित सी व्यवस्था यह भी है कि लोग यहां पर सिर्फ कार्यवश ना आकर बातचीत, राजनीतिक परिचर्चा एवं सबंधों का निर्वहन करने भी आते हैं। दारूसलाम सप्तांहत में सबसे ज्यादा भीड़ हेती है। अपने क्षेत्र अध्ययन के दौरान शोधकर्ता ने जो एक आश्चर्यजनक बात पायी वह मुस्लिम महिलाओं का बड़ी संख्या में पार्टी कार्यालय में आने का दृश्य था। नजदीक की झुग्गी झोपड़ीयों में कार्यशील महिलाओं की बड़ी संख्या यहां पर आती हैं यहा पर शोधकर्ता दो घटनाओं की चर्चा करना चाहती है। पार्टी मुख्यालय में महिलाओं के बैठने की अलग जगह है और मुख्य कक्ष में सांसद एवं विधायक एक बड़े टेबल मेज के उस तरफ बैठते है और कोई भी उन तक सीधे पहुंच कर आमने सामने बात कर के जा सकता है। मुख्य कक्ष का प्रयोग सिर्फ उन दिनों में नही होता हैजब शीर्ष नेतृत्व की कड़ी नजरे वहाँ पर होने वाले हँसी मजाक एवं फालतु के गपशप पर होती है।

मध्यस्थता एवं तत्कालीन : हम और वे लोगः

शोधकर्ता को क्षेत्र अध्ययन के दौरान वहां पर जमिला बाजी मिली और एक दूसरे के कुशलक्षेम पूछने के बाद वे अपने पार्टी कार्यालय में आने के कारणों को बताने में हिचक दिखायी। लेकिन शोधकर्ता के शोध उद्देश्यों और लगातार कार्यालय में आते जाते रहने के कारण वो सहज महसूस करने लगी। उन्होंने बताया कि पुराने शहर में उनकी छोटी सी जमीन है जिस पर मजलिश से ही संबंद्ध होने का दावा करने वाले व्यक्ति ने कब्जा कर लिया गया है। उस व्यक्ति ने करीब आधे जमीन पर कब्जा करते हुये एक तीन मंजिला इमारत खड़ी कर दी है। स्थानीय लोगों को घूस देकर उसने यह बात जमीन के मालिकाना हक रखने वाले जमिला बाजी तक नहीं पहुंचने दी। जमिला बाजी को अपने एक बेटी का विवाह करना है और उनका मानना था किइस जमीन को बेचकर वो विवाह का खर्च निकाल लेंगी। बदली हुई परिस्थितियों में सगाई के बाद उनको विवाह को स्थगित करना पड़ा। वह असद ओवैसी से मिलकर उनके साथ हस्तक्षेप की मांग करती है। उन्होंने कहा किवे अभी तक एक बार ही मतदान की हैं और वो उन्होंने मजलिश को दिया है। उनका मानना था कि यही एक राजनीतिक दल है जो हमलोगों की अपनी पार्टी है और उनकी उपस्थिति हमलोग के लिए महत्वपूर्ण है। किसी समस्या के दौरान हम उन्हीं की तरफ अपनी उम्मीदें लगाते है। उनके

हैदराबाद में मौजूद रहने के दौरान से सुरक्षा का एहसास होता है। नही तो हम सबको पता है कि गुजरात में क्या हुआ था। उन्होंने महिलाओं और बच्चों तक को नहीं छोड़ा और अब वो युवा लड़को को निशाना बना रहें हैं। कोई तो होना चाहिए जो हमलोगों के लिए बात करे।

घंटे भर के इंतजार के बावजूद जमीला बाजी निराश नहीं हुई थी और विधायकों एवं सभासदों को देखकर वे उम्मीद से भर गई। उन्होंने कहा कि यह एक भाग्यशाली दिन है क्योंकि जिनको वे अभी तक दूरदर्शन पर देखती थी उनको अभी यथार्थ में मिलने का मौका मिलेगा। वो उन स्थानीय उर्दू चैनलों की बात कर रही थी जिस पर अनवरत पार्टी की गतिविधियों की खबरें आती रहती है। उन सभी चैनलों ने दारूसलाम के लिए भी अलग से एक संवाददाता नियुक्त किया है। यह ठीक उसी तरह से है जैसे बाकी राजनीतिक कार्यालयों के लिए भी कोई न कोई संवाददाता है। ध्यान देने की बात यह है कि तेलुगु और अंग्रेजी चैनलों के संवाददाता जहां किसी मौको पर ही मजलिश के कार्यालय में जाते हैं वहीं स्थानीय उर्दू के चैनल जो कितने भी छोटे स्तर पर कार्यरत क्यों ना हों, या जिनकी सिर्फ इंटरनेट पर ही उपस्थिति हो, वे भी अपने समाचारों में दारूसलाम की खबरें इंटरनेट पर ही अनिवार्य रूप से शामिल करते हैं।

इस तरह के करिश्माई आकर्षण एवं उम्मीदों से भरी जमीला बाजी इकलौती शख्सियत नहीं है। ऐसा असंख्य लोगों का मानना है कि भारतीय राजनीति में मुसलमानों की आवाज को दमदार तरीके से मजलिश ही व्यक्त करता है जिसे अखबारों एवं दूरदर्शन के माध्यम से प्रसारित किया जाता हे। वहीं दूसरी तरफ आम आदमी तक इसकी सीधी पहुंच के कारण भी लोगों के नेतृत्व के साथ एक भावनात्मक जुड़ाव महसूस होता है। जमीला बाजी को यह यकीन है कि उसकी जमीन पर कब्जा करने वाला व्यक्ति मजलिश से संबंध नहीं हो सकता क्योंकि अगर यह बात ओवैसी बंधुओं के संज्ञान में लायी जायेगी तो वे लोग निश्चय ही गलत करने वाले को सजा देंगे।

जमीला बाजी ना तो पुलिस के पास गयीं हैं ना ही न्यायालय में क्योंकि उनको भरोसा है कि यह मामला उनके हित में सुलझ जाएगा। वो इस मामले में पुलिस या अन्य बाहरी तत्वों की

संलग्लता नही चाहती है क्योंकि उससे मामला और उलझता है और चीजें नियत्रंण से बाहर चली जाती है।

कई बार ऐसा भी देखा गया है कि कई बार चीजे आंतरिक तौर पर नहीं भी सुलझती है और पुलिस और अदालत तक समस्या निवारण के लिए मामले जाते ही है। जमीला बाजी जैसी कई सारी महिलायें तमाम आश्वासनों को पाते पाते कई बार इन जगहों पर जाती रहती है और कई मामलों में उन्हें निराशा भी हाथ लगती है। कुछ अन्य मामलों में आतंरिक लेनदेन और समझौते के तहत कई बार मामलें सुलझ भी जाते है और रूपये–पैसे और जमीनें लौटा दी जाती हैं। यद्यपि शोधकर्ता को ऐसा लगता है कि नकारात्मक प्रचार और मजलिश के समर्थन में लगातार कमी की वजह से वे इसे गुप्त तरीकों से करने के लिए प्रेरित करते होते है। मजलिश के प्रतिनिध्यात्मक क्षमताओं तक मुसलमान होने के नाते भले ही इस महिला की पहुंच हो लेकिन स्थानीय समर्थन एवं नेतृत्व के साथ प्रत्यक्ष संबंधों की दो धारी तलवार कई बार नकारात्मक असर भी डालती है।

त्वरित समाधान का जादू और करिश्माई राजनीति

2013 की एक गर्म जून की एक सुबह में शोधकर्ता फातिमा बाजी और उनकी बहन से दारूसलाम में मिली। दोनों करीब 40–45 साल की महिलायें थी और असद ओवैसी का पार्टी मुख्यालय में इंतजार कर रही थी। दिन के 11:30 बजे तक भी ओवैसी के आने की कोई संभावना नहीं थी लेकिन फिर भी वो वहां पर लगातार इंतजार कर रही थीं क्योंकि उनको इस बात का यकीन था की उनकी समस्याओं को दो मिनट में त्वरित तरीके से ओवैसी सुलझा सकते हैं।

दारूल–शिफा जो कि एक शिया बाहुल्य इलाका है और पुराने शहर में अवस्थित है, वहां से आयी ये महिलायें अपनी बेटी को वाणिज्य के स्नातक पाठ्यक्रम में दाखिले के लिए छात्रवृति दिलाने के लिए आयी है। उनकी छात्रवृति रूक गयी है और अभी नामांकन का समय है। नौकरशाही की जटिलताओं के वजह से कैसे आम आदमी का जीवन विडंबनाओं में घिर जाता है, उसके बारे में शोधकर्ता की उन महिलाओं से लंबी बातचीत हुई उन महिलाओं ने अपने दो

अनुभवों को शेधकर्ता से साझा किया गया। जहां मजलिश के हस्तक्षेप से उनकी जिदंगी में विश्वास बहाली का दौर आया। अपनी बेटी के उच्चतर माध्यमिक कक्षा में प्राप्त होने वाले छात्रवृति के बारे में बताते हुए वह महिला कह रही थी की बेटी को छात्रवृति मिलनी थी। वह हज हाउस में, जहाँ पर आँध्र प्रदेश अल्पसंख्यक वित निगम का कार्यालय अवस्थित है, कई बार गयी लेकिन इसका कोई फायदा नहीं हुआ। तब तक असद साहब हमारे इलाके में आयें और मैंने उनसे इस संदर्भ में बात की। अपना दूरभाष नम्बर देते हुए उन्होंने मजलिश कार्यालय पर हमको बुलाया। उन्होंने मुझे एक पत्र दिया और उसको लेकर जैसे ही मैं हज हाउस के कार्यालय में गयी मुझे पैसे मिल गयें। पैसे कई बार दो महिने पहले भी आ गए और उन्होंने मुझे बार बार आने को कहा। असद ओवैसी साहब के हस्ताक्षर और मुहर का चमत्कारिक असर हुआ और काम चुटकियों में हो गया।

इसके बाद उसने इससे ठीक उलट एक और अनुभव साझा किया। उसने बताया कि उसकी वृद्ध माँ एक बार स्थानीय सभासद के उपर खूब गरजी बरसी क्योंकि सरकारी सर्वेक्षण में उनका राशन कार्ड अवैध ठहरा दिया गया था। उनके अभिभावकों ने यद्यपि सरकारी सर्वेक्षण में भाग लिया था, लेकिन उसके विस्तार के बारे में वो स्मरण नहीं कर पा रही थी। उसने बताया कि हमलोग हैदराबाद में 50 वर्षों से रह रहें है और हमलोगों का राशन कार्ड तब से बना हुआ है। अचानक एक दिन उसे अवैध ठहरा दिया गया। तब मेरी माँ स्थानीय सभासद जो कि मजलिस का ही सदस्य था के यहां गयी और चिल्ला कर ही उसने कहा कि वो अभी मर नहीं गयी है, जिंदा है अभी, सरकारी तंत्र उसको राशन क्यों नहीं दे रहा है। फातिमा बाजी हंसते हुये यह बात बता रही थी कि बेचारे सभासद ने एक गुस्से से भरी वृद्धा को शांत करने में काफी मशक्कत की और सार्वजनिक रूप से उन पर चिल्लाने के बावजूद उनको शांत किया, लोग खड़े होकर मजा भी ले रहे थे। सभासद ने उसको पक्का भरोसा दिया कि उनका राशन कार्ड और गैस का पक्का कागज फिर से बहाल करा दिया जाएगा। कुछ जगहों पर दूरभाष से संपर्क करने के बाद ऐसा हुआ भी। वो जानना चाहती थी कि ये क्यों हुआ? उसका अनुमान था कि वों शायद मां के पास अब नहीं रहती अपितु आस–पास के पड़ोस में रहने लगी है। सभी का राशन कार्ड एक साथ ही था। उन्होंने हमारे नाम लिखने में भी गलती

की थी और वे कर्मचारी हमलोगों का सही सही नाम भी नहीं जानते होंगें। हमलोग कुछ और बोलते है वे कुछ और ही लिखते है। शोधकर्ता ने भी इस पर जोड़ा कि उनको वैसे ही लोगों को सर्वेक्षण के लिए भेजना चाहिए जिनको इस विषय की पूरी जानकारी हो। इस पर फातिमा बाजी ने भी कहा की वे हमेशा ऐसे ही बेकार के लोगो को भेजते है जिनको कोई भी जानकारी नहीं होती है।

जमीला और फातिमा बाजी जैसी मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग की औरतें जो दारूसलाम में इस उम्मीद और वादे पर आती है कि संस्थानिक राजनीति के परे जाकर जो भरोसा एवं वादा इस तरह की व्यवस्था उत्पन्न करती है वह प्रतिनिधि जनतंत्र के संबंधों में अनूठी है। मजलिस के सर्वोच्च नेतृत्व से एक प्रत्यक्ष जुड़ाव एवं भावनात्मक लगाव होने के कारण वे मजशि को अपना तारणहार समझती है। यहां पर संस्थागत व्यवस्थाओं का तात्पर्य या तो स्वार्थी नौकरशाही है या जनकल्याणकारी राज्य के उन प्रतिरूपों से जिनके हिसाब से अधिकारिता को खैरात की तरह देखा जाता है और यह जन अधिकारिता उनके कृपा दृष्टि पर निर्भर करती है। उनका भरोसा इसलिए भी मजबूत होता रहता है क्योंकि भारतीय नागरिकता के विमर्शों एवं चिंतन में उनकी उपस्थिति हमेशा एक 'इतर' की रही है और यह वर्चस्वी बहुमतावादी नागरिकता के समांतार खड़ी होती है। मजलिस के प्रतिनिधिमूलक दावे इसी सायास अनवरत कोशिशों से मिलकर बनती है। अंधाधुध किस्म के शहरी पूंजीवाद से उत्पन्न जमीन कब्जाने की बेलगाम भूख ने मजलिस के सदस्यों को भी अपने प्रभाव में लिया है जिससे निजात दिलाने के लिए की गई कोशिशों अकसर बेमानी हो जाती है। इसका कारण यह है कि यह एक सामान्य एवं स्वीकार्य प्रकृति बनती जा रही है और अब तो इसकी खबरें भी नही बनती। नौकरशाही के अंतहीन मकड़जाल एवं कार्यालयी भागदौड़ ने न्याय के किसी भी उम्मीद से दूर कर दिया है। इस अपूरणीय विश्वास संबंध को सरंचानात्मक हिंसा का रूप दे दिया गया है जहां व्यवस्था कई बार आपके 'नाम' के साथ या कई बार जन अधिकारिता के प्रश्नों को क्रूरतापूर्वक नकारती रहती है। इसी कारण से त्वरित न्याय एवं काम किसी तरह करा ले जाने की तयशुदा व्यवस्था निर्मित करने वाली राजनीतिक संरचना और उसका नेतृत्व सफल होता हुआ दिखता है।

एक बात तो निश्चित है कि यह व्यवस्था तभी कार्यशील होती है जब जनता की तरफ से ऐसी मांग अनवरत आती ही जाये। मुख्यधारा के अन्य राजनीतिक दलों के करिश्माई नेतृत्व का इपने कार्यकताओं से अलगाव बझा है। यह भावनात्मक एवं भौतिक दूरी सभासदों के साथ भी पाई जाती है। सभासदों को सार्वजनिक एवं नैतिक रूप से उच्चतर सामुदायिकता द्वारा लथाड़ने के कारण एक सफल प्रतिमान निर्मित होता है जहां पर समुदाय प्रत्यक्ष कार्यवाहियों के लिए स्वतस्फूर्त जगह निर्मित करता है। यह बात फातिमा बाजी के उदाहरण से स्पष्ट है कि किस तरह उनकी मां अपने सभासद से संवाद करती है।

निष्कर्षः

मजलिस के कार्यप्रणाली को समझने के लिए 'बहुमत' एवं 'अल्पमत' के द्वैधता का कार्यकारी विभाजन एक अनिवार्य प्रस्थान बिंदू है। शोधकर्ता ने यह शुरूआत में ही रेखांकित किया था कि दुश्मनी के श्रोतों एवं प्राधिकार की निर्मिती दोनो ही तरीके से अन्य राजनीतिक दलों की तुलना में हम मजलिस की कार्यप्रणली को समझ सकते है। जनमत को सर्वोच्चता देते हुए यह असंभव सा कार्य वैसे जटिल रजनीतिक वातावरण में बिना लोकलुभावन राजनीति के संभव नहीं है। एक साझे सरकार समुदाय के 'हम' की परिकल्पना के साथ यह तबका अपना तादात्म्य स्थापित करती है। यह सिर्फ एक नृजातिय समुदाय भर नहीं है जिसे स्पष्ट सीमा निर्धारण एवं ज्ञान की अनुकूलता के कारण आसानी से नकार दिया जाए। यह एक गैर राजनीतिक सामुहिक उपस्थिति है जो 'विकास' नाम के आत्म वचन में सिर्फ एक 'वस्तु' की तरह है। यह स्थानीय राजनीतिक दल स्थानीय आबादी का जनसंवाद का सबसे सशक्त माध्यम है जो 'इतरता' के सभी संभव असली जगहों को भरने का काम करती है और साथ ही साथ राजनीति के मुख्यधाराओं की भी जगह को समातांर तरीके से भरती चलती है। इनके कार्यप्रणाली को समझकर ही हम लोकलुभावन राजनीति के तमाम प्रारूपों को समझ सकते है। यह जन सामान्य को निर्वाचनीय मध्यस्थता तथा तात्कालिकता के दावों के चंगुल से एक झटके से मुक्त कर डालते है।

अंत में एक शाश्वत प्रश्न कि लोकलुभावन राजनीति क्या एक अच्छा या बुरी राजनीति है? या इसे अगर दूसरे तरीके से गढ़े तो पूछा जा सकता है कि क्या यह मुक्तिकामी है या आक्रांताकारी है? इसका जवाब बोदीयू के इस कथन में अंतर्निहित है कि 'सब कुछ अंत में संदर्भ का मामला है' (बोदीयू, 2016 : 21)। यह अज्ञानतावाद इस तरफ हमारा ध्यान इंगित करता है जिसे लॉक्लाऊ(2005, 2015) और उनके सहभागी प्रवक्ताओं ने हमारे लिए बार बार जोर देकर रेखांकित किया है। उनका माना है कि हमलोग एक ऐसी दुनिया में रहते है जहां जनता राजनीतिक कार्यवाहियों का सबसे अनिवार्य एवं मौलिक प्रस्थान बिंदू है, जहां सरकारीकरण की सबसे मानसिक नसों में जनता के त्वरित अमूर्तिकरण के द्वारा त्वरित ऊर्जा भरी जाती है। यह एक सम्प्रभु जनता का मामला है। इस राजनीतिक वर्तमान इस स्थापित सत्य की तरफ अपना ध्यान केंद्रित करने से यह बात ध्यान से नहीं हट जाती है कि किस प्रकार श्रेणियों के साथ हासियें पर धकेलने एवं उनका बहिष्करण करने का अनवरत व्यवहार होता है। हमारा ध्यान इस बात पर भी होना चाहिए कि इस अमूर्त श्रेणीबद्धता के साथ पूरी तरह से भरे हुये जगहों के आपसी संबंधों पर हम अभिनव तरीके से विचार करते रहें, जिसके केंद्रिय अस्मिता को हम 'जन सामान्य' कहते हैं।

संदर्भ

बोदीयू, एलन. 2016. 'ट्वेन्टी फोर नोट्स ऑन द युजेस ऑफ द वर्ड, 'पीपुल'. इन व्हाट् इज ए पिपुल?,ए0 बोदीयू एवं अन्य, ट्रांस0 जे0 ग्लैडिंग,न्यूयार्क : कोलंबिया युनिर्वसिटी प्रेस पृष्ठ संख्या 21–31

लैक्लाऊ, एर्नेस्टो. 2015. *ऑन पॉपुलिस्ट रीजन,* लंदन : वर्से

लैक्लाऊ, एर्नेस्टो. 2014. *द रिहटोरिकल फांउडेशनस ऑफ सोसायटी.* लंदन एवं न्यूयार्क : वर्सो

माज्जरेला, विलियम. 2019. 'द एंथ्रपोलॉजी ऑफ पोप्युलिज्मः बियॉंड द लिबरल सेटलमेंट. '*एन्यूअल रिव्यू एंथ्रोपोलॉजी,* 48: 45–60.

म्यूलर, जॉन–वर्नर. 2016.*व्हाट इज पॉप्युलिज्म?* फिलोडेल्फिया : युनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया प्रेस.

समकालीन भारत में लोकलुभावन नीतियाँ और राजनीतिक दल : आम आदमी पार्टी के उभार पर कुछ चिंतन

सुमोना दासगुप्ता

विषय प्रवेश

लोकलुभावनवाद को लेकर पारिभाषिक मुश्किलें हैं और इसका स्पष्ट स्वरूप सामने नहीं आया है। पिछले के दशक के इसके अपार विस्तार के बावजूद, इसकी एक नकारात्मक एवं खतरा उत्पन्न करने वाले संप्रत्यय की छवि गढ़ी गई है। इसकी एक बड़ी वजह यह भी है कि इसका जुड़ाव सर्वाधिकारवादी सत्ताओं एवं नीतियों से जोड़ा जाता है। जो लोगों की चिंताओं और मानस का दोहन अपने अल्पकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करता है। इसका और ज्यादा तार्किक विश्लेषण इस पृष्ठभूमि में भी होता है कि इसकी कार्यकारी वर्ग के सामुहिक मोहभंग की भी तरह देखा जाता है जिसने, नैंसी फ्रेजर के शब्दों में पूँजीवाद के वर्चस्वी आधुनिक वित्तीय किस्म के वैश्वीकरण के विरूद्ध अपनी प्रतिक्रिया दी है। यह नवउदारवादी राजनीति के विरूद्ध एक तरह का विद्रोह है जिसे पूँजी के मुक्त प्रवाह और पहचान की राजनीति के बरक्श समझा जाता है।

इस शोध प्रबंध में शोधकर्ता ने मूल्यों से ग्रस्त वैचारिकी के रूप में लोकलुभावनवाद की राजनीति पर ध्यान ना देते हुये भारतीय संदर्भों में इसको संदर्भित करने का प्रयास किया है– जहा पर नीतियों, रणनीतियों और अभिमानों के संदर्भ में ही इसे समझा जा सकता है। यह एक प्रकार समाज के हासिये पर पड़े लोगों के लिए वितराणात्मक व्यवस्था की न्यायपूर्ण प्रणाली विकसित करने जैसा है और यह मजबूत लोगों के समांतर एक आम आदमी के हितैषी नीतियाँ बनाने के समर्पित लक्ष्यों से भरी तलाश है। 'वर्चस्वी एवं प्रभुवर्ग' की तुलना में 'जनसमान्य' की जो स्थापित छवि है उसी के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में लोकलुभावनवाद अपनी विश्लेषणात्मक उपयोगिता सिद्ध कर सकता है। यह एक शुद्ध बौद्धिक वाक् विलाग से भरा प्रश्न हो सकता है कि लोकलुभावनवाद वैचारिकी रूप से दक्षिणपंथ या वामपंथी किसके ज्यादा

नजदीक है। क्या यह अपने मूल में जनतांत्रिक है या सर्वाधिकारवादी? क्या यह एक आंदोलन है या संवाद एवं वाद विवाद की एक शैली?

यह शोध प्रपत्र भारत में भ्रष्टाचार के विरूद्ध चलाए गये एक लोकप्रिय आंदोलन की कोख से निकली एक राजनीतिक दल आम आदमी पार्टी के बहाने समकालीन भारत में लोकप्रिय राजनीति के तौर तरीको एवं नीतियों का चुनिंदा अध्ययन है। यह अपने नामकरण में ही वर्चस्वी प्रभुवर्ग के विरूद्ध एक आम आदमी की पक्षधारता का नया अध्ययन रचती है। इसकी उत्पत्ति एवं विकास के कारणों की पड़ताल करते हुये लोकलुभावन राजनीति के प्रमुख प्रवृत्तियों एवं विशिष्ट नीतियों का यहां हम गहन विश्लेषण भी करेंगें। हम यह भी देखेंगें की जनतांत्रिक निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में किस प्रकार लोकप्रियतावादी राजनीति असर डालती है और इसके दीर्घकालीक राजनीतिक एवं आर्थिक परिणाम क्या निकल कर आते है?

लोकलुभावनवादः एक मान्य परिभाषा की तलाश

लोलुभावनवाद की ऐतिहासिक उत्पत्ति के यूरोपिय जड़ों की तलाश का उद्देश्य इस शोध प्रपत्र का नहीं है लेकिन यहाँ पर यह जोड़ना समीचीन होगा की इस शब्द की व्युत्पत्ति 19वीं सदी के कामकाजी, मजदूरों, खदान के कामगारों द्वारा चलाये गये विभिन्न महादेशीय आंदोलन में छिपी है जिसे सोने के व्यापरियों या अमेरिका के उतर–पूर्वी बैंकिग कारोबार या लैटिन अमेरिका के पेरोनवाद के विरूद्ध लड़ा गया था। अलग–अलग राजनीति में इसका प्रारूप अलग–अलग रहा। यूरोप में जहां प्रवासियों के विरूद्ध यह खड़ा हुआ वहीं अमेरिका में यह स्थानीय व्यापार नीतियों को प्रश्रय देने के नाम पर अभ्व्यिक्त हुआ है।

लैटिन अमेरिका में शावेज की लोकलुभावन नीतियां, ब्रिटेन में इंडिपेंडेंस पार्टी का विस्तार एवं भारत में 2011 के 'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' आंदोलन के द्वारा हम इस घटना को समझ सकते है। (रोडरिक, 2018) रोडरिक ने लोकलुभावन राजनीति के आर्थिक जड़ों की तलाश 'वैश्विकरण के आघातों से उत्पन्न प्रतिक्रिया में देखा है। अनिश्चित बाजारों, तकनीक के बेहिसाब परिर्वतन और श्रम बाजार के बेलगाम शोषण के कारण उत्पन्न आय की अकल्पनीय असमानता में लोकप्रिय राजनीति के उदय के कारणों को खोजने का प्रयत्न किया है। रोडरिक

ने चार साझा तत्वों की खोज की है जिसके परिप्रेक्ष्य में हम विभिन्न भैगोलिक क्षेत्र एवं संस्कृतियों में फैले लोकलुभावनवादी राजनीति को समझ सकते है। ये चार तत्व है– एक व्यवस्था विद्रोही संयोजन, प्रभुवर्ग के विरूद्ध जनसामान्य के साथ खड़ा होने का नैतिक साहस, उदारवादी अर्थव्यवस्थाओं के साथ प्रतिरोध एवं सर्वाधिकार समाओं के प्रति झुकाव। यद्यपि एक समान धरातल एवं साझा सूत्रों की तलाश लोकप्रियतावादी राजनीति के अंतर्गत तलाश करना एक अलहदा चीज है लेकिन एक पारिभाषिक सहमति एवं उसकी साझा समझ की एक सामान्य आधारभूमि विकसित करना ज्यादा चुनौतिपूर्ण कार्य है। पिछले दशक में या तो लोकप्रियतावादी आंदोलनों को एक वैचारिकी की तरह समझा गया है (मुंडे एवं कालटवासर, 2012) या एक प्रकार की यह आंदोलनकारी संगठन की तरह है (टेगार्ड, 1995) या एक नीतिगत संयोजन या अभिमुखीकरण है (वेलेंड, 2001), एक संवादात्मक बहस केंद्रित व्यवस्था है। (शिल्स, 1972, लैक्लाऊ 2005)

अतीत में जिस तरीके से इस संप्रत्यय का प्रयोग होता रहा है उससे यह प्रश्न स्वाभाविक तौर पर उभरता है कि इसकी विश्लेषणात्मक महत्व को हम कैसे रेखांकित कर सकते है? जैसा कि सुब्रहतण्यम (2007) बताते है कि इसे विपरीतार्थक संप्रत्यय की तरह ही हम देख सकते है। अगर जनता की तरफ से यह उन कार्यक्रम, आंदोलन या नीति के संदर्भ में यह प्रारंभ होता है तो इसे तृणमूल स्तर पर ही हम अर्थवता प्रदान कर सकते है। वर्चस्वी प्रभुवर्ग के बरक्श हम इसे जनसामान्य की भावना के तौर पर विश्लेषित कर सकते है।

जैसा कि सुब्रहमण्यम (2007) बताते है कि व्यवहारिक स्तर पर इसमें राजनीतिक शक्तियों के पुर्नवितरण या पुर्नसंयोजन की कार्यप्रणाली मौजूद रहती है। यह आर्थिक संसाधनों के न्यायपूर्ण बँटवारे को भी इसमें महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। राजनीतिक रूप से, जनतांत्रिक स्वरूप में लोकलुभावनवाद किसी भी जनसामान्य की इच्छा और सरकारों या नेतृत्व के बीच मध्यस्थता को लेकर आलोचनात्मक भूमिका में होता है। यह एक प्रकार की प्रत्यक्ष जनतंत्रात्मक कार्यवाहियों का समर्थन करता है। यह एक प्रकार के जनमत संग्रह या लोकतांत्रिक अभियानों का समर्थन करता है जिसे उदाहरणस्वरूप कई अमेरिकी राज्यों के या स्विटजरलैण्ड के प्रत्यक्ष जनतंत्रात्मक धरातल पर सफलतापूर्वक चलाया गया था। अपने सर्वाधिकारवादी अवतार में,

लोकलुभावनवादी अभियानों की निर्भरता एक करिश्माई नेतृत्व के इर्द गिर्द घूमती रहती है जिसका दावा जनता की ईच्छा के सघन घनीभूत रूप के प्रकटीकरण में होती है और इसी बहाने वह अपनी शक्ति बढ़ाता चलता है। लैटिन अमेरिका में पेरोन या शैवेज जैसे नेतृत्व के उदाहरण से हम यह समझ सकते है। यह एक नकारात्मक अर्थ लिए हुए नये किस्म का लोकलुभावनवाद है जिसमें किसी राजनीतिक दल, कार्यक्रम या नीति का अनवरत अनादर करते रहने की भावना प्रधानता के लिए हुए रहती है। (लारा, 2018)

आर्थिक पुर्नवितरण के हिसाब से लोकलुभावनवादी राजनीति में संसाधनों के पुर्नवितरण की भावना प्रमुख होती है जिसे अपेक्षाकृत वंचित समूहों तक पँहुचाने का दावा किया जाता है। यह प्रगतिशील कर सुधारो से लेकर, खैराती या छूट देने की व्यवस्था से लेकर, मुफ्त स्वास्थ्य सेवाओं तक सबकी पहुँच मुद्रा का वितरण, कर्ज माफी इत्यादि कार्यक्रमों के द्वारा समझा जा सकता है (सुब्रहमण्यम, 2017)। इन कार्यक्रमों में प्राथमिकता अल्पकालिक लोकप्रिय कार्यक्रमों की दी जाती है जिसे हमेशा वित्तिय अनुशासन या दीर्घकालीन राजस्व बोझ के ऊपर प्रधानता दे दी जाती है।इसी वैचारिक–विश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य में हम एक अपेक्षाकृत नयी राजनीतिक परिघटना आम आदमी पार्टी या आप का अध्ययन करेंगें जिसने भारत में एक लोकप्रिय अभियान से अपनी जड़े तलाशी और इस पार्टी का उदय जनतांत्रिक संस्थानों के साथ लोकलुभावनवादी राजनीति के आंतरिक संबंधों पर नयी रोशनी डालता है। 2005 में प्रकाशित महत्वपूर्ण पुस्तक 'ऑन पॉप्युलिस्ट रिजन' के आलोक में आम आदमी पार्टी का उदय एक शानदार पाठ्यक्रम प्रतिदर्श हो सकता है। लैक्लाउ का मनना है कि किसी एंतिहासिक पड़ाव पर, कई तरह की विरोधाभासीप्रवृतियां कार्यरत रहती हैं जिसका प्रत्यक्ष जुड़ाव वर्गीय चेतना से हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप जनसामान्य में एक नई अस्मिता धारण करने की प्रवृति आती है– जिसे लैकलाउ खोखले और प्रवाही प्रतिमानों की दोहरी संज्ञा देते है। या जनसामान्य को एक राजनीतिक अभिकर्ता में रूपातंरित कर देता है जिसमें राजनीतिक चेतना आ जाती है और परिणामस्वरूप एक लोकप्रिय राजनीतिक गतिकी का विकास होता है जो क्रांतिकार चेतना के विपरीत ध्रुव पर खड़ी होती है (संपत:2015)

प्रवाहमान प्रतिमानों के द्वारा वैचारिकी जड़ता का परित्याग कर दिया जाता है, यह जनतांत्रिक से लेकर सर्वाधिकारवादी किसी भी वैचारिकी खेमे से अपना जुड़ाव प्रदर्शितत कर सकता है। यह आकस्मिकता की परिघटना है जिसमें राजनीतिक सरंचनाओं पर आधारित पहचान की भूमिका ज्यादा महत्वपूर्ण होती है और यह समाज के द्वैधता पर आधारित स्तरीकरणपर ध्यान केंद्रित करता है। निचले तबके में अवस्थित गरीब, वंचित तबके के साथ तादात्मय स्थापित करके इस समूह को पिरामिड के ऊपरी प्रभुवर्ग के खिलाफ गतिशील बनाया जाता है जिसे लैक्लाऊ 'समत्व के तार्किकता' पर आधारित गतिशील संचरण की संज्ञा देते हैं। यह परिघटना अलग–अलग तरीके के मांगों पर आधारित होती है– यथा सुरक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा,जल, आवास इत्यादि जिसे पहले राज्य के संस्थानीकृत माध्यमों से संयोजित किया जाता रहा है। यह सारी परिघटना एक साझे अभियान के रूपातंरित हो जाती हैं जिसे सार्वजनिक महत्व का घोषित कर के सामुहिक कार्यवाहियों के लिए संगठित तरीके से प्रयोग में लाया जाता है। जनसामान्य के इन मांगो का जब राज्य के तकनीकी प्रशासन से आमना–सामना होता है और उसमें जनता को असफलता हाथ लगती है तब एक साझे दुश्मन के सापेक्ष एक नयी प्रतिरोधक सामुहिक अस्मिता का विकास होता है। (लैक्लाऊ 2005)

आम आदमी पार्टी के संदर्भ में खोखले या प्रवाहमान प्रतिमानों को हम भ्रष्ट प्रभुवर्ग के बरक्श निष्क्रिय नागरिकता के नए प्रतिरोध एवं गतिशीलता के संदर्भ में समझ सकते है। सामाजिक द्वैधताओं को जिसे लैक्लाऊ लोकप्रियतावादी आंदोलनो के लिए अनिवार्य रूप से रही है। भ्रष्टाचार के मकड़जाल में पीसते आम आदमी की पीड़ा वर्चस्वी प्रभु वर्ग की राजनीतिक अभिप्रेरणाओं में कहीं भी प्रतिध्वनित नहीं होती है। इस भावना को प्रभुवर्ग के विरूद्ध आम आदमी पार्टी ने जन सामान्य की आंदोलनकारी भूमिका की आंतरिक क्षमता के साथ सफलतापूर्वक जोड़ा और भ्रष्टाचार के साझा दुश्मन की तरह समझाया गया। इसके प्रतीक के रूप में राजनीतिक प्रभुवर्ग को देखा गया। बिना वर्गीय राजनीति के आधारों में गए हुए शोषित समूह को 'आम आदमी' की संज्ञा देकर वर्गीय विभेद के आंतरिक ऊर्जा को और ज्यादा उभारा गया(संपथ 2015)। इसी संदर्भ में लैक्लाऊ का जो दोहरा वर्गीकरण है वह इस मामलें में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है। आम आदमी, एक किसान या छोटे सरकारी कर्मचारी, असंगठित क्षेत्र

का मजदूर या बैंक या मीडियाकर्मी भी हो सकता है। आम आदमी के रूप में जनता को एक 'प्रवाहमान प्रतिमान' में बदल दिया गया।यही वजह है कि आम आदमी पार्टी को दक्षिण या वामपंथी के साथ साथ वर्गीय विभाजन के परे अपार जनसमर्थन मिला।

आम आदमी पार्टीः वैचारिक एवं अवधरणात्मक विकास यात्रा

2011 के अप्रैल महीने में नागरिक समान क्षरा चलाए गए भ्रष्टाचार विरूद्ध अभियान 'इंडिया अंगेस्ट करप्शन–' जिसका नेतृत्व अन्ना हजारे कर रहें थें, में हम आम आदमी पार्टी के उदय के उत्साह को देख सकते है। इसने कांग्रेस नीति, यूपीए गठबंधन की नैतिक नींव को हिला कर रख दिया। इसमें जन लोकपाल बिल की मांग करते हुए नागरिक समाज के विभिन्न तबको समूहों हितग्राही लोगों की अपार सहभागिता थी।

अपने इतिहास की जड़ों को रेखाकिंत करते हुए आम आदमी पार्टी ने अपने आधिकारिक वेब पोर्टल पर निम्न विवरण दिया है–

दो वर्ष से ज्यादा समय में, भारत के सैकड़ों शहरों में फैले हुए एवं असंख्य गावों में विस्तार पाए हुए लाखों लोगों ने इस अभियान से अपने को जोड़ा। विरोध प्रदर्शन, घेराव, बंद, सोशल मीडिया पर अभियान चलाने इत्यादि कार्यक्रमों के द्वारा हमनें अन्ना हजारे के नेतृत्व में कई जगह अनशन कार्यक्रम किए। तीन अलग–अलग मौकों पर हम दिल्ली में जन लोकपाल कानून के पारित होने के लिए अनशन पर रहे। अंतिम अनशन के समाप्ति के अवसर पर तमाम प्रयत्नों के बावजूद संसद जनलोपाल कानून के लिए प्रस्ताव नहीं ला सकी।

इसी पृष्ठभूमि में अरविंद केजरीवाल के नेतृत्व में एक तबके में यह अनुभव किया कि राजनीति के अंदर रहकर ही हम इस देश में भ्रष्टाचार से लड़ सकते है और व्यवस्था को पारदर्शी बना सकते है। इसी से एक राजनीतिक जनक्रांति की शुरूआत हुई जिसे आम आदमी पार्टी कहा जाता है।[1]

1. http://aamaadmiparty.org

अरविंद केजरीवाल के अलावा इसके प्रमुख नेतृत्वकर्ताओं में योगेंद्र यादव, आनंद झा, मनीष सिसोदिया, प्रशांत भूषण, आनंद कुमार इत्यादि थे। ये सभी लोग अपने अपने कार्यक्षेत्रों के सम्मानित नाम थे और प्रारभं में एक सामुहिक नेतृत्व के प्रयोगधर्मी समर्पण भी इस पार्टी में दिखा था। धीरे–धीरे लेकिन इस सामुहिक नेतृत्व की ऊर्जा खत्म होती गयी और कालातंर में अरविंद केजरीवाल आप पार्टी के निर्विवाद नेता बन कर उभरे। कई लोगों ने अपनी राजनीतिक राहें अलग कर ली। अरविंद केजरीवाल लोकलुभावन राजनीति को अभी भ्रष्टाचार के इर्द गिर्द संयोजित किए हुए हैं जिसमें एक नई वैकल्पिक राजनीतिक' का सपना शामिल है।

अगर हम 'आप पार्टी' के उदय को देखें और अपने विभिन्न पड़ावों पर पार्टी किस प्रकार विकसित हुई[2] तो हम पाते है कि समाज और सत्ता के उपरी स्तर पर व्याप्त वृहत पैमाने का भ्रष्टाचार और आम आदमी की अंतहीन परेशानियों एवं संरचनात्मक हिंसा ने एक लड़ाकू वातावारण निर्मित किया जिसके आस पास ही आप पार्टी का आख्यान बुना गया है। 2013 के चुनावों के पूर्व आप पार्टी के इन लोकप्रियतावादी आख्यानों को इस संदर्भ में देखा जा सकता है–

1) खुली सदस्यता– आम आदमी के लिए खुली सदस्यता, स्त्री–पुरूष दोनों के लिए जिसमें बीच में कोई मध्यस्थ नहीं। एक नये प्रकार की विनियंत्रणकारी भूमिका जो राजनीतिक दलों के इतिहास में नयी परिघटना थी। सांप्रदायिक और सामंती मिजाज के राजनीतिक दलों की पारंपरिक छवि से अलग जो सर्वसमावेशी हो और राजनीति के अभिनव प्रयोगों पर आधारित हो।

2) पारदर्शी पार्टी एवं वित्तीय लेन देन : राजनीतिक अखाड़े में आने के बाद संपूर्ण पारदर्शिता के अपने दावे के अनुरूप चंदे एवं सहयोगलेने के मामलें में वित्तिय पारदर्शिता का मॉडल बनाना। आम आदमी के न्यूनतम चंदे से संचालित भीड़ आधारित चंदा प्रणाली। क्राउडसोसिंग

2. विस्तृत विवरण के लिए http://aamaadmi.org/about/our/historyदेखें

नागरिकों के हितों पर आधारित चुनावी मुद्दे– 2013 के विधानसभा चुनाव में आप पार्टी ने बिजली और पानी के बढ़े हुए बेलगाम दरों को मुख्य मुद्दा बनाया जिसका प्रत्यक्ष जुड़ाव समाज के सभी वर्गो एवं समुहों तक था। भ्रष्टाचार के विरूद्ध संघर्ष को अपना प्रमुख राजनीतिक उद्देश्य घोषित किया। बिजली वितरण एवं उत्पादन करने वाली शक्तिशाली कंपनियों के साथ कांग्रेस के गठजोड़ को जोड़ा गया जिसके साथ–साथ जल टेंकर माफिया के साथ भी कांग्रेस नेतृत्व के सहभागिता को उच्च स्तर पर जोर शोर से उजागर किया गया। लोगों के सक्रिय समर्थन से आप पार्टी वाले दल की बनायी जिसके हित आम आदमी के सशक्तिकरण से जुड़ते हों। इस भावनात्मक छवि निर्माण गतिविधि ने आप पार्टी के लिए राजनीतिक जमीन तैयार की।

इसी पृष्ठिभमि में 2013 के चुनावों में 70 स्थानों की दिल्ली विधानसभा में 28 क्षेत्रों में अपनी जीत सुनिश्चित की। लोगों के साथ विचार विमर्श कर के अरविंद केजरीवाल के नेतृत्व में एक अल्पसंख्यक सरकार का गठन 28 दिसंबर 2013 को किया गया। अपेक्षित संख्या बल की कमी के कारण जन लोकपाल कानून को पारित कराने में असफल रहने पर अरविंद केजरीवाल ने फरवरी 2014 में इस्तीफा दे दिया। विधानसभा चुनावों के पूर्व हुये लोकसभा चुनावों में सातों लोकसभा सीट हारने के बावजूद विधानसभा चुनाव में आप पार्टी ने 70 में 67 जगहों पर चुनाव जीतकर 54 प्रतिशत चुनाव मत के हिस्से के साथ एक नया इतिहास कायम किया।

चुनाव उपरांत लोकलुभावन राजनीति और आप पार्टी : कुछ विचार

चुनाव उपरान्त आप पार्टी की लोकलुभावन राजनीतियों के नये प्रारूप सतह पर आयें जिसमें प्रमुख रूप से

1) पार्टी के संविधान का पुर्नगठन

2) द दिल्ली डायलॉग्स

3) अभिशासन के लिए नई संस्थानीकृत व्यवस्था का विकास जिसमें सशक्तिकृत ग्रामसभा और मोहल्ला का गठन किया गया।

4) महत्वपूर्ण मुद्दों पर जनता की प्रत्यक्ष रायशुमारी

5) नागरिकों द्वारा संचालित प्रत्यक्ष कार्यवाहियों की संस्कृति

6) एक जिम्मेदार एवं पारदर्शी प्रशासन के लिए फिर से अपने समर्पण को हर एक स्तर पर दोहराना।

उपरोक्त प्रस्थान बिदुंओं को एक एक करके विश्लेषित करते हुए हम यह पाते है कि आम आदमी पार्टी ने छवि के स्तर पर लोकप्रिय स्वशासन एवं स्वराज की अवधारणा विकसित करने पर ध्यान लगाया। अपने संविधान की धारा–2 में आप पार्टी ने लिखा है कि जनतंत्र यथार्थ में लोकप्रिय स्वशासन का ही रूप है लेकिन वर्तमान स्वरूप में इसको नकारकर नागरिकों को एक प्रजा की तरह संकुचित कर दिया गया है। इसी संदर्भ में आम आदमी पार्टी ने लोगों को फिर से सशक्त एवं सबल करने का बीड़ा उठाया है। यह संविधान में अंर्तनिहित स्वराज की अवधारणा को फिर से जमीन पर लागू करने जैसा उपक्रम है। इस पृष्ठभूमि में यह लोकप्रियतावादी सैद्धांतिकी के लिए एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है।[3]

आप पार्टी ने अपने घोषणापत्र में राजनीति को एक अनवरत संवाद एवं अन्तक्रियात्मक प्रक्रिया की संज्ञा दी है। विधानसभा भंग होने के तुरंत बाद ही आप पार्टी ने दिल्ली डायलाग की शुरूआत की ओर इसमें सक्रिय जनसहभागिता के द्वारा जनता के हितग्राही मुद्दों पर पार्टी का घोषणापत्र विकसित किया। विशेषज्ञों एवं पेशेवरों के साथ विचार विमर्श करके रोजमर्रा की समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया। दिल्ली की जनता के विभिन्न समुहों यथा युवाओं, कामगारों, महिलाओं व्यापारियों ग्रामीण किसानों अल्पसंख्यकों एवं विभिन्न वैध एवं अवैध कालोनियों में रहने वाले कल्याणकारी समुहों के साथ प्रत्यक्ष भागीदारी करके 70 सुत्रीय कार्ययोजना बनायी गयी जिसमें एक ठोस दिशा निर्देश एवं कार्ययोजना के द्वारा जन आकाँक्षाओं को प्रतिध्वनित किया गया। जन सरोकारों से जुड़े मुद्दों जैसे रोजगार, शिक्षा एवं स्वास्थ के साथ लैंगिक न्याय, यातायात और बिजली, पानी एवं सड़क की उपलब्धता को सुनिश्चित करने की कार्ययोजना बनाई गयी। शहरी नियोजन एवं विकास में नागरिकों की

3. विस्तृत विवरण के लिए आप आदमी पार्टी की संविधान देखें। www.aamaadmiparty.org 25 सितम्बर को इस वेब पोर्टल पर खोजा गया।

प्रत्यक्ष भागीदारी करने की कार्ययोजना बनाई गयी। यह एक तरह से सहभागी सुशासन के प्रति आप पार्टी का अपना सुनिशचित समर्पण था।[4](पार्टी घोषणा पत्र 2015) विस्तृत विवरण के लिए पार्टी की वेबसाईट देखें।

जब आप पार्टी ने राजनीति में प्रवेश किया तब इसके पास एक स्वदेशी स्वराज का सुशासन पर आधारित संस्थागत प्रतिमान उपलब्ध था जिसे अरविन्द केजरीवाल की पुस्तक स्वराज 2012 में भी देखा जा सकता है। इस किताब में लेखक ने ग्राम सभा एवं मोहल्ला को सभा को वित्तीय अधिकार देकर नियुक्ति एवं अनुशासन से सम्बन्धित अधिकार भी इन्हीं संस्थाओं को देने की वकालत की गई है। ग्राम सभाओं के द्वारा स्थानीय स्वशासन की गांधीवादी अवधारणा को केन्द्रिय महत्व का विषय समझा गया है। केजरीवाल के अनुसार, देश भर में जब ग्राम सभायें अपना काम करने लगेंगी और उनके पास तमाम तरह के अधिकार होंगे तभी लोगों का सही मायने में संसद पर नियंत्रण स्थापित होगा। नागरिकोन्मुख एवं जनसहभागी बनाने के लिए संस्थानों का नये तरीके से पुर्नसंयोजित करने की वकालत इस पार्टी द्वारा की गई। तृणमूल स्तर के संस्थानों को सशक्तिकृत करके भ्रष्टाचार से मुक्त किया जा सकता है। आप पार्टी के गौरवपूर्ण वक्तव्यों एवं नीतिगत प्राथमिकता को समझने के लिए केजरीवाल की किताब स्वराज एक महत्वपूर्ण बौद्धिक स्त्रोत है। इस किताब में केजरीवाल ने लिखा है कि– ऐसी आम मान्यता है कि ग्रामसभाओं तक वित्तिय कोष पहुँचाने से इसका दुरूपयोग होगा। प्रश्न है कि यह कैसे होगा? अगर किसी गाँव में 3 करोड़ रूपये विकास के लिए भेजे जायेंतो इसे गाँव वाले विकास के लिए खर्च न करके आपस में बाँट लेंगे। मेरा जवाब ऐसा है कि उन्हें ऐसा करने दें। वैसे भी सरकारी कर्मचारी एवं राजनीतिज्ञ आपस में इस पैसों का बन्दरबाट कर लेते है। यह एक तरीके से बिना किसी बिचौलिए के माध्यम से जनता का जनता तक ही लौट जाने की बात है। केजरीवाल को हालांकि इस बात पर भरोसा रहा है कि यथार्थ में जनता ऐसा नहीं करेगी क्योंकि लोगों का अपना साझा हित सबके विकास में ही दिखता है। हालांकि उनके पास इसको कार्यरूप में परिणत करने की कोई स्पष्ट योजना नहीं है। लेकिन लोकप्रियतावादी आख्यानों के अनुरूप ही वें शक्तिशाली समूहों की तुलना में

4. विस्तृत विवरण के लिए पार्टी की वेबसाईट देखें।

जनसामान्य के साथ अपनी पक्षधारता व्यक्त करते हैं। उनका यह भी मानना है कि ग्राम प्रधान भले ही इस मामलें में भ्रष्ट हो सकते हैं लेकिन पारदर्शी नीतियों के साथ इस पर भी रोक लगायी जा सकती है। लोगों की जागरूकता एवं प्रखर प्रतिरोध को सुनिश्चित करके ऐसा किया जा सकता है।

आप पार्टी की लोकप्रियतावादी नीतियों में भ्रष्टाचार से मुक्त जन सुविधाओं तक सबकी पहुँच सुनिश्चित करना रहा है। इसे वो जनता का मूलभूत अधिकार मानते है। लेकिन वहां पर आप पार्टी अतिसरलीकरण का शिकार हो गयी है और अपने नितिगत कार्यक्रमों एवं वित्तीय व्यवस्था में कोई स्पष्टता सुनिश्चित नहीं कर पायी। अंततः राजनीतिक एवं आर्थिक संसाधनों के पुनर्वितरण की कोई स्पष्ट कार्ययोजना आप के पास काफी समय और संसाधन खर्च करने के बाद भी नहीं थी।

राजनीति में प्रवेश के बाद आप पार्टी ने अपने लोकप्रिय नीतियों और जनअभियानों को प्रत्यक्ष जनतंत्र की कार्यवाहियों से जोड़ा। महत्वपूर्ण सार्वजनिक मुद्दों पर जनता की राय लेने का एक नया राजनीतिक प्रयोग आम आदमी पार्टी ने शुरू किया। अल्पसंख्यक सरकार का गठन करने या नहीं करने पर केजरीवाल ने दिल्ली में जनता की राय ली लेकिन अंततः 49 दिनों के बाद उनकी सरकार को इस्तीफा देना पड़ा। केजरीवाल के राजनीतिक अनुभवों में यह बात प्रमुखता से रेखांकित हुई कि प्रत्यक्ष जनतंत्र और प्रत्यक्ष कार्यवाहियों की एक एक अंततः सीमा है और उस दिशा में ज्यादा दूर तक नहीं जाया जा सकता (जयाल 2016)। जैसा कि जयाल तर्क देती हैं कि लोकप्रिय राजनीति दरअसल अधैर्य की राजनीति है। जिसमें आरोप–प्रत्यारोप एवं नकार भाव प्रमुख होते है। प्रत्यक्ष जनसामान्य कार्यवाहियों के द्वारा जनता से भ्रष्टाचार के विरूद्ध माबाईल फोन के माध्यम से इन गतिविधियों को रिकार्ड करने की अपेक्षा रखने की कार्यवाही कई बार उलटी पड़ती नजर आई। जब पार्टी के ही दो प्रमुख सदस्य योगेंन्द्र यादव और शाजिया इल्मी इसकी चपेट में आ गये और उनको इस्तीफा देना पड़ा(जयाल 2016) विदेशी नागरिक और नृजातीय समुहों के विरूद्ध कुछ अधैर्यतापूर्ण कार्यवाहियों में आप पार्टी के साथ कई तरह के विवाद भी जोड़े। जनवरी 2014 में हुआ 'खिड़की एक्सटेंशन कांड' इसका एक प्रमुख उदाहरण है, जब दिल्ली सरकार के कानून मंत्री टी0वी पत्रकारों के साथ एक

इमारत में अवैध तरीके से घुस गया और उन्होंने युगाण्डा की 4 महिलाओं को वैश्यावृति एवं नशीली पदार्थो की तस्करी के आरोप में बिना किसी वारंट के पकड़ लिया। इसी पूरे प्रकरण में लोकलुभावन राजनीति के अतिहस्तक्षेपकारी अतिसक्रियतावाद को खतरनाक तरीके से उजागर किया।। जिसमें रंगभेद एवं नृजातिय घृणा के तत्व भी मौजूद थे। कानून मंत्री ने एक लोकलुभावनवादी तर्क देते हुए स्थानीय जनसमर्थन को अपने पक्ष में बताते हुए अपने कृत्य का समर्थन किया। इस घटना की चहुँओर निन्दा की गई और आप पार्टी के ही संस्थापाक महिला सदस्य मधु भादुड़ी ने यह आरोप लगाया कि आप पार्टी का लैगिंग न्याय को लेकर खाप पंचायतों की ही तरह रवैया है और यही वजह है कि पार्टी नेतृत्व द्वारा खाप पंचायतों का समर्थन किया जाता है।[5] आप की लोकप्रियतावादी नीतियों के दो मुख्य आधार पारदर्शिता एवं भ्रष्टाचार कि विरूद्ध संघर्ष कर रहे है। यह बाकी सभी राजनीतिक कार्यो की गंगोत्री है जिसमें पारदर्शिता को साधन की तरह न देखाकर साध्य की तरह देखा जाता है। इस दुर्निवारी आकर्षण के कारण आप पार्टी ने आर्थिक लक्ष्यों के प्रति अपना ध्यान कम केन्द्रित किया और इसी कारण से तमाम असहमतियां उत्पन्न हुई जिसकी वजह से पार्टी के घोषणा पत्र का प्रकाशन विलम्ब से हुआ (जयाल 2016)।

आप पार्टी के लोकलुभावन राजनीतिक अभिविन्यासों में दो प्रमुख निष्पतियां उभर कर आती है। प्रथम यह कि लोकप्रिय राजनीति हमेशा जनसहभागी होती है। यह एक गलत अवधारणा है। जैसे जैसे पार्टी की राजनीतिक शक्ति का विकास हुआ अरविन्द केजरीवाल उसी तरह से इसके सर्वोच्च प्राधिकार के रूप में समाने आते गये। प्रचारतंत्र में अरविन्द केजरीवाल को दिल्ली के मुक्तिदूत के रूप में प्रचारित व प्रसारित किया जाने लगा जिसमें करदाताओं के पैसों का बुरी तरह से इस्तमाल केजरीवाल की वृहतर छवि निर्माण में की गयी। उनके व्यक्तित्व को पार्टी और पार्टी के प्रतीकों से भी बढ़ा–चढ़ा कर दिखाया गया जिसके इर्द–गिर्द एक करिश्माई आभामंडल निर्मित किया गया। इस एकाधिकारवादी शक्ति संकेन्द्रण सिद्धांत की अतिशय आलोचना हुई क्योंकि पार्टी अपने घोषित नीतियों में शक्ति के विकेन्द्रीकरण की वकालत करती रही थी (जयाल 2016)। जैसा कि रॉय (2017) रेखांकित करते है कि जिस

5. विस्तृत विवाण के लिए www.firstpost.com/politics/25 सितम्बर 2019 को देखा गया।

तरह का व्यक्तित्व केन्द्रित आभामण्डल आप पार्टी ने विकसित किया वह अपने आप में विशिष्ट है क्योंकि यह आत्सम्मान एवं आत्ममुग्धता दोनों ही स्थितियों से परे चले जाने की परिघटना है जिसका भारतीय राजनीतिक इतिहास में कोई अन्य उदाहरण नहीं है।[6] जहाँ एक तरफ आप पार्टी वैकल्पिक राजनीति के विकास की तरफदारी करती रही वहीं दूसरी तरफ दल के अंदर ही आंतरिक लोकतंत्र का सम्पूर्ण नकार कर दिया गया। जैसा कि मधु भादुड़ी ने दल को छोड़ते हुये यह आरोप लगाया कि आप पार्टी के अंदर अब असहमति और विरोध की कोई गुजांइश नहीं है और खिड़की एक्सटेंशन कोड के विरोध के बाद उनको पूरी तरह से दरकिनार कर दिया गया (भादुड़ी 2016)।

वहीं दूसरी तरफ आप पार्टी की राजनीतिक संरचना की वैचारिकी 'लोग' बनाम 'प्रभुवर्ग' की द्वैधता से निर्मित होती है। यह सत्ता के असंतुलन को लोगों के बरक्श राजनीतिज्ञों के माध्यम से देखने की प्रवृति को स्वीकार करती है। आप पार्टी वर्ग, जाति, धर्म एवं लैगिंकताओं के अंतक्रिया से निर्मित दुसरे किस्म की जटिल सत्ता संरचना कोदेखने में असफल सिद्ध हुई जिसके माध्यम से ही भारत में राजनीतिक जीवन संचालित होता है। इसके परिणामस्वरूप एक तकनीकी और अति सरलतावादी राजनीति की रूपरेखा आप पार्टी ने प्रस्तुत की। श्री रूपा रॉय (2014) ने आप पार्टी की राजनीति की एक नृ–वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए यह बताया कि आप की राजनीति ने सभी समस्याओं का एक सरल समाधान यह प्रस्तुत किया कि सरकारी कर्मचारियों को नियमों एवं विधियों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। रॉय हस्तक्षेपकारी कई घटनाओं के माध्यम से यह बताती है कि नागरिकों के कई तरह के समस्याओं यथा–पुलिस स्टेशन में मुकदमा दर्ज करना, नागरिक सेवाओं की उपलब्धता या मतदाता पहचान पत्र की प्राप्ति इत्यादि कामों को आप पार्टी के कार्यकर्ताओं द्वारा सांदर्भिक कानूनों के अनुप्रयोग द्वारा सुनिश्चित किया गया।

आप पार्टी एवं लोकलुभावनवादी नीतियांः

आप पार्टी द्वारा कई तरह की लोकलुभावन नीतियां लागू की गई जिसमें प्रमुख है–

6. www.epw.in/journal/2017/17/aapपर देखें

1) दिल्ली जनलोकपाल बिल

2) स्वराज बिल

3) बिजली बिल में कमी

4) पानी का अधिकार

5) नये सरकारी स्कूल

6) उच्चतर शिक्षा प्रतिभूति योजना

7) शिक्षा सुधार

8) स्वास्थ्य सेवाएं

9) महिला सुरक्षा बल

10) भूमि सुधार

11) खुदरा क्षेत्रों का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की मुक्ति

12) आवासीय क्षेत्रों का पुर्नवास का पूर्ण स्वामित्व

13) अप्राधिकृत कालोनियों का नियमन एवं

14) सभी के लिए वहनीय घर/आवासीय सुविधा

15) झुग्गी बस्तियों का यथास्थान विकास

16) सफाईकर्मियों की गरिमा

इन सभी बिदुंओं के बारे में विस्तृत विश्लेषण इस शोध पत्र के विश्लेषण का विषय है। इसलिए हमने सिर्फ 3 बिंदुओं पर अपने विश्लेषण को सीमित रखा है। बिजली–पानी, शिक्षा और स्वास्थ को आप की राजनीति के मुख्य नीति व्यवस्था के अन्तर्गत देखा जाता है। तो

शोधकर्ता ने इसके राजनीतिक एवं आर्थिक आयामों को अपने गहन विश्लेषण का विषय बनाया है।

बिजली एवं पानीः आप पार्टी ने अपने प्रथम राजनीतिक अभियान में इन दो मुद्दों को प्रमुखता से उठाया था जिसमें बिजली कंपनियों की मुनाफाखोरी और जल माफिया का मुद्दा प्रमुख था। जनता को हो रही परेशानियों को देखते हुये अरविंद केजरीवाल की सरकार ने सत्ता में आने के बाद अगस्त 2015 में हरेक परिवार को प्रत्येक महिनें 20,000 लीटर पानी मुफ्त देने की बात कही और 400 यूनिट से कम प्रति महिने बिजली खर्च करने वाले प्रत्येक परिवार को बिजली बिल में 50 प्रतिशत छूट की घोषणा की गई। आर्थिक रूप से यह निर्णय भले ही राजकोष पर भारी पड़ने वाला था जिसमें कुल 1650 करोड़ रूपये का खर्च आया।[7]

इस लोकलुभावन राजनीति के आर्थिक पक्ष की आलोचनाकरते हुए राष्ट्रीय हरित प्राधिकार ने यह आलोचना किया कि आवासीय सोसाइटिज को मुफ्त पानी देने की इस व्यवस्था से राजस्व कोष को अपार धन हानि होगी।[8]

दिल्ली उच्च न्यायलय ने भी इस नीति से असहमति जताते हुए यह कहा कि कुछ भी मुफ्त में नहीं दिया जाना चाहिए जब तक यह एकदम अपरिहार्य न हो। इसे सिर्फ झुग्गी झोपड़ियों तक सीमित किया जा सकता है। बिजनेस स्टैण्डर्ड के एक अनुमान के मुताबिक दीर्घकालीन तरीके से इस नीति को लागू करना आप सरकार के लिए मुश्किल होगा क्योंकि यह सरकार के राजस्व सीमाओं को और ज्यादा संकुचित करेगा।[9]

आप पार्टी की इन नीतियों के प्रति की जा रही आलोचानाओं के प्रतिउत्तर में मुख्यमंत्री केजरीवाल के बयान को हिन्दू अखबार ने 2 अगस्त 2019 को जिस तरीके से छापा है वह लोकलुभावन राजनीति के हमारी परिभाषा के बिल्कुल नजदीक बैठता है। उनके अनुसार– 'मैं जानता हूँ कि दूरदर्शन की बहसों में इसे मुफ्त की खैरात कहकर आलोचना की जायेगी। इस देश के मंत्री, सांसद, विधायक, वरिष्ठ अधिकारी सभी मुफ्त की बिजली का उपभोग कर रहें हैं

7. www.downtoearth.org.in/news/48745
8. www.thehindu.com/news/delhi/aapgovernmentwaterscheme/
9. www.buisnessstandard.com/article/powerwatercostindelhi

लेकिन कोई उसे मुफ्त की खैरात नहीं बताता है। मैं सिर्फ इन सुविधाओं को जन सामान्य तक ले जा रहा हूँ। मेरी नजर में वह आम आदमी दिन भर कड़ी मेहनत करके अपने घर को चलाता है और अपने बच्चों को बड़ा करता है। मैं उन विशेषाधिकारों को आम आदमी तक उनके लिए वही सुविधाएं मुहैया कराने की कोशिश कर रहा हूँ। अगर मैंने 'आम आदमी' को 'खास आदमी' का दर्जा दिया है तो इसमें गलत क्या है?[10]

इस द्वैधताओं के आख्यान के द्वारा लोकलुभावन की जिस तरह की समझ शोधकर्ता ने इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया है। उसका स्पष्ट निरूपण उपरोक्त कथन में अभिव्यक्त होता है। यहां पर आम आदमी के बनाम खास आदमी के स्पेस में राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाहों को रखा गया है। इस लोकप्रियतावादी आग्रहों के सामने सांख्यिकी के गणितिय आंकड़े या सम्भाव्यता बहुत महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते।

शिक्षा एवं सरकारी विद्यालय

कामकाजी एवं गरीब तबको के लिए एक दूसरी जन हितैषी योजना के रूप में आप पार्टी ने निजी एवं सरकारी विद्यालयों के बीच की विकराल संसाधान खाई को दूर करने की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित किया। लोकलुभावन राजनीति के तहत शिक्षा प्राप्त करने वाली कुछ प्रथम पीढ़ी के बच्चे जो अमूमन सरकारी विद्यालयों में जा रहें हैं। उनके लिए उपमुख्यमंत्री एवं शिक्षा मंत्री मनीष सिसोदिया ने बजटीय आवंटन में 33 प्रतिशत की बढ़ोतरी की। विद्यालय के भौतिक अवसंरचना का विकास किया गया और 1000 से जयादा सरकारी विद्यालयों के शिक्षा दाताओं को फिनलैण्ड एवं सिंगाापुर के विद्यालय व्यवस्था का पर्यवेक्षण करने भेजा गया। विद्यालय की नई प्रबंध समितियां गठित की गई जिसमें बच्चों के अभिभावकों एवे सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी स्थान दिया गया। 2016 एवं 2018 में मिशन चुनौती एवं मिशन बुनियाद के द्वारा गणित एवं अन्य पाठ्यक्रम अध्ययन में चुनौतियों को पार करने का अभियान शुरू किया गया। विद्यालय की प्रबन्ध समितियों में अभिभावाकों के नामांकन का एक सफल प्रयोग की तरह देखा गया और विद्यालय के अधोसंरचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये गये। हालांकि

10. www.thehindu.com/news/delhi/nomajorincreaseincost

अनीता रामपल जैसे शिक्षाविदों ने सीखने की योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप विद्यार्थियों के विभिन्न स्तरीकरण को शिक्षाशास्त्र के हिसाब से एक नुकसानदेह घटना बताया।[11] लेकिन समग्रता में देखने पर इसे शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी बदलाव एवं रूपांतरण के रूप में देखा गया जिसे विद्यार्थी एवं अभिभावाकों द्वारा मुक्त कण्ठ से समर्थन एवं सराहना दी गयी।[12] बिजली और पानी की तुलना इसे भविष्य में इसे किया गया निवेश की तरह देखा गया जिसके प्रति ना केवल जनसमर्थन ही था, अपितु इसके युगान्तकारी प्रभाव को विद्यार्थियों के बेहतर प्रदर्शन में त्वरित से अनुभव किया गया।

स्वास्थ्य सुविधा

आप पार्टी ने अपने घोषणा पत्र 2015 में स्वास्थ्य सेवाओं को लेकर कुछ स्पष्ट वादे किये थे। बजटीय आवंटन में वृद्धि[13], स्वास्थ्य अवसरंचनाओं का विकास जिसमें 900 नये स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण शामिल था, अस्पतालों में 3000 बेड की क्षमता के विकास के साथ अन्तर्राष्ट्रीय मानक के अनुरूप प्रति हजार आबादी पर 5 बेड की उपलब्धतासुनिश्चित करने का वादा भी संलग्न था। इसके अलावा सभी मरीजों कि लिए कम खर्च पर जेनरिक दवाओं की उपलब्धता सुनिश्चि करना भी एक केन्द्रियकृत एवं भ्रष्टाचार मुक्त क्रय व्यवस्था को सुनिश्चित करना भी आप पार्टी के मुख्य कार्ययोजना का अंग था।

यद्यपि शिक्षा क्षेत्र की तुलना में स्वास्थ सेवाओं की उपलब्धता कम दृष्टिमान होती है लेकिन मानवीय क्षमता के विकास के नजरिये से यह सबसे मजबूत माध्यम सिद्ध होता है। यद्यपि यह भी एक तथ्य है कि स्वास्थ्य विभाग की 55 में 31 योजनाओं की गति 2019 में भी धीमी थी।[14]

स्वास्थ्य सेवाओं के रूपातंरणकारी व्यवस्था से हम आप पार्टी की लोकलुभावन नीतियों कोसमझ सकते है जिसमें निजी अस्पतालों में गरीब लोगों को मुफ्त जाँच की सुविधा निजी अस्पतालों में सरकारी खर्च पर तमाम दुर्घटना एवं एसिड पीड़ितों का इलाज और निजी अस्पतालों में भर्ती होने की सुविधा जैसे प्रमुख कदम शामिल है। झुग्गी–झोपड़ीयों में मोहल्ला

11. www.thewire.in/education/aajturnsgovernmentschool
12. www.buisnessstandard.com/articlehusgetransformationinschoolindelhi
13. www.epw.in/journal/2018/49/commentary/aaphealthpolicy
14. www.indianexpress.com/article/delhi/healthfacilityreformindelhi

क्लीनिक की शुरूआत जन स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में एक लोकप्रिय एवं सफल कदम माना गया। जिसके द्वारा समाज के वंचित एवं गरीब तबकों तक जन स्वास्थ्य को पहुँचाने के दायरे में लाया गया। जैसा कि बसु एवं बरिया (2018) इस तथ्य को इंगित करते हैं कि वृद्ध, बच्चों एवं महिलाओं तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच द्वारा बेहद कीमती मानवीय श्रम के घंटे बचाये गये। जो इंतजार करते करते खत्म हो जाते थे जिसके द्वारा अवसरों की कीमत को संरक्षित किया गया।

आप पार्टी की नीतियों के द्वारा शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में समग्र रूप से काफी गुणात्मक परिवर्तन आयें हैं। हालांकि आप की लोकलुभावन नीतियों जिसमें अद्यतन रूप से अभी महिलाओं को मेट्रो एवं बस सेवाओं में मुफ्त सफर करने की घोषणा शामिल है, जैसी नीतियों को हमेशा नागरिक समाज की आलोचना का शिकार होना पड़ता है। इनका मानना है कि मुफ्तखोरी की संस्कृति से अकर्मण्यता एवं अतिउपभोग की संस्कृति विकसित होती है। अंततोगत्वा सराकरें दाम बढ़ाकर या सेवाओं में कटौती करके इस खर्चे पर नियंत्रण करती है। (स्टीग्लीज एव राजेजेनग्रैड)

अभी आप पार्टी के लोकलुभावन नीतियों के आर्थिक पक्ष का सही आँकलन होना बाकी है लेकिन दीर्घकालिक रूप से मुफ्त सेवाओं एवं खैरातों की सम्पोषणीयता भविष्य में कितनी होगी यह अभी भी विचार का विषय है और इसमें आलोचना की काफी गुजांइश है।

निष्कर्ष

आप पार्टी की नीतियों के संदर्भ में हम हमेशा एक तनाव के सूत्र देख सकते है जिसे म्रागरेट कैनोवन के शब्दों में (1999) हम प्रगतिशील राजनीति एवं मुक्तिकामी राजनीति के दोहरे आधारों में परिव्याप्त तनाव के संदर्भ में समझा जा सकता है। आप पार्टी का सत्ता में आगमन एक मुक्तिकामी राजनीति की परिघटना थी जिसमें अधैर्य और स्थापित जड़ता के प्रति एक आक्रोश अन्तर्निहित था। जनतांत्रिक संस्थाओ के प्रति जनता के मन में परिव्याप्त आक्रोश को यथास्थितिवाद के पोषक होने के कारण और उनके विधिक रूप से गठित होने के बावजूद आप पार्टी ने बखूबी भुनाया। सत्ता में आने के बाद आप पार्टी को यद्यपि प्रगतिशील राजनीति

के साथ भी अपना अनुभव साझा करना पड़ा और इस मान्यता को स्वीकार करना पड़ा की विधि के शासन और संस्थागत राजनीति के प्रतिमानों को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता है। एक लोकलुभावन राजनीति करने वाली पार्टी आम आदमी पार्टी में हमेशा तनाव का सूत्र तो मौजूद रहता ही है क्योंकि एक तरफ तो उनके पास राजनीतिक व्यवस्थापन की मजबूरियाँ होती है वहीं दूसरी तरफ उनकी वैचारिकता में राजनीति के पूरे कार्य आधारों को ही प्रश्नांकित करने करने की बेचैनी रहती है (जयाल2016)। राजनीति को राजनीतिज्ञों के साथ साझा तादात्मय स्थापित करा के और जनता को एकरैखीय एकात्मवादी श्रेणी की तरह देखकर जिसकी एक अभिव्यक्ति होती है; इस तरह की लोकलुभावन राजनीति हमेशा से उसकी आंतरिक विसंगतियों एवं विडंबनाओं को नकारती रहती है। यह यथार्थ में कभी होता नहीं है और इसके आंतरिक विसंगतियों को दिल्ली विधानसभा के 2015 के चुनावों के बाद आप पार्टी के सत्ता में आने के बाद ज्यादा स्पष्टता से महसूस किया गया।

आम आदमी पार्टी के अमूर्त एवं वायवीय किस्म के संगठन के बावजूद और मुक्तिकामी एवं प्रगितिशाली राजनीति में व्याप्त तनाव के उपरांत भी आप पार्टी ने जनतांत्रिक आकाँक्षाओं के नए क्षितिज को कल्पना के पुट दिए एवं प्रतिनिधित्व को यथार्थ के जनतांत्रिक परियोजना का हिस्सा बनाया। इसने समाज से एक नई सामुहिकता की रूपरेखा की जिसमें न्यूनतम सामाजिक विकास तक सबकी पहुंच हो और यह पारदर्शी एवं भ्रष्टाचार से मुक्त हो। सुशासन की जन जवाबदेही एवं ईमानदार प्रणाली विकसित करने की अनवरत अभिप्रेरणा से आप पार्टी ने एक जन कल्याण आधारित मूल्य व्यवस्था निर्मित करने पर जोर दिया। अधिकार एवं सशक्तिकरण के मानकों पर आधारित इस राजनीति में शिक्षा, स्वास्थ्य, जल, बिजली, यातायात, खाद्य सुरक्षा एवं आवास तक सबकी पहुंच बनाने की अनवरत कोशिश आप पार्टी द्वारा की गयी है। न्यूनतम मानव सुरक्षा और भ्रष्टाचार मुक्त शासन के नए प्रयोगों द्वारा यह संचालित होता है जिसके मानकों पर आप पार्टी का प्रदर्शन कई बार आशानुरूप नहीं भी रहा है। नागरिकों की इस नयी राजनीतिक अभिव्यक्ति एवं प्राथमिकताओं में, यद्यपि अल्प समय के लिये ही सही, एक उम्मीद जगाई थी जोनागरिक निर्माण एवं आशावाद के नये आधारों के निर्माण में एक नई संभावना जगाता हैं।

संदर्भ सूची

बासु, ए0 एण्ड एस0 बेरिया.(2018).'आप्स हेल्थ रिफार्म्स इन दिल्ली.' *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली.* 53 (49) :16–21.

भादुड़ी, एम0. 'आप हाई कमांड अलाउस नो डिसेन्ट.' *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 49 (8)

कौनोवैन, एम.(1999).'ट्रस्ट द पीपुल! पापुलिज्म एण्ड द टू फेसेज ऑफ डेमाक्रेसी.' *पॉलिटिकल स्टडिज,*XLVIII:2-16

फ्रैजर, एन.(2018).'कैन वी अंडरस्टैण्ड पॉपुलिज्म विदाउट कॉलिंग इट फासिस्ट.' *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,*53 (22)

जयाल, एन.(2016).'कंटेन्डिंग रिप्रेजेन्टेटिव क्लेम इन इण्डियन डेमोक्रेसी.' *इण्डिया रिव्यू,* 15 (2) : 172–195

लैकलाऊ, ई.(2005)*ऑन पॉपुलिस्टरीजन.* लंडनः वर्सो

लारा, एम0पी0.(2018).'ए कॉन्सैपचुअल एनालिसिस ऑफ द टर्म पापुलिज्म.' थीसीस इलेवन, 149 (1) : 31–47

मुड्डे, सी0 एण्ड सी0 आर.कॉल्टवेसर.(संपादित, 2012).*पॉपुलिज्म इन यूरोप एण्ड द अमेरिकन्स थ्रेट ऑर करेटसाईव फॉर डेमोक्रेसी.* कैम्ब्रिज :कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस।

रोडरिक, डी0.(2018). 'पॉपुलिज्म एण्ड द इकोनॉमिक्स ऑफ ग्लोबलाईजेशन.' *जर्नल ऑफ इंटरनेशनल बिजनेस पॉलिसी.*

राय, पी0.(2017).'आप हैस डेसिमेटेड ए हिस्टोरिक मैन्डेट फॉर ऑल्टरनेटिव पॉलिटिक्स. '*इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 52 (17)

रॉय, एस0.(2014).'बिइंग द चेंजः द आम आदमी पार्टी एण्ड द पॉलिटिक्स ऑफ द एक्सट्राऑडिनरी इन इण्डियन डेमोक्रेसी.' *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* XLIX

सम्पथ, जी0. (2015).'द पॉपुलिस्ट रीजन ऑफ द आप.'http://www.livemint.com opinion/txCqp6qNqbPY1KXZ04zR9l/ The-populist-reason-of-the-AAP.html25 सितम्बर, 2019 को देखा गया।

शिल्स, ई0.(1972).*द इंटलैक्चुअल्स एण्ड द पावर्स.* शिकागो : शिकागो युनिवर्सटी प्रेस.

स्टीग्लिट्ज, जे0ई0 एण्ड जे0के0 रोजेनग्रेड.*इकोनॉमिक्सऑफ द पब्लिक सेक्टर.* न्यूयॉर्कः डब्लयू डब्लयू नॉर्टन एण्ड कम्पनी

सुब्रमण्यम, एन0.(2007).'पॉपुलिज्म इन इण्डिया.' *एस0ए0आई0एस0 रिव्यू.* 27:81–91.

वेलैण्ड, के0.(2001).'क्लैरिफाईंग ए कॉन्टेसटेड कॉन्सेप्टः पॉपुलिज्म इन द कॉन्टैक्स्ट ऑफ लैटिन अमेरिकन पॉलिटिक्स.' *कॉम्परेटिव पालिटिक्स,* 34 (1) : 1–22.

संक्षिप्त अकादमिक परिचय

अमित प्रकाश वर्तमान में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ लॉ एंड गवर्नेंस में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं।

कपिल तमांग वर्तमान में हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में शोध अध्येता हैं।

मैदुल इस्लाम वर्तमान में कोलकाता के सेंटर फॉर द स्टडी इन सोशल साइंसेज में राजनीति विज्ञान के सहायक प्राध्यापक हैं।

मनीष कुमार झा वर्तमान समय में कलकत्ता रिसर्च ग्रुप के उपाध्यक्ष हैं और टाटा इंस्ट्रीच्युट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई के समाज कार्य विभाग में संकाय प्रमुख एवं वरिष्ठ आचार्य हैं।

रजत रॉय वर्तमान में कलकत्ता रिसर्च ग्रुप में 'लोकलुभावनवाद एवं दक्षिण एशिया' नाम के वृहत शोध परियोजना के मुख्य समन्वयक हैं। वे एक पत्रकार एवं स्वतंत्र शोधकर्ता हैं।

रिया डे महानिर्बान कलकत्ता रिसर्च ग्रुप में वर्तमान समय में शोध सहायक अधिकारी हैं।

शेफाली झा वर्तमान में हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय के तुलनात्मक साहित्य विभाग में वरिष्ठ आध्यापक हैं।

सुमोना दासगुप्ता एक वरिष्ठ राजनीति विज्ञानी हैं जिनकी स्वतंत्र शोधकर्ता के रूप में कलकत्ता रिसर्च ग्रूप एवं वरिष्ठ फेलो के रूप में पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया (प्रिया) के साथ अकादमिक संलग्नता है।

अनुवादक!

प्रशांत कुमार वर्तमान में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मालवीय शांति अनुसंधान केन्द्र में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।

Mahanirban Calcutta Research Group

IA - 48, Ground Floor, Sector - III, Salt Lake City
Kolkata 700 097, West Bengal, INDIA
Phone : +91-33-2335 0409, Fax : +91-33-2335-1522,
E-mail : mcrg@mcrg.ac.in Web : http://www.mcrg.ac.in